PDF Compressor Free Version

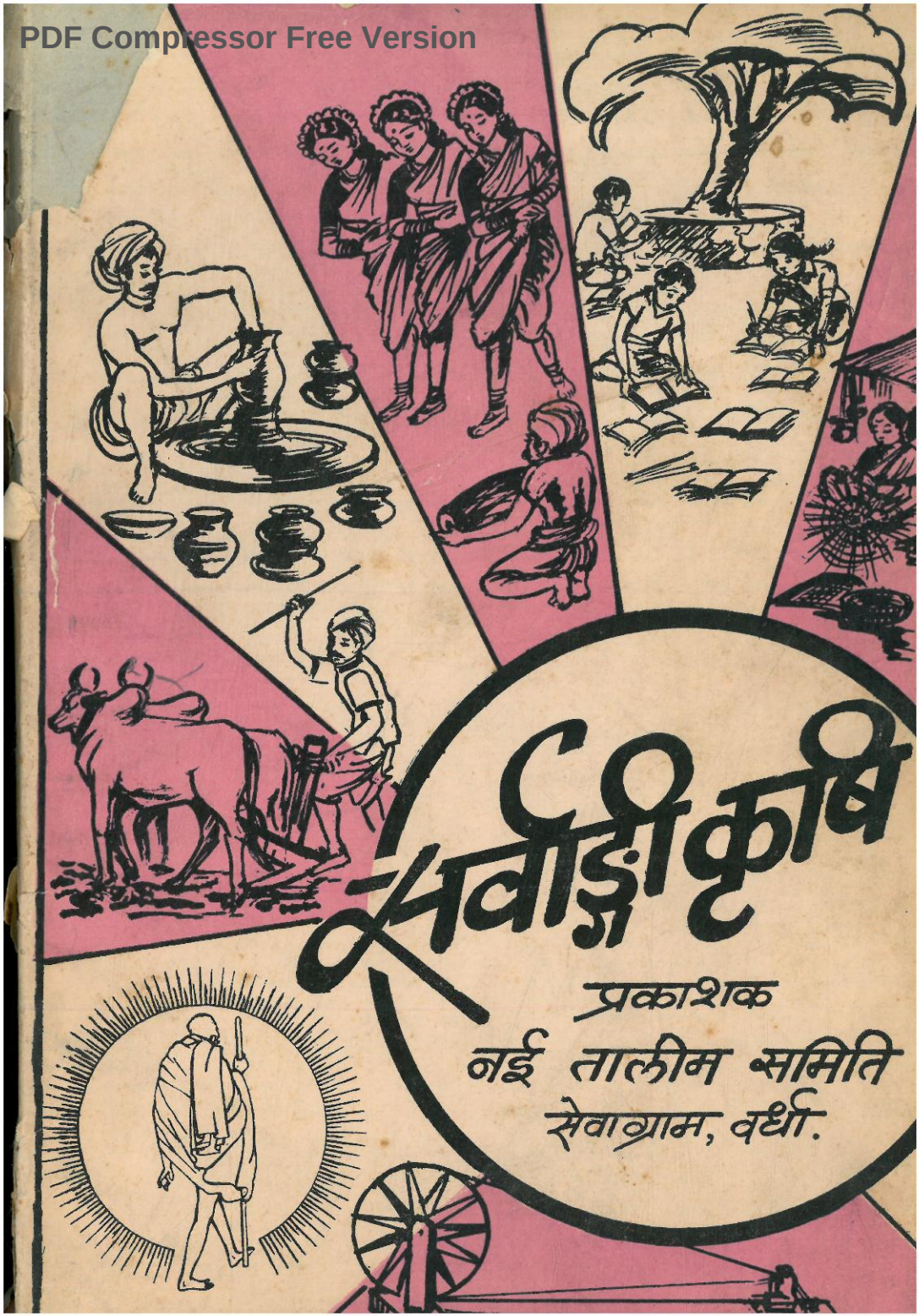

सर्वोदय कृषि

प्रकाशक
नई तालीम समिति
सेवाग्राम, वर्धा.

PDF Compressor Free Version

सर्वांगी कृषि

संकलक
कनकमल गांधी

नई तालीम समिति, सेवाग्राम, वर्धा

PDF Compressor Free Version

प्रकाशक :
नई तालीम समिति,
सेवाग्राम – ४४२१०२
वर्धा (महाराष्ट्र)

प्रतियां : १०००
मार्च १९८६
मूल्य : रुपये पचीस

मुद्रक :
रणजित् देसाई,
परंधाम मुद्रणालय,
पवनार (वर्धा)

यह पुस्तक एकेडेमी ऑफ गांधीयन स्टडीज, हैद्राबाद
के सहयोग से प्रकाशित की गई है ।

PDF Compressor Free Version

AAG-9

કપિલભાઈ – ધરતીગ્રામ
વિનોબા આશ્રમ, ...,
વડોદરા—390012
ફોન નં. (0265) 328433

भूमिका

खेती का विकास एक प्रकार से मानव-जीवन के विकास का इतिहास है। कृषि की पद्धतियां मानव ही नहीं, वरन् समस्त प्राणिमात्र के जीवन को प्रभावित करती है, क्योंकि सारा जीवन प्रकृति के सुनिश्चित चक्र का एक भाग ही है।

प्रकृति के साथ सब प्रकार से मेल खानेवाला सर्वांगी कृषि-आधारित जीवन ही सही जीवन है। यही वह पद्धति है, जिसके पीछे हजारों वर्षों के अनुभव व ज्ञान का उपयोग होना चाहिए। इसकी उपेक्षा करके तात्कालिक लाभ के पीछे पडने से स्वस्थ जीवन आगे नहीं बढ सकेगा। भारतीय खेती तथाकथित आधुनिक खेती की तुलना में इसीलिये बहुत अधिक अनुभवपूर्ण, वैज्ञानिक तथा शास्त्रीय है। रासायनिक खेती का उद्‌गम अर्वाचीन काल में हुआ, तात्कालिक लाभ के कारण तेजी से फैला, और उतनी ही तेजी से आज उसके दोष उजागर होते जा रहे हैं। दूषित पर्यावरण, गिरता स्वास्थ्य, विषैला पानी, दूध व फल आदि उसीके परिणाम हैं। दिन-प्रतिदिन विकास के नाम पर संकरित बीजों, रासायनिक उर्वरकों, विषैले कीटनाशकों आदि का प्रचार हो रहा है; जिसके दूरगामी विपरीत परिणाम अभी से स्पष्ट हो गये हैं। एक दृष्टि से इस भंडाफोड के लिए हमें आभारी होना चाहिए, क्योंकि उसने मानव-समाज को सेन्द्रिय और पर्यावरण-संतुलित खेती-पद्धति की ओर पुनः मुड जाने को प्रेरित कर दिया।

शिकारी और चरागाही जीवन से मनुष्य विकसित होता हुआ खेती की ओर बढा और कृषि को मनुष्य ने स्वेच्छा से अपनाया और विकसित किया। यह मजबूरी नहीं, स्वतंत्रता, स्वाभिमान, सहयोग और सहजीवन की द्योतक रही है। परंतु दुर्भाग्यवश आधुनिक यंत्रीकरण तथा केंद्रीकरण – आधारित कृषक की यानी गांवों की स्वतंत्रता में कमी होती जा रही है। खेती को अनेक उद्योगों में मात्र एक उद्योग बनाकर रखने का सोचा जा रहा है। इससे खेती का ही

PDF Compressor Free Version

नहीं, जीवन की समग्रता का टुकडीकरण होता जा रहा है। आज तो संकरित बीज बनाना, उर्वरकों का निर्माण करना, नित नूतन कीटनाशक औषधियों का आविष्कार करना, उपज को लाना, ले जाना तथा अन्य अनेक वस्त्र, निवास तथा भोजन की आवश्यकता-पूर्ति करनेवाले ग्रामोद्योग – सभी खेती से अलग कर शहरों के बडे कारखानों में उद्योगपतियों के चंगुल में चले जा रहे हैं। विकसित देशों की अर्थ-व्यवस्था में तो कृषि का योगदान मात्र ४ प्रतिशत रह गया है। योजनाबद्ध तरीकों से खेती के लिये शहरों में स्थित उद्योगों के लिये कच्चा माल पैदा करने का ही काम रखा जा रहा है। इससे ग्रामीण जीवन निरुद्यमी, शोषित तथा परमुखापेक्षी बनता जा रहा है।

प्राचीन काल से खेती-केन्द्रित ग्रामीण जीवन सरल, सादगीपूर्ण एवं संतोषजनक था। उसमें आध्यात्मिकता का पुट था। लेकिन आज का शहरी जीवन उद्योग-केन्द्रित, जटिल तथा उत्तरोत्तर अधिक गति-वाला होने के कारण आत्मघाती एवं असंतोषमूलक बनता जा रहा है।

भारत ही नहीं, समस्त संसार में पहले से ही कृषि का महत्व सौ प्रतिशत रहा है। कृषि यानी जीवन-चक्र, जिसमें मानव-जीवन के लिये आवश्यक सभी प्रवृत्तियों का समावेश हो जाता था, चाहे वह उत्पादन हो, कृषि-आधारित उद्योग हो अथवा कला एवं संस्कृतिमूलक हो। सभी खेती को केन्द्र बनाकर प्रेरणा पाते थे। गांधीजी ने चरखे को ग्रामोद्योगों का सूर्य कहा है, उसी तरह खेती जीवन की पर्यायवाची थी। आज तो चरखे सहित सभी ग्रामोद्योग और खेती भी संकुचित तथा शहरी उद्योगों पर निर्भर बनती जा रही है। हिंद-स्वराज्य के माध्यम से गांधीजी ने मानव-जीवन की इसी सर्वांगी जीवन-पद्धति की ओर पुनः इंगित किया था। सर्वांगी खेती स्वावलंबी यानी पडोसी धर्म पर आधारित स्वदेशी जीवन का संदेश देती है। यह मनुष्य-जीवन को पशु-पक्षी तथा प्रकृति के साथ एकसूत्रता में बांधती है। सर्वांगी खेती की नींव जीवन की समग्रता है। एकतरफी निर्भरता शोषण की जननी है। अतः खेती तथा उस पर आधारित उद्योग उसी समाज के हाथ में रहने चाहिये, जिनको उनका उपयोग करना है। इससे शहरों द्वारा

PDF Compressor Free Version

गांवों का दिनोंदिन बढता शोषण मिट सकेगा, बेकारी अथवा शहरीकरण, केन्द्रीकरण आदि अनेक बुराइयों को काबू में रखा जा सकेगा।

भारतीय खेती की नींव बहुत गहरी है। वह आधुनिक खेती की तुलना में ऊर्जा का कम मात्रा में उपयोग करके भी उत्पादन में स्थायी वृद्धि के साथ पोषकता लाती है। वास्तव में सर्वांगी खेती ही वह पद्धति है, जिसमें जीवन-ऊर्जा का चक्र पूर्ण होता है। वह संतुलित तथा स्थायित्ववाला बनता है। कुल मिलाकर सर्वांगी खेती जीवन के प्रति मंगल दृष्टि प्रदान करती है।

मानव-जाति अपनी खोयी अस्मिता को पुनः प्राप्त करके अहिंसक जीवन की दिशा में बढ सके, इस दृष्टि से अनेकविध विचार व प्रयोग आज देश तथा दुनिया में हो रहे हैं। प्रस्तुत संकलन इसी दिशा में एक अल्प-सा प्रयास है। इसमें देश-विदेश के कुछ लेखों व अनुभवों का अनुवाद या संकलन किया गया है। कुछ लेख 'गांधी मार्ग' तथा 'ग्रामोपयोगी विज्ञान' आदि पत्रिकाओं से भी लिये गये हैं। आशा है कि इस प्रारंभिक प्रकाशन से सेन्द्रिय खेती यानी सर्वांगी जीवन-पद्धति के विचार की ओर देश का ध्यान खींचने में मदद मिलेगी। भविष्य में और अधिक गहराई में जाकर सर्वांगी खेती-प्रयोगों का विवरण व विचार-मंथन प्रकाशित करने का हमारा विचार है। उस दृष्टि से विचारोत्तेजक लेखों एवं प्रयोग-विवरणों को हम आमंत्रित करते हैं।

कनकमल गांधी
मंत्री
नई तालीम समिति
सेवाग्राम – वर्धा (महाराष्ट्र)

२५ दिसंबर, १९८५

PDF Compressor Free Version

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	छपा है	चाहिए
४	ऊपर से ४	जिन-जिन में	जिन-जिन
४	,, ५	होता है ।	होता है
५	,, १३	गायें	संकर गायें
६०	नीचे से ६	सरास	सरासर
१४	,, ११	की जाय	की जाय ।
२६	,, ५	दवाई	हवा
२९	ऊपर से ८-९	खेती प्रथम	प्रथम
२९	नीचे से २	क्या	क्यों
३०	,, १०	पौधों को प्राप्य	पौधों को तब प्राप्य
४०	ऊपर से ८	कुदाई	जुताई
४४	,, १५	गहरी	कम गहरी
४८	नीचे से ६०	खेती की तुलना	खेती की उपज तुलना
५०	ऊपर से १३	दूकाई	इकाई
५३	नीचे से १२	स्वस्थ	अस्वस्थ
५६	,, १-२	तक हमने	तब तक हम
६०	ऊपर से ५	फसल का	फसल को
६०	नीचे से ६	ओर पर लगाना	ओर लगाना
६४	,, १	जनसंख्य	जनसंख्या
६६	,, ७	चाहती	चाहता
६९	,, ९	ट्रन	टन
७३	ऊपर से ५	देखेगा	दीखेगा
७३	नीचे से १	विषय	विषम
८४	,, ५	जाता है	जाते हैं
९०	,, १६	बलों	बैलों
९९	,, ११	प्रश्न ही	प्रश्न नहीं
११४	ऊपर से ६-७	पूरे भरे...का विवरण ।	ये पंक्तियां नहीं चाहिए
११६	,, ७	प्राकृतिकी	प्राकृतिक
१२२	,, २	खाद	खाद्य
१२६	नीचे से ५	उपोजाऊपन	उपजाऊपन

PDF Compressor Free Version

अनुक्रम

१.	भारतीय खेती के पुनरुत्थान की दिशा	–	१
२.	सजीव भूमि पर आधारित स्वाश्रयी खेती	लेडी ईव बेल्फूर	२७
३.	प्राकृतिक खेती : एक भावी संभावना	बनवारीलाल चौधरी	४३
४.	सेन्द्रिय खेती और ऊर्जा की खपत	–	४८
५.	सेन्द्रिय खेती यानी पारिवारिक खेती	मोहनलाल चोरडिया	४९
६.	सेन्द्रिय खेती की विरासत	कोरा मेथेन	५१
७.	प्राकृतिक बनाम कृत्रिम खाद	शत्रुघ्नप्रसाद	६३
८.	उर्वरक और भूमि की उर्वरता	रवि शर्मा	६७
९.	कृषि और प्राकृतिक पुनः पूर्ति	बनवारीलाल चौधरी	७३
१०.	कीटनाशक या सृष्टिनाशक ?	कान्तिभाई शाह	७९

पृष्ठ	पंक्ति	छपा है	चाहिए
१३९	ऊपर से १२	१९६०	१८६०
१४२	नीचे से १	कारण	कारण कीडे
१४६	ऊपर से ४	पट्ठी	पट्टी
१४६	नीचे से १	शक्ति	शक्ति ।
१६४	ऊपर से १६	नकली	नकदी
१६५	,, ७-८	पौधों का ... होता है ।	ये पंक्तियां नहीं चाहिए
१७१	,, १५	जाता	जाती
१७७	,, ७	पेडों	मेडों
१७७	,, १०	पेडों	मेडों
१७८	नीचे से १४	भी मिलेगा	भी काम मिलेगा

PDF Compressor Free Version

११. कृत्रिम खाद के बदले गोबर से तीव्र खाद बनाने की पद्धति और उपयोग	बालाप्रसाद धूत	८७
१२. खेती-प्रयोग के नतीजे तथा प्रश्नचिह्न	–	९२
१३. बीजों की आनुवंशिकता की लूट	पेटराय मूनी	९५
१४. स्वस्थ भूमि : स्वस्थ नागरिक	बनवारीलाल चौधरी	१०१
१५. कीटनाशक या मनुष्यनाशक ?	वीर सिंह	१०५
१६. 'नाडेप' कम्पोस्ट खाद	ना. दे. पांढरीपांडे	१०९
१७. जीवंत कृषि के बुनियादी लक्षण	–	११६
१८. नीम की खाद	देवेन्द्रकुमार	११९
१९. बीजों के सौदागर	अनुपम मिश्र	१२१
२०. बारानी खेती : दासी न बनने पाये	–	१२७
२१. स्वस्थ नागरिक : स्वतंत्र देश	बनवारीलाल चौधरी	१३१
२२. हवा, पानी और मिट्टी	देवेन्द्रकुमार	१३९
२३. क्या कीटनाशक दवाएं अनिवार्य हैं ?	मीरा नंदा	१४१
२४. भारत में गोपालन : एक दृष्टि	बनवारीलाल चौधरी	१५७
२५. अमरीका की सेन्द्रिय खेती : अध्ययन-दल का अहवाल	–	१६३
२६. स्वाश्रयी गाय के प्रयोग	द्वारकाप्रसाद परसाई	१६९
२७. फ्रेण्ड्स रूरल सेंटर, रसूलिया (होशंगाबाद) खेती और पशुपालन		१७४

PDF Compressor Free Version

भारतीय खेती के पुनरुत्थान की दिशा

"अंग्रेजी राज कायम होने से पहले भारत में कृषि यहां के लोगों के जीवन का एक अंग थी, उनकी जीवन शैली थी। उनके लिए खेती बस एक आर्थिक गतिविधि नहीं थी। वह भारत के स्वाधीन गांवों में लोगों के नित्य जीवन की, एक बुनियादी प्रवृत्ति थी। समूचे जीवन से जुडी उस प्रवृत्ति का, अगर मात्र एक गतिविधि के नाते विवेचन करें तो भी, वह ऐसी प्रवृत्ति थी जो जीवन की सभी आवश्यकताएं पूरी करती थी। जीवन को समृद्ध करना उसका मुख्य काम था। सरकार की, बाजार की या उद्योगों की जरूरतें पूरी करना तो उसका गौण काम था।"*

वह खेती प्रकृति के जैविक तत्त्वों से भरी, स्वायत्त और गांव को सुदृढ बनाने वाली थी। गांवों और जंगलों के बीच एक जीवित सम्बन्ध था--जंगलों से खाद, ईंधन, औजारों और इमारतों के लिए लकडी मिलती थी और बदले में जंगलों को समृद्ध और संपन्न रखना गांव वालों का धर्म माना जाता था। उस खेती में पशुओं का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण था। वे खाद जुटाते थे और बोझा ढोते थे। सिंचाई का प्रबन्ध प्राय: गांव खुद कर लेते थे -- सिंचाई की जो बडी योजनाएं बनती थीं वे गांवों के स्थानीय प्रबन्ध को सहायता पहुंचाने की दृष्टि से ही बनती थीं।

इस स्वायत्त खेती प्रबन्ध पर सबसे पहला हमला अंग्रेज शासकों ने खेती पर भारी कर लगा कर किया; कर चुकाने के फेर में लोगों के और खेती के संबंधों में फर्क पड गया। वह 'कर' कुल उत्पादन पर ५० प्रतिशत तक भी बढा दिया गया था। इससे न केवल किसान, कंगाल हो गये, बल्कि खेती पर टिकी सारी समाज रचना ही अस्त-व्यस्त हो गयी। इसी तरह अंग्रेज सरकार ने जो वन नीति बनायी, वह हमारी ग्राम रचना पर दूसरे हमले की तरह थी। जंगलों को

*जितेंद्र बजाज : "ग्रीन रेवोल्यूशन : ए हिस्टारिकल पर्स्पेक्टिव" पी. पी. एस. टी. बुलेटिन खंड २, अंक २, नवम्बर १९८२.

PDF Compressor Free Version

उद्योगों और रेल्वे तथा इमारतों के लिए सुरक्षित कर दिया गया; किसान जंगलों का उपयोग करने से वंचित हो गए, खेती और जंगलों के बीच का जीवंत संपर्क टूट गया। इसके बाद, गांव-गांव की सिंचाई व्यवस्था टूटने लगी, क्योंकि उसके मूल स्रोत सुखा दिये गये थे। इन सब आघातों के बावजूद, १९ वीं सदी की अधिकांश अवधि तक भी हमारी खेती का उत्पादन एक-सा था; कहीं-कहीं बढता भी रहा। यह इस बात का सूचक है कि हमारी परंपरागत खेती की पद्धति कितनी मजबूत और जानदार है। उदाहरण के लिए, १८९३ में ब्रिटिश सरकार ने रायल एग्रीकलचरल सोसाइटी आफ इंग्लैंड के कन्सल्टिंग केमिस्ट डा० जॉन आगस्टस वॉलकर* को भारत की खेती का अध्ययन करने भेजा था। उन्हें इसमें 'आधुनिक' तथा 'वैज्ञानिक' पद्धतियों पर आधारित आवश्यक सुधार और सुझाव देने के लिए कहा था लेकिन वॉलकर ने जो रिपोर्ट सरकार को पेश की उसका एक मात्र लक्ष्य भारत की खेती से ज्यादा से ज्यादा सरकारी राजस्व बटोरना था फिर भी वह रिपोर्ट आंख खोल देने वाली है। वॉलकर लिखते हैं "भारत की खेती आम तौर पर बहुत ही उत्तम है।* पश्चिम में जो 'वैज्ञानिक' तरीके काम में लिये जा रहे हैं वे भारत की खेती के लिए उपयोगी नहीं हैं। रासायनिक खाद भारत की मिट्टी के लिए अच्छी नहीं है। यहां जो हजारों तरह के लकडी के हल हैं वे भारतीय परिस्थिति के लिए उपयोगी हैं और भारी लोहे के हल ठीक नहीं है। वॉलकर ने वन नीति को बदलने की भी बात की हैं। कहा कि "जंगलों का उपयोग गांव वालों को करने दो। लकडी की बिक्री से प्राप्त होने वाले राजस्व की जो हानि होगी वह, खेती और उसके उत्पादों के बढे हुए

* १९ वीं सदी के अंतिम दिनों में भारत की खेती की स्थिति के बारे में विस्तृत चर्चा के लिए पी. पी. एस. टी. बुलेटिन खंड २, अंक २, १९८२, देखें।

* १९२६ में 'रायल कमीशन आफ एग्रीकलचर इन इंडिया' ने उस रिपोर्ट के बारे में इन शब्दों में सराहना की है कि "वह भारत की खेती के बारे में अत्युत्तम अध्ययन है" और "जिन समस्याओं का विश्लेषण उसने किया है और उनके समाधान के लिए जो सुझाव दिये हैं, उनके बारे में वह रिपोर्ट अब भी सर्वाधिक उपयोगी है।

PDF Compressor Free Version

राजस्व की तुलना में नगण्य है।"उन्होंने यह भी लिखा कि "यद्यपि तेल के लिए तिलहन को इंग्लैंड ले जाना ठीक है, लेकिन तब उसके छिलके खली और डंठल आदि से यहां की जमीन वंचित होगी जो इस मिट्टी के लिए बहुत हानिकारक है।" इसी प्रकार उन्होंने हड्डी को इंग्लैंड ले जाने पर भी रोक लगाने की बात की थी।

हालांकि वॉलकर की रिपोर्ट की बडी सराहना की गयी, फिर भी १९०० के बाद यहां की खेती पर वे सब बातें धीरे-धीरे लादी गयीं जिनको वॉलकर ने मना किया था। सबसे पहले कोशिश यह की गई कि हलों के हजारों नमूनों की जगह एक ही नमूना जारी किया जाये। इस मानक के कारण देश भर में मुश्किल से १०-१२ नमूने रह गए और इन्हें बडे पैमाने पर तैयार करने का रास्ता खुल गया। देश की मिट्टी की घटती उर्वरता को ठीक करने के एक उपाय के रूप में रासायनिक खाद के आयात को मंजूरी दी गयी। लेकिन समग्र तकनीकी परिवर्तन की जोरदार कोशिश तो स्वतन्त्रता के बाद ६० के दशक के मध्य में की गयी।

देश आजाद हुआ, तब तक धरती के साथ लोगों के पुराने मजबूत संबध तोडे गए, वन-'नीति' ने लगभग सौ सालों तक भारतीय खेती पर नाना-प्रकार के प्रतिबंध लगाये, स्थानीय सिंचाई साधनों के प्रति हीन मनोवृत्ति पैदा की; इन सब के कारण और ऐसी और भी अनेक बातों के कारण भारत की खेती काफी सत्त्वहीन हो चुकी थी, और चीजों की ही तरह, अगर इसे भी तब ठीक करना था, फिर से खेती में प्राण फूंकने थे तो उसके लिए दृढ संकल्प चाहिए था राजनैतिक सूझबूझ और समझ की जरूरत थी। यह हो सकता था, यदि आधुनिक औद्योगीकरण की आवश्यकताओं के साथ देश के किसानों की आवश्यकताओं को भी मद्देनजर रखते। लेकिन वह हुआ नहीं, न होना था।

इस बीच पश्चिम ने आधुनिक उद्योग के ही एक उपकरण के रूप में सारी खेती के ढांचे को बदलने का तरीका ईजाद किया। उस बदले ढांचे के ही अंग हैं ये नये संकर उन्नत बीज, रासायनिक खाद,

PDF Compressor Free Version

कीडेमार दवाइयां, ट्रैक्टर तथा दूसरे सारे यंत्र, और आधुनिक सिंचाई के साधन। अगर यहां के किसान इनको अपना ले तो नाना उद्योगों के लिए एक विशाल बाजार तैयार हो जायेगा। इसी नये ढांचे का नाम 'हरित क्रांति' है और इसके लिए खेत में जिन-जिन में चीजों को डालना पडता है, और जितनी मात्रा में डालना होता है। उसके कारण यह जरूरी हो जाता है कि संसाधनों को किसी एक खास क्षेत्र में एकत्रित किया जाय ताकि वहां पैदावार बढ सके और अनाज के मामले में शहरों की जरूरतें पूरी की जा सकें। और यह प्रयास शहरी उद्योगीकरण और आधुनिकीकरण की, सरकार द्वारा अंगीकृत नीति से पूरी तरह मेल खाता है।

हरित क्रांति, श्वेत क्रांति आदि के परिणाम

हरित क्रांति की योजना देश के कुछ गिने-चुने क्षेत्रों में लागू की गयी। लेकिन उसका परिणाम सारे देश पर हुआ। चुने हुए क्षेत्रों में संसाधनों को जमा करने का नतीजा यह हुआ कि दूसरे क्षेत्रों को उन संसाधनों से वंचित होना पडा, और इससे परंपरागत साधनों, तकनीकों तथा यहां तक कि देश के कुल कृषि उत्पादन पर भी बुरा असर हुआ। शायद सबसे बडा आघात हमारे देशी बीजों की किस्मों पर हुआ -- हजारों सालों से देश भर में जो हजारों किस्म के बीज प्रचलित थे वे तेजी के साथ दस साल में ही गायब हो चले। केवल थोडी सी प्रयोग-शालाओं में सिर्फ एक-दो साल आजमाये गये 'अधिक उपज' वाले उन्नत बीजों का व्यापक प्रचार हुआ, लोग भी वही बीज बोने लगे लेकिन फसल पर रोगों और कीडों का भी उतना ही जोरदार हमला हुआ। साथ-साथ मिट्टी की कस घटने लगी। रासायनिक खाद और कीडे मार दवाओं ने उन सब मित्र कीटाणुओं को भी खत्म करना शुरू किया जो मिट्टी में नयी जान डालते हैं। यहीं नहीं, मिट्टी के पोषक द्रव्य भी खत्म हो चले। जब देशी साधन नहीं रहे, तो खेती शहरी औद्योगिक संसाधनों पर निर्भर हो चली। खेती पर किसानों का नियंत्रण नहीं रहा, बल्कि वे अपनी आवश्यकता की चीज पैदा करने में भी असमर्थ हो गये। आज उन्हें मुख्य रूप से बीज, खाद, पानी, दवा आदि चीजों का दाम चुकाने के लिए खेती करनी पडती

PDF Compressor Free Version

है। इस नयी खेती का ज्ञान अब पहले की तरह गांव की विद्या नहीं रहा, कृषि विश्वविद्यालयों और कृषि सेवा केन्द्रों की चीज बन गया।

जब एक बार आधुनिक बाजार खेती ने भारतीय खेती को अपने कब्जे में कर लिया, तो पशुओं की भूमिका भी बदल गयीं। इस नयी खेती में पशु मित्र नहीं रहा। बोझा खींचने या ढोने के काम ट्रैक्टरों और ट्रकों के हवाले हो गए। जानवरों का गोबर महत्त्व का नहीं रहा। गायें केवल दूध देने के लिए रह गयी और वह भी औद्योगीकृत शहरों के लिए। इसी विचार-दृष्टि की उपज है 'श्वेत क्रांति,' उसका मुख्य उद्देश्य है दूध को गांवों से इकट्ठा करके शहरों में बांटना, देशी गायें हमारी परम्परागत जीवन शैली के लिए अनुकूल थीं, पर अब वे काम की नहीं रहीं, इसलिए विदेशी नसल के सांड लाकर ऐसी संकर गाय पैदा करने का प्रयत्न शुरू हुआ जो ज्यादा से ज्यादा दूध दे सकें। गायें यहां की आबोहवा बर्दाश्त न करतीं, उनके लिए खास किस्म की खुराक और चारा दाना जुटाना पडता है और कई दवाएं काम लानी पडती हैं। पर विदेशी के मोह में इस सब की किसे चिंता! इस योजना के कारण एक तो गावों में दूध से बनी चीजें दुर्लभ हो गयीं और दूसरे, देशी गोधन नष्ट हो चला है।

तथा कथित 'दूसरी हरित् क्रांति' को लागू करने के पीछे भी यही विचार रहा है। पिछले डेढ सौ सालों में उद्योगों की जरूरत पूरी करने में हमारे जंगल योजनाबद्ध तरीके से खत्म किये गए। आज जंगलों की भूमि इतनी नंगी हो गयी है कि सारे पर्यावरण के लिए ही खतरा पैदा हो गया है। ऐसे समय योजना यह बन रही है कि देशी पेडों की जगह वे विदेशी पेड लगाये जायें जो जल्दी-जल्दी बढते हैं। इस प्रकार एक ही जाति के विदेशी पेडों को बढाने से यंत्रों से उनकी फसल काटने करने-का काम आसान हो जायगा, और उद्योग यही तो चाहते हैं। इस दूसरी हरित क्रांति के अन्तर्गत, फिर एक बार बहु-राष्ट्रीय संस्थानों की मदद से हजारों किस्मों के पुराने देशी पेडों के जंगल के जंगल काटे जायेंगे। और सफेदे जैसे कुछ ही किस्मों के विदेशी पेड लगाये जायेंगे।

PDF Compressor Free Version

इन क्रांतियों का प्रतिकार आवश्यक

पिछले कुछ समय से कई लोग यह महसूस करने लगे हैं कि आधुनिकीकरण के इन प्रयत्नों में कहीं कुछ बुनियादी दोष हैं। इसी दौर में देश में कई आंदोलन उभरे हैं जो अपने-अपने ढंग से इन योजनाओं का विरोध करने लगे हैं। किसानों ने देखा कि आधुनिक खेती के कारण वे बरबाद हो रहे हैं, इसलिए उन्होंने अपनी परंपरागत सेंद्रिय खेती फिर से आरंभ करने का तय किया है। लेकिन आवश्यक सुविधाओं की कमी तथा सरकार की प्रतिकूल नीतियों के कारण वे कठिनाई महसूस कर रहे हैं। कुछ व्यक्तियों ने इस स्थिति से लडना शुरू किया है। लेकिन सब महसूस कर रहे हैं कि ऐसी कोशिशें सबको मिल-जुल कर बडे पैमाने पर व्यवस्थित तरीके से करनी चाहिए। सेवाग्राम, वर्धा में 'सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान' के मंत्री श्री. कनकमल गांधी और श्री. क्लाड अलवारिस के संयुक्त प्रयास से १९ से २१ मार्च १९८४ तक 'सेंद्रिय खेती' विषय पर एक सम्मेलन आयोजित हुआ। श्री. कनकमल गांधी और अहमदाबाद के कोरा मेथन के संयोजकत्व में एक समिति बनायी गयी और तय किया गया कि देश भर के ऐसे व्यक्तियों और संस्थाओं को मिलाकर एक संगठन बनाया जाय जो देशी खेती को बढावा देने, देशी नस्ल के पशुओं के पालन और देशी जाति के पेडों द्वारा स्थानीय कृषि-वन संवर्धन के काम में जुटे हुए हैं और पर्यावरण के सिद्धांतों पर चलते हैं। देशी धान की किस्में, देशी गो नस्ल और देशी पेडों पर चर्चा करने के लिए अलग-अलग बैठकें करने का भी निश्चय किया गया। देशी धान की किस्मों पर १९८४ के अक्तूबर ४ से ६ तक. फ्रेंड्स रूरल सेंटर, होशंगाबाद में श्री. प्रताप अग्रवाल के संयोजकत्व में बैठक की गयी। पशुओं की देशी नस्लों से संबंधित बैठक कस्तूरबा कृषि क्षेत्र, कस्तूरबा ग्राम, इंदौर में १९८४ के अक्तूबर १८ से २० तक श्री. टी. गोविंदन कुट्टी मेनन के संयोजकत्व में हुई। इन बैठकों का सार यहां दिया जा रहा है।

देशी खेती संबंधी सम्मेलन

यह सम्मेलन देशी खेती, पशुपालन तथा वनों की गतिविधियों के विभिन्न पहलुओं पर एक खुली बैठक के रूप में हुआ। सम्मेलन में

PDF Compressor Free Version

आधुनिकीकरण के कारण पैदा हुई समस्याओं पर चर्चा हुई, जैसे -- ये गतिविधियां देश में इतने विशाल पैमाने पर कैसे फैलीं, परंपरागत तरीके क्या-क्या हैं, अलग-अलग संस्थाएं और व्यक्ति सेंद्रिय खेती के क्या-क्या नये प्रयोग कर रहे हैं, आदि ।

क्लाड अलवारिस ने सम्मेलन का आरंभ करते हुए कहा कि सेंद्रिय खेती का विचार विदेशी नहीं है, बल्कि इसी देश की खेती का एक मुख्य अंग है, यहीं की चीज है । जब तक सेंद्रिय खेती के साथ देशी कृषि पद्धतियों को हम जोडेंगे नहीं (जो कि आज भी देश के अनेक भागों में जारी है) वह केवल एक फैशन या सनक भर रह जायगी । उन्होंने इस तथ्य पर जोर दिया कि आज इस देश में दो भिन्न प्रकार की जानकारी के आधार पर काम चल रहा है । एक है देशी और दूसरी वह जिसका विकास दूसरे प्रकार के वातावरण में हुआ है । विदेशी ज्ञान हमारे लिए हानिकारक है । उदाहरण के लिए पशुओं के विकास को देखें । विदेशी नस्ल के संकर का परिणाम हम देख रहे हैं कि देशी नस्ल बिल्कुल नष्ट होने लगी है । अनाज के बीज को लीजिए । देशी बीज और देशी 'जीन' खत्म किये जा रहे हैं ताकि बहुराष्ट्रीय संस्थान हमें लूट सकें । सेंद्रिय खेती को अपनाना साम्राज्यवाद का मुकाबला करने का और विश्व बैंक तथा दूसरी आर्थिक मदद देने वाली अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं को दूर रखने का भी एक कारगर उपाय है ।

उद्घाटन भाषण करते हुए डा. शैलेंद्र घोष ने जानकारी दी कि अमरीका में रासायनिक उर्वरकों के कारण करोडों एकड जमीन की ऊपरी सतह की मिट्टी खत्म हो गयी है । उन्होंने बताया कि कुछ आलोचकों का यह कहना कि सेंद्रिय तत्त्व पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध नहीं है, सरास गलत है । सेंद्रिय तत्त्व रासायनिक खाद की तरह भले ही बटन दबाते ही तैयार नहीं हो जाता हो, पर वह एक खास जीवन शैली का अंग है । कुछ देर से ही सही पर अब हम लोग मिट्टी के जैविक तत्त्वों का महत्त्व समझने लगे हैं । रासायनिक खेती के कारण ये तत्त्व खत्म हो चले हैं । खेती में मददगार होने वाले केंचुए, सांप आदि अनेक कीडे मर रहे हैं ।

PDF Compressor Free Version

ग्राम सेवा समिति, रैसलपुर (म. प्र.) के श्री. बनवारीलाल चौधरी ने बताया कि अभी कोई २५ साल पहले तक भी गांवों के पास काफी अनाज और दूध रहता था। हरित् क्रांति ने पैदावार तो बढायी, लेकिन गांव भूखे हैं। आज होशंगाबाद जिले का उनका गांव लगभग सवा लाख रुपयों की रासायनिक खाद खरीदता है। फसल कटते ही किसानों को उसे बेच देना पडता है क्योंकि उसे खाद का कर्जा चुकाना होता है। यह भारी ब्याज पर लिया जाता है। पहले पूरी खेती के लिए ३०,००० रुपए काफी होते थे। रासायनिक खाद का इस्तेमाल होने से पहले कुल खर्च से १० गुना ज्यादा आय होती थी। रासायनिक खाद इस्तेमाल करने पर वह आय ४०-५० गुना तक बढ गयी, लेकिन अब फिर १० गुने पर उतर आयी है, वह भी महंगी चीजें खेत में डालने के बाद। जितनी भी पैदावार होती है सब इटारसी या होशंगाबाद चली जाती है। पुराना फसल चक्र टूट गया है। चूंकि केवल गेहूं पैदा होने लगा है तो पोषण की समस्याएं भी खडी हुई हैं।

तिस पर, गांव की गरीबी बेहद बढी है। स्वास्थ्य बिगडा है। तडके चार बजे तक गांव का सारा दूध इटारसी चला जाता है। यह सब देखकर बनवारीलालजी ने वापस सेंद्रिय खेती करना तय किया। पहले साल पैदावार काफी कम हुई। तीसरे साल पैदावार बढी। असल में सेंद्रिय खाद ज्यादा मात्र में जरूरी नहीं है। होमियोपेथी की तरह कम से कम मात्रा काफी होती है। फसलों की अदला-बदली अत्यावश्यक है। रासायनिक खादों का हमें बहिष्कार ही करना होगा। 'उन्नत' बीज का उपयोग नहीं करना चाहिए। केवल कुछ हिस्सों में ज्यादा से ज्यादा फसल पैदा करने से नहीं, सब जगह अनाज की औसत पैदावार बढाने से ही देश की गरीबी दूर की जा सकती है।

पी. पी. एस. टी. के श्री. अशोक झुनझुनवाला ने कहा कि यह एक गलत धारणा फैल चली है कि जो लोग महंगी रासायनिक खाद इस्तेमाल कर नहीं पाते हैं, उसका खर्च बरदाश्त नहीं कर सकते हैं वे ही सेंद्रिय खाद डालते हैं और रासायनिक खेती की तुलना में सेंद्रिय खेती नुकसानदेह है। लेकिन यह गलत है। पिछला इतिहास देखें तो

PDF Compressor Free Version

असलियत का पता चलता है। डा. झुनझुनवाला ने १९ वीं सदी के अंतिम वर्षों में भारतीय खेती पर श्री. वॉलकर की रिपोर्ट का उल्लेख किया और कहा कि कैंब्रिज इकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया ने भी स्वीकार किया है कि सन् १८०० के आस-पास इंग्लैंड की 'वैज्ञानिक खेती' की पैदावार की अपेक्षा भारत के खेतों की पैदावार ज्यादा थी।

१८५० के दशक में खेती और जंगलों का जीवंत संबंध तोड दिया गया क्योंकि जंगलों को रेलवे के लिए, जहाज बनाने के लिए और दूसरे शहरी उद्योगों के लिए सुरक्षित कर दिया गया। इसी वजह से ईंधन के रूप में गोबर का उपयोग करना जरूरी हो गया। सिंचाई के तालाब बनाना और उसकी देखभाल करना पहले गांवों का अपना काम था, लेकिन अंग्रेज सरकार ने समस्त राजस्व को अपने हाथ में केंद्रित कर लिया तो इनके रख रखाव के लिए साधन नहीं बचे। हमारी अपनी सिंचाई व्यवस्था की दुर्गति होने लगी। तिलहन और हड्डी का निर्यात होने लगा तो खेतों को खाद मिलना-मुश्किल हुआ। सरकार की इन नीतियों ने भारत की परंपरागत खेती के ढांचे पर ही हमला किया। करों की दर बढती गयी तो आय का विनियोग फिर से खेती में करना मुश्किल होता गया। खेती का सारा क्रम बिगड गया और खेती का ज्ञान धीरे-धीरे गायब होता गया। फिर भी यहां की खेती कितनी सुदृढ और प्राणवान थी, इसका अंदाज इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि ऐसी अधोगति के लगभग एक सौ साल बाद तक भी, यानी पिछले १५ साल पहले तक भी इस खेती ने समस्त देशवासियों का पेट पाला है।

ऐसे में आधुनिक खेती ने यहां कदम रखा। वह यहां की स्वस्थ परंपरागत खेती का मुकाबला कर नहीं सकती थी, पर जहां खेती की पहले से ही दुर्गति थी, बस वहां उसने अपना पराक्रम दिखाया। यह ध्यान में रखना जरूरी है कि आधुनिक खेती केवल यहां की आबोहवा और पर्यावरण के लिए ही हानिकारक नहीं है, साथ ही वह उद्योग-प्रधान है। उसमें जिन चीजों का उपयोग होता है– बीज, खाद, दवाएं आदि––सब शहरी उद्योगों से आती हैं और बदले में खेती की पैदावार का लाभ वे ही उद्योग उठाते हैं। आज हमारे सामने दोहरी चुनौती

PDF Compressor Free Version

है। एक तो हमें अपनी खेती के बारे में पुराना सारा ज्ञान पुराने लोगों से या पुरानी किताबों या रिकार्डों से इकट्ठा करना होगा, और दूसरी, जंगल, सिंचाई, पानी, देशी बीज आदि सबका आपसी संबंध फिर कायम करना होगा।

श्री. धर्मपाल ने कहा कि भारत की खेती के पतन की प्रक्रिया को हमें जान लेना जरूरी है। एडिनबर्ग क्रानिकल ने लिख रखा है कि १९ वीं सदी के आरंभ तक भी भारत में खूब पैदावार होती थी और श्रमिकों को अच्छी मजदूरी मिलती थी। भारत के खेती के औजार विदेशों को भेजे जाते रहे हैं। श्री. धर्मपाल का कहना था कि अगर देश का संचालन करने का उत्तम तरीका केंद्रीय नियंत्रण और केंद्रीय मार्गदर्शन को ही मानते हैं तो फिर उसके लिए रासायनिक खेती जरूर अनुकूल रहेगी।

कटक के चावल अनुसंधान संस्थान के डाइरेक्टर रह चुके और देशी धानों की किस्मों के विशेषज्ञ डा० रिछारिया ने अपने काम की जानकारी दी। उन्होंने सुझाव दिया कि इस सम्मेलन का नाम 'भारतीय खेती में सेंद्रिय पद्धति की पुनः खोज' होना चाहिए। उन्होंने एक बात यह कही कि हमें पहले यह तय करना चाहिए कि हमें इस देश की खेती को कारखाना आधारित बनाना है या स्थानीय संसाधनों पर आधारित। दरअसल केंद्रीय नियंत्रण में चलने वाले वैज्ञानिक संगठनों से कोई लाभ नहीं होगा। ऐसे संस्थानों के अनुसंधानों में से मुश्किल से ५ प्रतिशत ही किसानों तक पहुंच पाते हैं। एक गांव से दूसरे गांव की परिस्थिति बदलती रहती है। श्री. रिछारिया ने बताया कि उन्होंने मध्य प्रदेश में से कोई १९ हजार किस्म का चावल इकट्ठा किया है। उन्होंने उन किस्मों में कुछ प्रमुख जातियां और उनकी विशेषताओं के बारे में भी जानकारी दी। पर इन सब किस्मों के बीज बडी तेजी से गायब होते जा रहे हैं। भारत सरकार इसके लिए कुछ नहीं कर रही है। दरअसल हमारी सरकार इन बीजों का निर्यात करने में मदद कर रही है। बहुराष्ट्रीय संस्थान इन बीजों को बाकायदा जमा कर रहे हैं और अब वे खुलकर कहने भी लगे हैं कि वे अपने नियंत्रण में अच्छे बीजों का भंडार रखेंगे और कुछ ही वर्षों में आधुनिक

PDF Compressor Free Version

नयी किस्में खत्म हो जायेंगी, तब वे उपयुक्त बीजों के लिए मनमाने दाम मांग सकेंगे।

सम्मेलन में जगह-जगह हो रहे सेंद्रिय खेती के प्रयोगों की रिपोर्ट भी पेश की गयी। इनमें रसूलिया के फ्रेंड्स रूरल सेंटर, मद्रास के मुरगप्पा चेट्टियार रिसर्च सेंटर, आरोविल तथा पूना के प्रो० दाभोलकर का काम शामिल था।

श्री. बनवारीलाल चौधरी के भाषण के साथ पशुओं की नस्ल की चर्चा आरंभ हुई। उन्होंने कहा कि भारत में गाय-बैल पालना हर घर का अपना काम था। हमारे यहां पशुओं का दोहरा प्रयोजन है—दूध और बैल। विदेशी नस्लें केवल दूध वाली होती हैं। हमारे यहां कोई १५-१६ प्रमुख देशी नस्लें हैं। पहले यहां भी कुछ देशी जातियों के संकर किये जाते थे जिनसे दूध भी बढता था और अच्छे बैल भी मिलते थे। इन दिनों भारतीय तथा विदेशी दोनों में घटिया से घटिया नस्लों का संकर किया गया है : जिसका नतीजा बिल्कुल ही बेकार रहा, जैसे टाइलर नस्ल। श्वेत क्रांति के नाम पर विदेशी संकर के कारण हमारी देशी नस्लें खत्म हो रही है। विदेशी गायें यहां की आबोहवा बरदाश्त नहीं करतीं और बहुत आसानी से रोग की शिकार हो जाती हैं। भारत में अच्छी से अच्छी दुधारू नस्लें राजस्थान में पायी जाती है जहां बारिश कम होती है। जर्सी और होलस्टीन जैसी विदेशी गायों को खुराक भी विदेशी ही देनी पडती है। यहां इनके आने से यहां की गोपालन की प्राचीन परंपरा एकदम बदल गयी है। अगर उन्हें विशेष बाजारू खुराक, आहार न दें तो वे २-३ लिटर से ज्यादा दूध दे नहीं पाती हैं। एक गांव में सर्वेक्षण करके देखा गया कि ५० में से केवल २-३ बैल ही हल चलाने का काम करने योग्य थे। श्री. बनवारीलालजी ने कहा कि हमारी देशी नस्लों को खत्म करने की बाकायदा साजिस की जा रही है। जो भी कार्यक्रम बनते हैं सब शहरों के लिए बनते हैं, गांवों के लिए नहीं। मध्य प्रदेश में, स्थानीय नस्लों को बढावा देने की एक 'ग्रामयोजना' बनायी गयी थी पर वह वहीं खत्म कर दी गयी। विदेशी नस्ल की गायों के लिए भरपूर सब सिडी दी जाती है। देशी के लिए कुछ नहीं।

PDF Compressor Free Version

अहमदाबाद के 'लालभाई ग्रुप रूरल डेवलपमेंट फंड' के श्री. कोरा मेथेन ने बताया कि देशी और विदेशी गायों के दूध उत्पादन संबंधी आंकडों में अक्सर गडबड की जाती है। अक्सर अच्छी से अच्छी विदेशी गाय की तुलना घटिया देशी नस्ल की गाय से की जाती है। श्री. मेथेन ने श्वेत क्रांति तथा उसके लिए देश को कितनी बडी कीमत चुकानी पडी है, इस पर भी चर्चा की।

इसके बाद जंगलों की हालत पर चर्चा हुई। रिसर्च फाउण्डेशन फार साइन्स एण्ड टेक्नोलाजी एण्ड नेच्युरल रिसोर्स पालिसी, देहरादून की डा० वंदना शिवा ने सेंद्रिय खेती के तीसरे आधार क्षेत्र, वन संसाधनों के बारे में अपने विचार रखे। उन्होंने कहा कि पहले गाय-बैलों के मार्फत और घास-पात के रूप में उर्वरता जंगलों से खेत तक पहुंचा करती थी। जंगल घटते गये और विश्व बँक तथा केनेडियन इंटरनेशनल डेवलपमेंट एजेन्सी की सहायता से विशाल पैमाने पर जंगल लगाने का कार्यक्रम चला तो वह जंगल ऐसा निकला जो हमारे खेतों को उजाडने लगा।

उन्होंने कहा कि पिछले सौ सालों से वन विभाग यहां का सबसे बडा जमींदार रहा है। जब जंगल को एक जीवन पद्धति का अंग न मानकर लकडी की खान मानकर चलते हैं तो उसके लिए बिल्कुल ही दूसरे प्रकार की शासन-प्रणाली अपनानी पडती है। मुख्य फारेस्ट आफीसर को कन्जर्वेटर इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह जंगल के राजस्व को कन्जर्व (संरक्षण) करने का काम करता है। पश्चिमी घाट के जंगलों पर पहला हमला तब हुआ जब छावनियां और जहाज बनाने के और रेलवे लाईन बिछाने के काम शुरू हुए। बडे भारी पैमाने पर जंगल काटे गये। तथा कथित 'वैज्ञानिक वन-प्रबंध' १८७० में शुरू हुआ। सारा ध्यान उत्पादन पर केंद्रित किया गया, मिट्टी का ख्याल नहीं रखा गया। उस सदी के मध्य तक कागज जैसे नये उद्योगों के लिए कच्चे माल की मांग बढी तो प्राकृतिक वन एक के बाद एक बिल्कुल ही साफ होते चले गये और उनकी जगह सफेदे जैसे एक ही जाति के पेड लगाये जाने लगे। एक सफेदे के पेड से ४०-५० कि. ग्रा. से ज्यादा पत्ते जमीन को नहीं मिलते। पशुओं का चारा तो उससे बिल्कुल ही नहीं मिलता।

PDF Compressor Free Version

बैठक में और भी कई बातों पर चर्चा हुई। कंपोस्ट खाद बनाने के तरीके क्या-क्या हैं, गैस प्लांट से निकलने वाले घोल का उपयोग खेतों में करना क्या ठीक रहेगा, उसका खाद के रूप में अच्छे से अच्छा उपयोग कैसे हो सकता है, आदि।

इस सम्मेलन ने कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये हैं :

१. आज देश में सेंद्रिय खेती के जो तरीके काम में लिये जा रहे है उनकी एक सूची तैयार की जाय।

२. पुराने जमाने से प्रचलित सूक्तियों, मुहावरों, कहावतों आदि का संकलन किया जाय और उनकी सत्यता को आजमाने की दृष्टि से उन पर प्रयोग किये जाय।

३. अनेक सदस्यों ने हमारी खेती के काम का संयोजन करने के लिए एक संस्था या संगठन की आवश्यकता पर जोर दिया ताकि सेंद्रिय खेती के विचार को, देशी फसलों, पशुओं, वृक्षों आदि जैविक संसाधनों के रक्षण और संवर्धन के प्रयत्नों को बढावा दिया जा सके।

हमारा धन-धान्य*

देशी धान की बैठक के लिए तैयार किये गये निबंध में सबको याद दिलाया है कि "भारत पेड-पौधों की असंख्य उन्नत जातियों और किस्मों के बीजों का समृद्ध भंडार रहा है। केवल धान में ही ४३ हजार जातियां यहां पायी गयी हैं और उनका लेखा-जोखा मौजूद है।

विश्व भर में धान की जो १,२०,००० किस्में काश्त की जा रही हैं, उनमें एक तिहाई तो केवल भारत में हैं। इन सब किस्मों की अपनी-अपनी खासियतें हैं। उनका आकार प्रकार, रोगों का प्रतिकार करने की शक्ति, कीडों से बचने की क्षमता, भिन्न-भिन्न आबोहवा में टिके रहने का गुण सब में अलग-अलग हैं, ये हर क्षेत्र की खास परिस्थिति के अनुकूल हैं। आज पश्चिमी ढंग के विकास कार्यक्रमों के परिणाम स्वरूप ये सारे गुण खत्म होते जा रहे हैं। आज भारत में आम तौर पर बोई जाने वाली धान की केवल ३० के लगभग किस्में ही रह गयी हैं। यह स्थिति बडी खतरनाक है, समूचे देश के सामने खाद्यान्न के अभाव का घोर संकट किसी भी क्षण खडा हो सकता है।

* यह परिसंवाद १९८४ के अक्तूबर की ता. ४ से ६ तक फ्रेंडस रुरल सेंटर, होशंगाबाद में आयोजित हुआ।

PDF Compressor Free Version

"हमारे यहां इतना विशाल बीज भंडार था, जिसके अनेकों प्रकार थे, जो हर तरह की और विपरीत आबोहवा से भी टिके रह सकते थे, तभी हमारे आंखों देखी हरित क्रांति इस देश में हो सकी। लेकिन मुख्य लक्ष्य केवल ज्यादा से ज्यादा पैदावार लेने का रहा, इस लिए दूसरे अनेक गुणों को, जैसे–रोगों से लडने की शक्ति, सूखे की स्थिति में भी जिंदा रहने की शक्ति, आदि को हम खो बैठे। इन क्षतियों की पूर्ति के लिए नये-नये रासायनिक द्रव्यों का इस्तेमाल करने का प्रयत्न किया गया ताकि पैदावार बढे, कीडों को खत्म किया जायें और फसल को रोगों से बचाया जाय आदि। जिस पर, सूखे जैसी स्थिति में बचे रहने के लिए बडी मात्रा में पानी की जरूरत पडने लगी, कुल मिलाकर इन संकर बीजों के व्यापक प्रसार के साथ-साथ, अपेक्षित मात्रा में बढी हुई पैदावार लेने के लिए उतने ही बडे पैमाने पर खेती के यंत्रीकरण की भी जरूरत पडी। इस कारण खेती-आधारित रासायनिक उद्योगों और उनसे जुडे दूसरे उद्योगों को मुनाफा कमाने का स्वर्ण अवसर हाथ लगा। छोटा गरीब किसान मुसीबत में पडता गया। उसकी खेती अब उसके बस की नहीं रही। जिंदा रहने के लिए भी उसे औरों पर निर्भर रहना पडा।

"हम देख रहे हैं, हरित क्रांति का स्वीकार केवल इस दृष्टि से किया गया कि अच्छी से अच्छी परिस्थिति में ज्यादा पैदावर देने वाले बीजों की किस्में तैयार की जाय उसका उद्देश्य यह बिलकुल नहीं था कि सूखे या कीडों से बच सकने वाले अच्छे बीज तैयार किये जाय, उसका उद्देश्य यह बिलकुल नहीं था कि मिली जुली फसलें बोकर पैदावार बढाने के परंपरागत तरीकों को पहले उन्नत किया जायें। उसका उद्देश्य यह भी बिलकुल नहीं था कि ऐसी तकनीक ईजाद की जाये जो श्रमिक प्रधान हो और जिसमें विदेशी चीजों का इस्तेमाल न करना पडे, उसका उद्देश्य यह भी बिलकुल नहीं था कि अनाज और फलियों से युक्त परंपरागत संतुलित फसल क्रम को फिर लागू करने का प्रयत्न किया जायें।

"इस तरह के विकास कार्य में अनेक खतरे हैं। अधिक उपज देने वाली इन किस्मों के कारण न केवल परंपरागत जातियाँ लुप्त और

PDF Compressor Free Version

समाप्त हो चली हैं, बल्कि चूंकि ये बहुत जल्दी रोगों और कीडों के शिकार हो जाती हैं, इसलिए कई बार बडे पैमाने पर पूरी की पूरी फसल खराब हो गयी है। प्रमुख कीडों को मारने के लिए जिन दवाओं का इस्तेमाल किया उनसे छोटे मामूली कीडे जिंदा रह गये, फसल को खाने लगे और थोडे ही समय में वे ही बडे प्रमुख कीडे बन गये। साथ ही, कीडों में दवाओं को नाकाम करने की शक्ति पैदा हो गयी, ढेर सारी ऐसी दवायें बिलकुल प्रभावहीन हो गयीं। खरपतवार की भी यही हालत रही। लेकिन इन जहरीली दवाओं ने अनेक कीटाणुओं और जीव जंतुओं को नष्ट कर दिया जो खेती के लिए मित्र सहायक और जरूरी थे। जहरीली दवाएं खेतों से बहकर पानी में मिलीं और फिर मनुष्यों के शरीर में भी चली आयीं। इससे फसलों का पशुओं का और मनुष्यों का जीवन विषाक्त हो गया। उजडने वाली एक-एक वनस्पति के साथ उस पर निर्भर करनेवाले कम से कम तीस तरह के कीडे, प्राणी और दूसरे पौधे धीरे-धीरे मरने लगे। पानी का उपयोग बेहद बढा, लेकिन रिसाव के लिए नालियों आदि का ठीक प्रबंध नहीं किया गया तो नतीजा यह हुआ कि कई जगह अच्छी-खासी उपजाऊ जमीन खारी हो गयी, दलदल बन गई। विकास योजनाओं के नाम पर घने जंगल, जिनमें नाना प्रकार के पेड पौधे थे, काट दिये गए। इससे जंगलों को, जो कि राष्ट्र की प्राकृतिक बहुमूल्य संपदा का भंडार थे, बेहद नुकसान होने लगा। फिर रासायनिक पद्धति से उपजाये गये खाद्यान्न में पोषक तत्त्व कम होता है और भी अनेक गुण नहीं होते जो परंपरागत तरीके के अनाज में होते थे। जब इस प्रकार परंपरागत जातियां दिन ब दिन घटती जा रही हैं, तो जो लोग 'रासायनिक खेती' की हिमायत किया करते हैं, उनके सामने भी भयंकर खतरा खडा हो गया है, क्योंकि इन नयी किस्मों में उन सारे गुणों और पोषक तत्वों को लाने का उनके पास कोई उपाय नहीं है। दूसरे शब्दों में, आज ऐसी स्थिति पैदा हो गयी है कि हर एक को नुकसान उठाना पड रहा है--लेकिन सबसे ज्यादा नुकसान हुआ है गरीब किसान को जिनके सामने जीने-मरने का सवाल खडा हुआ है।"

PDF Compressor Free Version

इस पृष्ठ भूमि में डा० आर० एच० रिछारिया ने धान के पौधे का उद्‌गम और इतिहास, धान की अनगिनत किस्में, उनका महत्त्व, बीजों को उन्नत करने तथा उपज बढाने वाली तकनीक की आवश्यकता आदि मुद्दों पर अपने विचार रखे। डा० रिछारिया ने रसूलिया के खेतों में धान की फसल के विविध पहलुओं का प्रत्यक्ष प्रदर्शन भी किया। श्री. कृष्ण कुमार, श्री. बलराम और श्री. प्रताप अग्रवाल ने रसूलिया में हो रही अनजुती खेती (ऋषि खेती) और सेंद्रिय खाद पर आधारित प्रयोगों की जानकारी दी। ओरेवील के श्री. बर्नार्ड और जाप ने बताया कि उन्होंने अपने अध्ययन से पाया है कि देशी धान की किस्में ही उत्कृष्ट हैं। श्री. प्रिया देशिंगकर ने आइ० आर० आइ० तथा आइ० सी० ए० आर० द्वारा अधिक उपज देने वाले बीजों पर किये जा रहे शोधों, विस्तार योजनाओं और कार्य पद्धतियों की जानकारी दी।*

सम्मेलन के प्रतिनिधियों ने एक नये धान अनुसंधान संस्थान स्थापित करने की आवश्यकता पर जोर दिया जिसमें धान की देशी किस्मों को विकसित करने का प्रयत्न किया जाय। इस बीच मध्य प्रदेश सरकार ने ऐसी संभावनाओं का पता लगाने के लिए डा० रिछारिया को निमत्रित किया है। प्रतिनिधियों ने एक छोटी पुस्तिका प्रकाशित करने का भी निश्चय किया जिसमें धान की समस्या का विवरण हो और धान की देशी किस्मों का महत्त्व समझाया जाय। देश के विभिन्न भागों में उपलब्ध सभी देशी धान के बीजों को सुरक्षित रखने का काम भी आरंभ किया जायगा।

हमारा गोधन

इसी कडी में देशी गोवंश संबंधी परिसंवाद के लिए निम्नलिखित प्रास्ताविक निबंध श्री. कोरामेथेन ने तैयार किया था।*

---

१. मेंजिगरा नामक पत्रिका के खंड ७, अंक ३, १९८३ के अंक में डा. एम. एस. स्वामिनाथन के लेख 'राइस रिसर्च स्ट्रैटजीज फॉर द एइटीज, में अधिक उपज देने वाली किस्मों के बारे में प्रचलित वैज्ञानिक दृष्टि कोणों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

२. यह परिसंवाद कस्तूरबा ग्राम, इंदौर में १९८४ की अक्तूबर १८ से २० तक हुआ।

PDF Compressor Free Version

"भारत अपने गोधन के लिए संख्या और गुणवत्ता दोनों दृष्टियों से प्राचीन काल से प्रसिद्ध रहा है। जहां तक संख्या का सवाल है विश्वभर के कुल पशुओं का २० प्रतिशत भारत में है। गुणवत्ता के मामले में भारत के पशुओं की जातियां अनेक हैं जो भारतीय परिस्थिति के लिए अनुकूल हैं, बहुमूल्य हैं। परंपरा से भारत में गायों का पालन दो उद्देश्योंसे होता आया है – एक तो दूध का उत्पादन और दूसरा, खेत जोतने तथा बोझा खींचने जैसे कामों में उपयोग। उनमें रोगों से बचने की अद्भुत क्षमता है और सूखे की स्थिति में भी वे निभने की क्षमता रखते हैं। चूंकि ये पशु भारत के पर्यावरण के संरक्षक हैं, इसी लिए उनके पालन-पोषण में भी बहु-उद्देश्यता का संतुलित विकास किया जाता रहा है। केवल किसी एक ही उद्देश्य को ज्यादा महत्त्व नहीं दिया जाता था। यही कारण है कि भारत की गायें बहुत ज्यादा दूध देने वाली नहीं रही हैं। फिर भी यहां ऐसी नस्ल की गायें पहले भी थीं और आज भी हैं जो अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से उत्कृष्ट मानी जाने वाली गायों के बराबर दूध देती हैं। इसके अलावा, जब से खेती में पशुओं की भागीदारी शुरू हुई तब से आज तक ये पशु जमीन को उपजाऊ बनाने और फिर उस उपजाऊपन को बनाये रखने का प्रमुख साधन बने हुए हैं।

"ऐसी परिस्थिति में हमारे यहां पशुपालन में पाश्चात्य तकनीक और प्रबंध का प्रवेश विदेशी नस्लों के संकर के द्वारा हुआ। इसके पीछे दलील यही है कि हमें ज्यादा से ज्यादा दूध उत्पादन करना चाहिए अर्थात् गायों का पालन केवल एक ही उद्देश्य से किया जाना चाहिए। फिर एकमात्र पवित्र सत्य के रूप में इस बात का प्रचार जोरों से किया गया कि दूध की पैदावार बढाने का एक मात्र उपाय विदेशी नस्ल का संकरण ही है। .....दर असल दूध की मात्रा बढाने के बारे में बात सही हो सकती है, लेकिन संकर जाति के गाय-बैलों की उपयोगिता देशी गाय-बैलों की तुलना में निश्चित ही कम है। विदेशी संकरण से पैदा होने वाली सभी नस्लों में रोग निरोधक शक्ति बिलकुल घट जाती है, सूखे की हालत में बिलकुल निकम्मी हो जाती है और सूखे वातावरण में जिंदा रहने की क्षमता भी उनमें नहीं होती।

PDF Compressor Free Version

इसके अलावा इन संकर जाति के पशुओं के पालन के लिए बढिया किस्म का चारा दाना चाहिए, ज्यादा पानी चाहिए और स्वस्थ रखने के लिए बहुत सारे इंतजाम चाहिए। जब रोग-निरोधक शक्ति घट जाती हैं और स्वास्थ्य की देखरेख बहुत करनी पडती है, तब संगठित औषध निर्माण के उद्योग की चांदी है। भार खींचने या ढोने वाले पशु के रूप में ये बैल काम के नहीं हैं, इसीलिए खेती में यंत्रों का उपयोग जरूरी हो जाता है और उन्हें बनाने वाले उद्योग मालामाल होने लगते हैं। चूंकि इस खेती में बडी मात्रा में पानी जरूरी है, इसलिए बडी मात्रा में ही पानी मुहैया करने वाले उपकरणों की जरूरत भी बढती है। दूसरे शब्दों में इस प्रकार की तकनीक को अपनाना संगठित उद्योगों के लिए ही फायदेमंद है, गरीब किसान के लिए नहीं।

"केवल दूध उत्पादन की दृष्टि से भी देखें तो इस देश में कई ऐसी नस्लें हैं, जो बडी मात्रा में दूध दे सकती हैं और जरूरतें पूरी कर सकती हैं। ऐसी देशी नस्ल से संकरण करते हैं तो और भी कई लाभ हैं, जैसे – गायों की रोग निरोधक शक्ति घटती नहीं, सूखे की स्थिति में वे निकम्मी नहीं होंगी और वातावरण में भी मर जाने का डर नहीं होगा। इस ज्यादा दूध देने वाली नस्लें देश के सभी इलाकों में पायी जाती हैं, लेकिन विदेशी नस्ल के संकरण के इस अंधी दौड के परिणाम स्वरूप वे धीरे-धीरे गायब होती जा रही हैं।

उदाहरण के लिए लाल सिंधी गाय, दूध देने की अवधि में कुल ५,४४० किलोलिटर दूध देती हैं, साहीवाल गाय ४,९०० लिटर दूध देती है, थार पार्कर लगभग ४,३७५ लिटर देती है, गीर, काँकरेज, ओंगोल, खालंव आदि कई नस्लें हैं जो दूध देने की प्रत्येक कालावधि में ३००० लिटर से ज्यादा दूध देती हैं। भैंसों में, मुर्रा, जाफरादी, सुरती, मेहसाणी, नागपुरी आदि जातियां दूध देने की अवधि में ३००० लिटर से ज्यादा दूध के लिए मशहूर हैं (जिसमें ७-८ प्रतिशत चिकनाई होती है)। दूध उत्पादन के अलावा इनका पाडा (नर) खेती के और बोझा खींचने के काम के लिए भी उत्कृष्ट हैं।

PDF Compressor Free Version

सदियों से यहीं पैदा हुए हैं, यहीं पले हैं और यहीं परवान चढते आये हैं तो यहां के वातावरण के बिलकुल अनुकूल हो गये हैं, रोगों से अपना बचाव कर लेते हैं, आबोहवा में कुछ फर्क पड जाय या सूखा पडे तब भी जिंदा रह लेते हैं। इसकी तुलना में देखें तो विदेशी संकर गायें औसत ३,००० से ४,००० लिटर तक ही दूध देती हैं। इस तरह इस बात के अनेक सबूत मौजूद हैं कि हमें भारत की औसत गाय की दूध उत्पादन क्षमता को बढाना ही हो तो भी विदेशी नस्ल से संकरण करने की कतई जरूरत नहीं है।

फिर भी, कुल मिलाकर इस देश में विदेशी नस्ल के संकरण पर जोर बढता जा रहा है। इस प्रयत्न में, जमाये हुए वीर्य से कृत्रिम गर्भाधान के कारण तो भारतीय गायों की विविधता का तेजी से ह्रास होता जा रहा है और उनके अस्तित्व के लिए ही जोखिम पैदा हो गया है। तिस पर उनका जिंदा रहना, उनका अस्तित्व ज्यादा से ज्यादा संगठित उद्योगों पर निर्भर हो रहा है जिसका नतीजा यह है कि उद्योग वालों को मुनाफा कमाने का बेहतरीन मौका मिल गया है। इस देश के गोधन की रक्षा आज मुठ्ठी भर लोगों के हाथ आ गयी है। इस प्रक्रिया में स्थानीय नस्लों की बिलकुल उपेक्षा हो रही है और उन्हें बे मौत मरने दिया जा रहा है। यह स्थिति हम सब के लिए और देश के लिए बहुत खतरनाक है, किसानों और गोपालकों के लिए तो आत्महत्या जैसी बात है।

परिसंवाद ने जोरदार शब्दों में सिफारिश की है कि विदेशी नस्लों का संकरण देश के दीर्घकालीन गोशाला विकास कार्य के लिए, गायों की नस्लों के लिए तथा कुल मिला कर किसानों के लिए अहित करने वाला है। ऐसे संकरण को हतोत्साहित या प्रतिबन्धित करना चाहिए और और आगे बिल्कुल नहीं होने देना चाहिए।

पशु चिकित्सा कालेज जबलपुर के सेवानिवृत्त प्रिंसिपल डा० एम० वाई, मंगरूलकर ने जोर देकर कहा कि विदेशी संकर गायें दूध के मामले में भी विशेष उपयोगी नहीं है; किसानों पर दबाव डाला जा रहा है कि विदेशी गायों को ठंडा रखने के लिए पंखे लगवायें। केरल जैसे कई राज्यों में निकम्मे विदेशी पशुओं के झुंड के झुंड कतलखाने

PDF Compressor Free Version

भेजे जा रहे हैं। सतारा में पिछले २५ साल से किलारी थारपारकर नस्ल की गायों पर काम करने वाले डा० डी० पी० परसाई ने बताया कि देशी नस्ल की गायों के विकास के लिए उन्हें बैंक से कर्जा प्राप्त करने में पांच साल लगे। और भी कई साथियों ने बताया कि विदेशी नस्ल के पशु खरीदने के लिए कर्जा प्राप्त करना बहुत आसान है जब कि देशी नस्ल के पशु खरीदने के लिए बैंक और दूसरी आर्थिक संस्थाएं आसानी से कर्जा नहीं देती हैं। कोरा मेथेन ने बताया कि श्वेत क्रांति के दूसरे चरण के अन्तर्गत, एक करोड सुधरे पशुओं का लक्ष्यांक था, लेकिन, कृत्रिम गर्भाधान से ४ लाख भी पैदा नहीं किये जा सके हैं। कृत्रिम गर्भाधान केवल महंगा ही नहीं है, उन महंगे पशुओं को पालने के लिए संसाधन इतने ज्यादा लगते हैं कि देशी जानवरों के लिए चारा-दाना बच ही नहीं पाता। नतीजा यह कि उनका दूध घट जाता है, देश भर का दूध उत्पादन कम होता है। फिर भी जितना दूध आज इकट्ठा हो रहा है उसमें ज्यादातर दूध गांवों से और आदिवासियों से ही आता है। यह भी बताया गया था कि विदेशी संकरण का असली लाभ तो तीन पीढियों बाद मिलता है। पर आज देखने में आ रहा है कि दूसरी पीढी में ही दूध उत्पादन में १५ प्रतिशत की कमी आ रही है। कुल मिलाकर विदेशी संकर का भविष्य अंधकारमय है और ऐसे कार्यक्रमों में हम अपनी सारी पूंजी एक दिन गंवा बैठेंगे। परिसंवाद के सदस्यों ने श्वेत क्रांति के दूसरे चरण की प्रबंध समिति को एक ज्ञापन भेजा है। इसके कुछ अंश इस प्रकार हैं --

"देश में दूध का उत्पादन बढाने के प्रयत्न का विरोध कोई नहीं कर सकता। हमारे पशु धन का सर्वाधिक महत्त्व सभी भारतवासी, वे चाहे किसी धर्म के हों, स्वीकार करते हैं। सब जानते हैं कि एक समय इस देश में दूध की नदी बहती थी। मुगलों के शासन काल में भी गायें रोजाना ४० सेर दूध दिया करती थीं। खेती में, खास कर इस कृषि प्रधान देश की खेती में ये पशु पूरे काम आते थे, बैल भी बहुत उत्तम होते थे और ये ऊर्जा, ईंधन और सेंद्रिय खाद का बढिया स्रोत थे। अंग्रेजी शासन काल में हमारे गोधन की उपेक्षा होने लगी। उम्मीद थी कि स्वराज्य मिलने पर स्थिति पहले जैसी होगी, हमारी

PDF Compressor Free Version

उत्कृष्ट देशी नस्लों का पुनरुद्धार होगा और उनका प्राचीन गौरव पुनः स्थापित किया जाएगा। लेकिन यह नहीं हुआ। चारा आयातित होने लगा, विश्वप्रसिद्ध उत्तम नस्ल के पशुओं का विदेशों को निर्यात किया जाने लगा और तस्करी होने लगी, पशुओं का और उनके उत्पादनों (जैसे चमडा, हड्डी, सींग, खुर और खास आजकल गोमांस आदि) का निर्यात दिन ब दिन बढने लगा, और जान बूझ कर अपने गोधन की उपेक्षा की गयी, तो क्या ताज्जुब है कि, भले हमारे नेता लोग कितने ही उच्च कोटि के हों और हमारी प्रज्ञा कितनी ही प्रौढ रही हो, हमें यह स्वीकार करना पड रहा है कि हमारा गोधन आज धन नहीं रहा है, लाश है, बेकार का बोझ है, कतलखाने में कतल किये जाने के ही योग्य है और गोमांस खाने वाले देशों को मांस भेजकर विदेशी मुद्रा कमाने का साधन है।

"हमारे ख्याल से यूरोपियन इकोनामिक कम्युनिटी (ई. ई. सी.), की स्थापना ही हमारी श्वेतक्रांति का मूल कारण है। कुछ साल पहले ई. ई. सी. के भंडार में स्किम मिल्क पाउडर और बटर आइल का स्टाक इतना बढ गया था कि अखबारों ने 'पाउडर के पहाड' और घी (बटर आइल) का सागर कह कर उसका वर्णन किया था, उत्पादक देशों की मांगी गयी कीमत पर उनका कोई खरीदार नहीं था। तब ई. ई. सी. के ख्याल में आया कि इस स्टाक को विकासशील देशों को उपहार दे दिया जाय और उनकी कृतज्ञता हासिल कर ली जाय (इस रूप में उन्हें अपनी मुट्ठी में कर लिया जाय)। तब उनके मन में भारत के सिवाय और किसका ख्याल आता, क्योंकि उस वक्त भारत हाथ फैलाने को तैयार बैठा था! बस, यही भारत में श्वेत क्रांति के आगमन की कहानी है।

"प्रचुर मात्रा में दूध का पावडर, घी और डेयरी के यंत्र आदि खरीदने वाले देश के रूप में भारत उभरने लगा। डेयरी उद्योग स्थापित करने के लिए लिक्विड नाइट्रोजन प्लांट, कंटेनर, पाश्चराइजेशन के प्लांट, कोल्ड टैंकर आदि खरीदने के साथ-साथ गोमांस के लिए लालायित लोगों को गोमांस भेजने वाला समृद्ध स्रोत भी बना भारत। श्वेतक्रांति को हमारे गले उतारने की खातिर किसी भी सहायता से ना

PDF Compressor Free Version

नहीं किया और किसी बात का संकोच नहीं किया। हमारे यहां के वैज्ञानिकों को पक्का समझा दिया गया कि हमारी गायों को ज्यादा दूध वाली बनाने के लिए उसमें विदेशी नस्ल का संकर करना चाहिए, और कृत्रिम गर्भाधान द्वारा संकरण की क्रिया को तेज करना चाहिए। और इसके पीछे देशी सांडों को पूरी तरह निकम्मा बना देना गृहीत ही था। हमने मान लिया कि उत्तम से उत्तम देशी नस्ल से हर एक विदेशी नस्ल ज्यादा अच्छी होती है और वे गायें यहां की आबोहवा में पल जायेंगी; इसी मूर्खतापूर्ण धारणा के साथ विदेशों से भेंट के रूप में या सस्ते दाम पर जो भी नस्ल मिली वह सब हमने स्वीकार कर ली। 'दूध के बुखार' से हम लोग अंधे हो गए थे। किसी ने सोचा नहीं कि विदेशी संकर के बैल खेत जोतने या माल खींचने योग्य रहेंगे या नहीं ; शायद यही सोचा होगा कि देशी बैल की तरह ही वे काम आयेंगे। यह भी नहीं सोचा कि ये विदेशी गायें यहां की आबोहवा में टिक पायेंगी और उसी मात्रा में बराबर दूध देती रह सकेंगी। कहीं हम खतरनाक विदेशी बीमारियों को तो निमंत्रण नहीं दे रहे हैं। हमने प्रत्यक्ष देखा कि कुछ विदेशी नस्ल की गायें (केरल का भूरी स्विस) मांस की दृष्टि से ही तगडी हैं ; शायद मन ही मन आगे की दीर्घकालीन योजना उसी की रही हो। कुछ गायों (कर्नाटक की लाल डेन) को खत्म ही करना पडा, क्योंकि क्षय रोग फैलने लगा और विदेशों से तमिलनाडु में आयातित कुछ नस्लों को वीर्य में बाइरस की छूत की बीमारी थी। हमने यह भी देखा कि शाही देखभाल के बावजूद आयातित गायें दूध के मामले में खास अच्छी या उत्साहजनक नहीं रहीं और कुछ ही वर्षों में उनका स्तर घटते-घटते उस हद तक गिरा कि वे यहां बदनाम और गयीगुजरी देशी गाय के बराबर हो गयी। इसके अलावा पीढी दर पीढी नयी-नयी बीमारियों की समस्या तो है ही।

"हमारी दृढ धारणा है कि श्वेतक्रांति का आरंभ और उसका काम करने का तरीका, दोनों के सामने मुख्य रूप से शहरों की सुविधा दृष्टि ही है। देहातों की सुख-समृद्धि के लिए वह निश्चित ही एक अभिशाप है। लेकिन निकट भविष्य में यह कार्यक्रम समूचे देश की सुख-शांति के लिए खतरा पैदा कर सकता है।

PDF Compressor Free Version

"विदेशी नस्ल का संकरण करते समय, इस देश के पशु-पालन विभाग ने इससे पहले जो भी प्रगति की थी उसको ठुकराकर, अमरीका की पशु-पालन नीति के अनुकरण के लिए यह संकरण लादा गया। तब तक गोसंवर्धन का जो भी व्यवस्थित काम हुआ था, वह बिलकुल चौपट हो गया। जो क्षेत्र विशुद्ध थारपारकर, मालवी या साहीवाल जाति की गायों के विकास और उन्नति के लिए कुछ सालों तक सुरक्षित रखे गए थे, वहां डेयरी डेवलपमेंट योजना ने 'मिल्क शेड एरिया' के नाम पर सघन रूप से नस्ल-सुधार के लिए विदेशी संकरण को थोपकर पिछले सारे अच्छे कामों को खत्म करने में जरा भी हिचकिचाहट नहीं की। इसके लिए विशेष सुविधाएं दी गयी, ताकि शहरों में बसने वाले प्रमुख और प्रभावशाली लोगों के लिए पर्याप्त दूध मुहैया कर सकने वाली श्वेतक्रांति लायी जा सके। यह देहाती किसान के लिए हर तरह से हानिकारक और उसे कंगाल बनाने का कार्यक्रम था।

"संकर जाति की बछडियों के पालन-पोषण के लिए बडा प्रोत्साहन दिया गया जब कि बछडों के सुधार के लिए न सबसिडी दी गयी और न कोई प्रोत्साहन ही, क्योंकि श्वेतक्रांति में बछडों का कोई उपयोग नहीं था। मान लिया गया था कि बछडों की देखभाल किसान खुद कर लेंगे और देशी बछडों की तरह उन्हें भी कामकाजी बैल बना लेंगे। लेकिन बात यह नहीं थी। यह पूरी तरह साबित हो चुका है कि संकर जाति के बछडे किसी भी काम के नहीं। फिर भी श्वेतक्रांति के समर्थक अब भी इस सचाई को मानने के लिए तैयार नहीं हैं, अपनी बात दुहराये जाते हैं। नेशनल डेयरी रिसर्च इन्स्टिट्यूट के एक शोधकर्ता सचमुच बडी गंभीरता के साथ इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि भारत के किसानों को अब अपनी खेती के तरीकों को पूरी तरह बदल लेना चाहिए, ताकि उन पर लादे गए इन विदेशी संकर बैलों से काम लिया जा सके ; उन बैलों का उपयोग ठंडे समय यानी सुबह और शाम को ही किया जाय ! यह कैसी उल्टी रीत है ?

"हम मानते हैं कि अगर आजाद हिंदुस्तान ने पश्चिमी धन, पश्चिमी तरीके और पश्चिमी दिमाग को अपनाया न होता, देश अपने निजी संसाधनों पर ही निर्भर रहा होता तो अब तक काफी कुछ उन्नति

PDF Compressor Free Version

कर सका होता और प्राचीन गरिमामय सभ्य संस्कृति के अनुरूप प्रगति पर आगे बढा होता। हमने सचमुच बडी गलती की कि विदेशी धन की मदद और कर्जे के बल पर देश का उद्योगीकरण करने का तय किया और हमारे पास जो अपना अखूट भंडार था, पशु-संपदा थी, उसकी अवहेलना की। जब हम समझ गये कि इसी विशाल संपदा ने इस देश को कठिनाइयों और मुसीबतों के मौकों पर बचाया है और सदियों से देश का रक्षण किया है, तब भी, इस महान शक्ति-स्रोत का सही उपयोग नहीं कर सके, उसके प्रति हमारे रवैये में कोई सुधार नहीं हुआ ! ईमानदारी के साथ हमें स्वीकार करना होगा कि हम दिन-ब-दिन अंतर्राष्ट्रीय कर्जे के बोझ से दबते जा रहे हैं और इस कर्जे को चुकाने के लिए अपने सर्वोत्तम संसाधनों की, जिंदा या मुर्दा हालत में, भेंट चढाये जा रहे हैं।"

परिसंवाद में भाग लेने वाले सभी साथियों ने यह माना कि देशी नस्ल के संरक्षण और संवर्धन के काम को पूरी त्वरा के साथ तत्काल हाथ में लेना चाहिए और सभी क्षेत्रों में 'मुख्य ग्रामीण योजना' (की विलेज स्कीम) को, जिसे नेशनल डेयरी डेवलपमेंट बोर्ड ने ठुकरा दिया था, फिर से लागू करना चाहिए। यह भी सुझाव दिया गया कि हरेक पशु चिकित्सा कालेज में विशुद्ध नस्ल की गायों और देशी नस्ल के सांडों के फार्म बनने चाहिए। उन्होंने गोमांस के निर्यात के खिलाफ अपना सख्त विरोध जाहिर किया जिसके पीछे बडी साजिश है और जिसका सारा दारोमदार यहां के अमूल्य गोधन के – बछडों, बैलों और गायों के – विनाश पर है। इस पर यदि कडा प्रतिबंध नहीं लगाया गया तो देश की गोसंपदा सदा के लिए खत्म हो जायगी। सुझाव दिया गया कि हमारी वर्तमान उद्योग-नीतियों को आमूल बदलने की जरूरत है जो पशुओं के पौष्टिक आहार के बिल्कुल विपरीत हैं। गेहूं और धान के डंठल और भूसी भी अब बडी तेजी से उद्योगों में काम में लाई जाने लगी है, इसलिए परिसंवाद ने देश के सभी विचारशील लोगों से आग्रह किया कि वे इन सब गलत और हानिकारक नीतियों पर गंभीरता से विचार करें और इस संगठन को पूरा सहयोग दें, ताकि पहले देशी नस्लों का संरक्षण किया जाय और

PDF Compressor Free Version

फिर उनका व्यापक प्रसार किया जाय। वरना, विदेशी संकरण की इस अंधाधुंध योजना के कारण देश के गोधन का भविष्य, जो भी थोडा-बहुत बचा है, बिलकुल अंधकारमय हो जायगा।

अनुवर्ती कार्य

सेंद्रिय खेती के बारे में इन तीन संमेलनों से एक नयी धारा का सूत्रपात हुआ है। इस कडी में आगे होनेवाले संमेलनों से इन प्रयत्नों को बल मिलेगा। देशी तरीकों को सुदृढ बनाने और फैलाने के लिए जल्दी ही एक संगठन खडा करना चाहिए।

यह भी हमें ध्यान में रखना है कि इन संमेलनों का आयोजन पारंपारिक किसानों ने नहीं किया है, न वे इन संमेलनों से भाग ले पाये हैं, जो किसान पूरी तरह देशी तरीकों पर ही निर्भर हैं वे ऐसे संमेलनों में आ नहीं पाते अभी। इन्हीं किसानों के पास देशी पद्धतियों का ज्ञान है। ये लोग उनमें सुधार करने की क्षमता रखते हैं। यह हमारा कर्तव्य है, कि जिन्हें देशी पद्धतियों में रुचि है, उनके पास जायं और उनसे सीखें। हो सकता है कि शुरू-शुरू में वे हमें केवल जानकारी ही दे पायें, लेकिन एक न एक दिन भारत की खेती के पुनरुत्थान के काम को उन्हें ही हाथ में लेना होगा और आंदोलन के रूप में उसका संचालन करना होगा।

ऐसे आंदोलन की तैयारी करते समय हमें ऐतिहासिक आलेखों से तथा प्रत्यक्ष किसानों से सेंद्रिय खेती यानी हमारी अपनी खेती की जानकारी संकलित करनी होगी। इन सब बातों का हमें अध्ययन करना होगा कि देशी जानकारी के मूल स्रोतों की क्या हालत है, उन स्रोतों पर प्रभाव या दबाव डालने वाले तत्त्व कौन-कौनसे हैं, हमारे गांवों में आधुनिक तरीके किस हद तक 'घुस आये' हैं, आदि। इन बातों की चर्चा हमें अलग-अलग कृषि विश्वविद्यालयों और कृषि-संस्थानों में भी करनी होगी और उन संस्थाओं में काम करने वाले लोगों को देशी खेती के लिए कुछ न कुछ करने पर विवश करना होगा। आधुनिक रासायनिक खेती के पीछे अंधे होकर आत्मघाती

PDF Compressor Free Version

पूर्वाग्रह के साथ दौड रहे शासन को भी समझाने और उस पर दबाव लाने का प्रयत्न करना होगा।

देशी संसाधन और तरीकों पर लगभग दो सौ साल से राजनैतिक और आर्थिक आक्रमण बराबर होते आये हैं। इस स्थिति को उलटने के लिए राजनैतिक और आर्थिक पहलुओं से ही प्रतिआक्रमण करना जरूरी है।

(पैट्रियाटिक एंड पीपुल्स ओरियंटेड साइन्स एंड टेक्नोलाजी नामक संगठन की मद्रास शाखा द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट से)

* *

सेन्द्रिय तथा रासायनिक पद्धति से उत्पादन

पश्चिमी क्षेत्र अमरीका १९७३-७६

फसल	रासायनिक पद्धति	सेन्द्रिय पद्धति
	बुशल प्रति एकड	
मक्का	७८	७६
सोयाबीन	२८	३२
ओट्स (जौ)	४७	६४
गेंहू	३४	३४

उत्पादकता

रोथमस्टेड प्रयोग क्षेत्र के लम्बे समय के प्रयोगों से यह नतीजा निकला कि प्रतिवर्ष पशु खाद देते जाने पर रासायनिक खेती की तुलना में सेन्द्रिय खेती का गेहूं, शकरकंद, तथा आलू का उत्पादन अधिक रहा।

केंचुए

रासायनिक उर्वरक केंचुओं की कार्यक्षमता को कम कर देते हैं। केंचुओं की उपस्थिति से मिट्टी का पोलापन, पानी की निकासी तथा दवाई की उपलब्धि बढ जाती है। कुडे-कचरे को ह्यूमस में बदलने की प्रक्रिया के हर स्तर पर केंचुए महत्व का भाग अदा करते हैं। सेन्द्रिय पदार्थों को खाकर ये केंचुए पौधों को पोषण उपलब्ध करते हैं। रासायनिक खादों से जमीन में कडापन आ जाता है तथा उसका पोत गिर जाता है।

* *

PDF Compressor Free Version

सजीव भूमि पर आधारित स्वाश्रयी खेती

लेडी ईव बेल्फूर

(अंतर्राष्ट्रीय सेन्द्रिय खेती संगठनों के १९७७ के विश्व सम्मेलन में दिये भाषण के आधार पर यह लेख ऐसी महिला का है, जो विश्व में सेंद्रिय खेती के आन्दोलन की नींव डालनेवालों में से हैं ।)

प्रारंभ में मैं संसारभर में सेन्द्रिय कृषि के जो आन्दोलन आज चल रहे हैं उनकी पार्श्वभूमि पर थोडा प्रकाश डालूंगी । तदनंतर मैं स्वयं इस आन्दोलन में किस तरह आई तथा "हाले प्रयोग" की मार्फत हमने इस दिशा में क्या योगदान दिया इसका उल्लेख करूंगी और अंत में मैं इन आन्दोलनों के माध्यम से स्वाश्रयी कृषि का लक्ष्य कैसे प्राप्त किया जाय इस सम्बन्ध में अपने कुछ सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक विचार रखना चाहूंगी ।

आंदोलन की पार्श्वभूमिका

सेन्द्रिय खेती के विचार को आन्दोलन का स्वरूप सर्वप्रथम कब से मिला इसकी मुझे जानकारी नहीं है, परन्तु मेरा विश्वास है कि इस शताब्दी के प्रारंभ के अनुसंधानकर्ताओं का इसमें मुख्य हाथ रहा है। यद्यपि इसके पहले भी इस दिशा में काम करनेवाले लोग हुए हैं और खासकर रूडोल्फ स्टाइनर आदि का नाम उनमें महत्व का है । मेरे ध्यान में जो मुख्य नाम हैं उनमें चिकित्साक्षेत्र के सर राबर्ट मेक्कार्सन जो भारत में गांधीजी के संपर्क में रहे, डा. फ्रांसिस पार्टिजर, और डा. वेस्टन प्राइस तथा खेती क्षेत्र के सर अल्बर्ट हावर्ड, जिन्होंने इंदौर में प्रयोग किये । डा. विलियम अल्ब्रेट तथा डा. ई. फ्रीफर प्रमुख हैं। इनके साथ-साथ अन्य अनेक महान व्यक्ति भी इस क्षेत्र में हुए जैसे डा. जार्ज स्काट-विलियमसन, डा. लायनेल पिक्टन, डा. डेंडी, प्रो. बेरी कामनर तथा बहादुर महिला राशेल कारसन (जिन्होंने 'साइलेन्ट स्प्रिंग' पुस्तक लिखी) जो लोग चले गये उनकी सूची में डा. सुमाखर का नाम जोडते हुए मुझे दुःख होता है ।

JATAN LIBRARY No. 100037 1-A-0037

PDF Compressor Free Version

इन सभी प्रारंभिक लोगों में एक समानता थी। अर्थात् इन सभी को आज की परिभाषा में पर्यावरण-शास्त्री (इकालाजिस्ट) कहा जा सकता है। इन सभी ने विज्ञान के तत्कालीन पारंपरिक विचारों की मर्यादाओं को लांघकर जीव-जगत पर एक नये दृष्टिकोण से विचार किया। उन्होंने नये प्रश्न खडे किये। तत्कालीन लोगों की तरह बीमारी और उसके कारणों की खोज करने के बजाय उन्होंने स्वास्थ्य के कारणों की खोज आरंभ की। स्वभावतः ही इस प्रकार की खोज ने उन्हें संपूर्णता का ज्ञान कराया तथा अंततोगत्वा उन्हें जीवमात्र की एकता का दर्शन हुआ।

यद्यपि मैंने १९१९ से ही सफोक (इंग्लैंड) में खेती का कार्य करना आरंभ कर दिया था, परंतु सेंद्रिय कृषि में या सजीव खेती में मेरी रुचि १९३० के दशक में ही हो पाई। उस समय तक अनेक देशों में ऐसी समितियां बन चुकी थीं जो सेंद्रिय कृषि तथा पूर्णतायुक्त भोजन का प्रचार करती थी, पर मुझे इसका भान १९४५ तक नहीं था। वह तब हुआ जब कि (साईल एसोसिएशन) "मृदा संगठन" का काम आरंभ हुआ। यह पहली संस्था थी जिसका उद्देश्य विश्वव्यापी सदस्यता बनाना था तथा जिसमें अनुसंधान के कार्य को प्राथमिकता दी गई।

'हाले'-प्रयोग

इस तरह 'हाले' प्रयोग १९३९ में मेरे खेत पर प्रारंभ हुआ और १९४७ में मृदा संगठन ने उसे उठा लिया तथा अगले २५ वर्ष तक उसे चलाया। यह प्रारंभिक प्रयोग ही सर्वप्रथम पर्यावरण के अनुरूप खेती की संपूर्ण योजना थी। इस प्रयोग का उद्देश्य था सेंद्रिय खेती के दावों की सचाई को जांचना, परखना। इसके लिए खेती में पोषण की प्रक्रिया को विभिन्न प्रकार के भूमि के उपयोग के तरीकों को, प्रयोगों को एक-सी खेती के क्षेत्र में समान व्यवस्था में चलाया गया। उद्देश्य यह था कि विभिन्न प्रकार के प्रयोगों का जमीन की उपज के पदार्थों के पोषक गुणों पर यदि कोई प्रभाव पडता है तो वह क्या हैं, कितना है। इसका पशुओं पर प्रयोग करके उनके पोषक गुणों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया जो इससे पहले कभी नहीं हुआ था।

PDF Compressor Free Version

जमीन के तीन समान हिस्से किये गये। हर एक हिस्सा इतना बडा था कि पूरा फसलचक्र उसमें अमल में लाया जा सकता। अर्थात् भोजन की शृंखला यथा—मिट्टी, पौधे, पशु और पुनः मिट्टीका अध्ययन अनेक वर्षों तक फसलचक्र के माध्यम से किया जा सकता था। आशय यह था कि इस प्रयोग में मिट्टी, पौधे तथा पशुके बीच की पारस्पारिकता का अध्ययन हो सके तथा उसका दीर्घकालीन असर भी समझा जा सके। इस प्रयोग के नतीजों का महत्व ध्यान में लाने के लिए इन तीनों विभागों की कार्यप्रणाली का संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है। खेती प्रथम विभाग ऐसा था जिस में पशु का संबंध नहीं आया पर इस चर्चा में उसका उल्लेख मैं नहीं करूंगी। दूसरे दोनों विभाग चराईयुक्त थे अर्थात् जिनमें अस्थाई चरागाह तथा खेती बारी बारीसे होती थी। दोनों में एक समान फसलें ली जाती थीं। प्रत्येक में समान संख्यामें गायें, मुर्गी तथा भेडें रखी थीं। उस विभाग की पैदावार ही उस विभाग के जानवरों को खिलाई जाती थी। विभाग की बछडियां ही विभाग में रखी जाती थीं तथा स्वयं उत्पादित बीज के आधारपर ही अगली फसल ली जाती थी। पशुओं का मलमूत्र तथा फसल का कचरा उसी विभाग को दिया जाता था। हर विभाग से अतिरिक्त, पशु तथा उत्पादन ही, बाहर बेचा जाता था जो भी फसल होती वही पशुओं को खिलाई जाती थी। इन दो में से एक विभाग में रासायनिक खाद तथा आवश्यकतानुसार खर-पतवार-नाशक दवाएं, कीट-नाशक दवाएं आदि का प्रयोग किया जाता था। इस विभाग का नाम 'मिश्र-विभाग' था।

दूसरा विभाग जिसका नाम 'सेंद्रिय विभाग' था, उसमें किसी भी प्रकार के रसायनों का प्रयोग नहीं होता था। इस तरह यह विभाग उसीकी जैविक क्रियाओं पर पूरी तरह निर्भर था। जहां तक संभव था दोनोंमें स्वावलंबी व्यवहारचक्र काम में लाया गया था ताकि बाहरी अनजान तत्वों का मिश्रण कम से कम हो और शुद्धतापूर्वक नतीजों को प्राप्त किया जा सके।

मुझे आशा है आप समझ ही गये होंगे कि क्या एक अनजान क्षेत्र में इस तरह के प्रयोगों को एक सीमित साधनोंवाली गैर सरकारी

PDF Compressor Free Version

स्वयंसेवी संस्था को करने पडे । तथाकथित वैज्ञानिक लोग छोटे-छोटे प्लाट लेकर प्रयोग करते हैं । जिनमें सर्वांगीण खेती की परस्पर निर्भरता तथा पूरकता का पता नहीं चल पाता । उस समय के सरकारी विभाग ने तो यहां तक घोषणा कर दी कि हमारे इस प्रयोग की कोई आवश्यकता ही नहीं है । खास करके हमारे द्वारा लिखे गये सीमित बंदचक्र की पद्धति के वे विरोधी थे । फिर भी जो महत्वपूर्ण निष्कर्ष हमें इन प्रयोगों से प्राप्त हुए वे इसी पद्धति से निकले । क्योंकि इसके बिना वे नतीजे मिल ही नहीं सकते थे । इसमें प्राप्त कुछ महत्वपूर्ण नतीजों का मैं उल्लेख मात्र करूंगी जिनका कि आज के सम्मेलन से संबंध है ।

धरती और पौधों की पारस्परिकता

प्रत्येक फसल के नतीजों की खेतों में जांच के अलावा मिट्टी तथा कृषि उत्पादन के नमूनों की सविस्तर रासायनिक जांच बायो-केमिस्ट डा. आर. एफ. मिल्टन द्वारा की गई । इनमें पौधों के लिए उपयोगी तत्व हर एक खेत में कितने हैं, इसकी जांच लगातार १० वर्ष तक प्रतिमाह की गई । इन असंख्य जांचों के परिणामस्वरूप एक नई ही बात प्रकट हुई । यह निर्णयात्मक होने के साथ ही तत्कालीन कृषि शास्त्रज्ञों द्वारा प्रतिपादित ज्ञान के दायरे के बाहर थी । कृषिशास्त्रज्ञों ने कभी यह नहीं समझा था कि जमीन के अंदर जो खनिजतत्व पौधों को उपलब्ध हो सकते हैं उनकी उपलब्धि समय समय पर बदलती रहती है और सर्वाधिक मात्रा में ये तत्व उपलब्ध पौधों को प्राप्य होते हैं जब पौधों को उनकी सबसे अधिक आवश्यकता होती है । हमारे प्रयोगों में यह भी पता चला कि पौधों को प्राप्य खनिज तत्वों की मात्रा में यह चढ उतार सेंद्रिय खेतीवाले विभाग में सर्वाधिक था । मिश्र खेती वाले में तो रासायनिक उर्वरक दिये जाते थे वहां भी यह चढ-उतार दिखाई दिया परंतु सेंद्रिय खेती वाले विभाग में जहां कि रासायनिक उर्वरक नहीं दिये जाते थे, वहां यह चढ-उतार इतना स्पष्ट था कि सर्वाधिक वर्षों तक सेंद्रिय पद्धति से जोते गये खेत में जिस में कि ह्यूमस भी अधिक था, उसे खेत में सुप्त अवधि की तुलना में क्रियात्मक दिनों में उसमें स्फुर (फास्फेट) की मात्रा दसगुनी अधिक

PDF Compressor Free Version

थी। यह वही समय होता था जब पौधों को स्फुर की अधिक आवश्यकता होती थी। इसी प्रकार पोटाश तथा नत्रजन की उपलब्धि के लिए भी यह उतारचढाव स्पष्ट दिखाई दिया था। चूंकि इस कृषि-प्रयोग में बाहरीतत्व दाखिल नहीं किये गये, यह स्पष्ट था कि खनिज-तत्त्वों की उपलब्धि में यह उतार चढाव जैविक गतिविधियों का परिणाम था। और जीवंत भूमिका यह प्राकृतिक व्यवहार दिखलाई देता है। सर्व प्रथम जब इस खोज को प्रकाशित किया गया तो स्काटिश विश्वविद्यालय ने इन प्रयोगों को दुबारा करके इसी प्रकार के नतीजों की पुष्टि की। तब जाकर अन्य वैज्ञानिकों ने भी इस तथ्य को स्वीकार कर लिया। पहले यह माना जाता था कि वर्ष में एक बार किसी एक स्थान की मिट्टी का विश्लेषण करने से मिट्टी के तत्वों का पता लगाया जा सकता है पर इस धारणा को हमारे प्रयोगों ने निर्मूल कर दिया।

फसलों तथा पशु उत्पादनों पर विभिन्न प्रकार की रासायनिक जांच करने पर कोई विशेष विभागीय अंतर नहीं पाया गया सिर्फ मिश्र-खेती के चारे में पानी की मात्रा अधिक पाई गई। मौसम के आधार पर होनेवाले फर्क तथा उसी विभाग के विभिन्न खेतों में दीखनेवाले फर्क अक्सर दोनों विभागों में फर्क की औसत के बनिस्बत ज्यादा दीखते थे। परंतु यह फर्क न दीखना अपने आप में महत्वपूर्ण था क्योंकि सेंद्रिय विभाग में जहां कि कोई अतिरिक्त रासायनिक उर्वरक नहीं दिये जाते थे, वहां भी मिट्टी तथा फसलों में उतने ही पोषकतत्व पाये गये थे जितने कि अन्य विभागों में। इससे यह स्पष्ट होता है कि जो खनिज पदार्थ पौधों के लिए बाहर से लाकर डाले जाते हैं उनमें से कितने कम का उपयोग पौधे करते हैं। इस संमेलन को इस विषय पर विचार करना चाहिए। इस बारे मैं डा. मिल्टन ने अपने विचार निम्न शब्दों में व्यक्त किये हैं – 'हाले प्रयोग के संबंध में जो विश्लेषणात्मक कार्य किये गये हैं उनसे यह स्पष्ट साबित होता है कि आधुनिक व्यापारिक खेती पद्धति में प्राकृतिक साधनों का कितना अपव्यय होता है तथा स्वाश्रयी खेती पद्धति में किस प्रकार पोषकतत्वों की पुनःपूर्ति होती रहती है और वे तत्व ठीक उस समय सर्वाधिक उपलब्ध होते हैं

PDF Compressor Free Version

जब पौधों को उनकी आवश्यकता होती है, बशर्ते कि कृषि की जुताई तथा व्यवस्था में जैविक पद्धति का प्रयोग किया जाय ।

सेंद्रिय और रासायनिक कृषि में मुख्य अंतर :–

यद्यपि विभिन्न विभागों में विश्लेषणात्मक फर्क अल्प थे, परंतु उनमें कुछ व्यावहारिक फर्क थे जो बहुत महत्व के थे । सेंद्रिय विभाग कीटकों आदि के उत्पात से तुलनात्मक दृष्टि से बहुत कम प्रभावित था तथा उसपर पलनेवाले पशुधन का उपयोग जीवन, अधिक लंबा पाया गया । इस तरह के कुछ प्रत्यक्ष दीखनेवाले भेदों के कारण अनेक अनुत्तरित प्रश्न उठते हैं, जिनपर भविष्य में उपयोगी अनुसंधान किया जा सकता है । इस दृष्टि से सिर्फ तीन उदाहरण देना पर्याप्त होगा –

(१) मिश्र विभाग में सेंद्रिय विभाग के बराबर ही सेंद्रिय खाद आदि दिये जाते थे, फिर भी यह स्पष्ट दिखलाया जा सकता था कि मिश्र खेत उनको दिये जानेवाले रासायनिक उर्वरकों पर निर्भर दीखते थे मानों उनको रासायनिक उर्वरकों की लत लग गई हो जैसे नशेबाजों को नशेली वस्तु की होती है । इसकी तुलना में सेंद्रिय विभाग में जैविक गतिविधि तीव्रतर होती गई जिससे कालांतर में इस विभाग के खेत स्वाश्रयी बन गये ।

अगर हमने सभी बाहरी फर्कों को पहले से न रोका होता तो यह फर्क बाहरी तत्वों के कारण हुआ ऐसा आसानी से मान लिया जा सकता था । इस संबंध में गतवर्ष जो अनुसंधान कार्य हुआ है उसके बारे में मैं आगे कहनेवाली हूं जिससे इस प्रश्न पर तथा अगले उदाहरण पर भी प्रकाश पडता है ।

(२) लगातार जो नतीजा देखने में आया वह यह था कि सेंद्रिय विभाग में शरत्कालीन अनाज की फसल प्रारंभ में बहुत धीरे बढती थी और अधिक जांच करने पर पता चला कि इस विभाग के पौधे प्रारंभ में अपनी जडें अधिक मजबूत करने में जुटे रहते हैं । जडें मजबूत हो जाने के बाद ही पौधें की उपरी वृद्धि शुरू होती है । (मिश्र विभाग के पौधों का वृद्धि चक्र इससे भिन्न प्रकार का पाया गया) वृद्धिकाल की समाप्ति तक दोनों विभागों के पौधों की बाढ समान हो जाती थी तथा सेंद्रिय विभाग के पौधे स्वाश्रयी बन जाते थे ।

PDF Compressor Free Version

(३) पशुओं के बारे में दोनों विभागों में फर्क पाया गया। सेंद्रिय विभाग के पशु ज्यादा संतुष्ट दिखलाई देते थे। हमारे इस नतीजे का समर्थन दुनिया के अन्य अनेक सेंद्रिय खेती करनेवाले किसानों ने भी किया है कि सेंद्रिय पद्धति से उगायी पैदावार जब पशुओं को खिलाई जाती है तो उनको १२ से १५ प्रतिशत तक कम खुराक लगती है।

उदाहरण के तौर पर हाले प्रयोगक्षेत्र में यद्यपि सेन्द्रिय विभाग की घास थोडी छितरी दीखती थी और मिश्र विभाग की घास खूब हरी-भरी दीखती थी, फिर भी सेन्द्रिय विभाग की गायों ने २० वर्ष में मिश्र विभाग की तुलना में औसत १५ प्रतिशत अधिक दूध दिया। हमने यह पहले से ही दर्शा दिया था कि यह फर्क जानवरों की गुणात्मकता के कारण नहीं था।

वैकल्पिक स्वाश्रयी खेती – तीन दलीलें

वैकल्पिक स्वाश्रयी कृषि-पद्धति के बारे में चर्चा करते समय मैं इस महत्त्व के विषय पर बोलूंगी। प्रारंभ में मैं इस सम्बन्ध में बहु-प्रचलित तीन विरोधों का उत्तर देना चाहूंगी, जिनके आधार पर शंका की जाती है कि दुनियाभर में सेन्द्रिय खेती करना संभव नहीं है।

सर्वाधिक प्रचलित दलील यह दी जाती है कि भले हम उसे पसंद करें या न करें, दुनिया की बढती आबादी को खिलाने के लिये रासायनिक उर्वरकों पर आधारित सघन कृषि ही एकमात्र विकल्प है। मुझे लगता है कि संभवतः वास्तविकता इससे ठीक उल्टी है। वास्तव में वैकल्पिक कृषि और वह भी मुख्यतः सेन्द्रिय खेती-पद्धति पर आधारित कृषि ही हमें अंततोगत्वा अपनानी पडेगी, भले हम उसे चाहें या न चाहें। यह इसलिये कि, जैसा कि दिन-प्रतिदिन स्पष्ट होता जा रहा है, रासायनिक उर्वरकों पर आधारित खेती के दिन गिनेचुने रह गये हैं। इसका एक कारण तो यह है कि दिन-प्रतिदिन उर्जा के साधनों की मांग बढती जा रही है जो कि आज की हमारी पाश्चिमात्य जीवन-पद्धति और खासकर आधुनिक कृषि-पद्धति के कारण है। दूसरा कारण है, आज की पद्धतियां जीव-जगत पर इतना वजन डाल रही है कि उनके टूटने का खतरा पैदा हो गया है। इस

PDF Compressor Free Version

तरह यह सिर्फ सामान्य ज्ञान की बात है कि वैकल्पिक जीवन-पद्धतियों की खोज की जावें और उनकी संभावनाओं का पता लगाया जावें।

सामान्यतः इस बात को स्वीकार नहीं किया जाता कि हमारे वर्तमान व्यवहार तथा पद्धतियों के दिन गिनेचुने रह गये हैं। और जहां स्वीकार किया जाता है वहां भी इसे तात्कालिक व्यवहार में लाने की आवश्यकता मानने के बजाय इसे एक दूरगामी आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया जाता है तथा माना यह जाता है कि तात्कालिक आवश्यकताओं को नजरअंदाज किया जाना संभव नहीं। अतएव वर्तमान बढती जनसंख्या के लिये अधिक अनाज उत्पादन करने को रासायनिक खेती जरूरी है। यह दलील भी दी जाती है कि सेन्द्रिय खेती उत्पादन कम देती है तथा काफी खर्चीली है, क्योंकि इसमें कूडेकचरे तथा खाद को वापस खेतों में डालना होता है और हमें तो आज प्रति एकड अधिक उत्पादन की आवश्यकता है, ताकि दुनिया में प्रोटीन की कमी को पूरा किया जा सके। इसके उत्तरस्वरूप मैं तीन बातें कहना चाहूंगी।

(१) पोषण के अद्यतन विशेषज्ञ इस निर्णय पर आये हैं कि आज तक मनुष्य के लिए जितना प्रोटीन और खासकर प्राणिज प्रोटीन आवश्यक माना जाता रहा है वह अन्दाज बहुत अधिक है। सेन्द्रिय खेती किसानों का अनुभव है कि यह अंदाज जानवरों के बारे में भी बहुत अधिक माना जाता रहा है।

(२) अगर हम धरती की उपज और उर्वरकता की फिजूल बर्बादी न करें तो पुनः पूर्ति करने की पद्धति में ज्यादा नुकसान नहीं होना चाहिये।

(३) हम मान्य करते हैं कि हमें प्रति एकड अधिक उत्पन्न करना चाहिए, हमें कहना पडेगा कि दुर्भाग्यवश आधुनिक अर्थशास्त्री उत्पादन प्रति व्यक्ति गिनते हैं, प्रति एकड नहीं।

श्रम का अधिक उपयोग करनेवाली छोटी-छोटी इकाइयां हमेशा यंत्राधारित बडी इकाइयों की तुलना में प्रति एकड ज्यादा पैदा करती है। इसमें भी सेन्द्रिय पद्धति से और अधिक पैदावार होती है। अंततोगत्वा जब जीवन-पद्धति में हमें बदल करना पडेगा तो मेरी

PDF Compressor Free Version

धारणा है कि हम संसार के लोगों का पेट आज की तुलना में अधिक आसानी से भर सकेंगे, क्योंकि पाश्चिमात्य देशों की जीवन-पद्धति तब संभवत: कम फिजूल खर्चीवाली हो जावेगी। मेरा मानना है कि तब हम सबका स्वास्थ्य भी अधिक अच्छा होगा।

पौधों की संतुलित पोषण-पद्धति

यह दलील भी कभी कभार सुनने में आती है कि पूर्णत: कम्पोस्ट और गोबर की खाद-आधारित खेती का प्रचार करने का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है, क्योंकि मूलत: पौधों के पोषण में चाहे वह सेन्द्रिय तत्वों से दिया जाय अथवा असेन्द्रिय रासायनिक रूप में, कोई फर्क नहीं होता। परन्तु यह ठीक नहीं है. भले ही इन दोनों में रासायनिक दृष्टि से कोई विश्लेषणात्मक फर्क न दीखता हो, परन्तु एक व्यावहारिक एवं दर्शनीय फर्क हमेशा होता है। उदाहरणार्थ, कोई भी वस्तु जो पौधों की जडों को फैलने में मदद करती है, उसके कारण पौधे जमीन से अधिक पोषण प्राप्त करते हैं। इसलिये सेन्द्रिय खेती के कारण जब मिट्टी का नीचे तक का स्तर जीवंत बन जाता है तो उत्पादन सहज ही बढता है, क्योंकि पानी तथा पोषण के लिये पौधा अधिक नीचे के स्तर तक जडों को फैला सकता है। आज यह बात प्रयोगों से सिद्ध की जा चुकी है कि रासायनिक नत्रजन तथा स्फुर के कारण स्थानीय जडों का ही विकास अधिक होता है और इसके कारण गहरी जडों का विकास अवरुद्ध हो जाता है। ऐसे पौधे नत्रजन तथा स्फुर का तो उपयोग अधिकाधिक मात्रा में कर पाते हैं, लेकिन अन्य पोषकतत्व अपेक्षाकृत कम ले पाते हैं। इससे पौधों में पोषण का असंतुलन दृष्टिगोचर होना स्वाभाविक है। और उन पर आधारित पशुओं तथा मनुष्यों को भी असंतुलित खुराक मिलती है। अगर जमीन का पोत निर्धारण करने में पौधों की जडों का विकास महत्त्वपूर्ण है, तो इससे जमीन का विकास किस तरह से हो इस पर भी विचार करना आवश्यक हो जाता है। यही वह क्षेत्र है जिसके बारे में मैंने पहले ही कहा है कि हाले प्रयोग से इस सम्बन्ध में कुछ नये तथ्य सामने आये हैं।

सजीव मिट्टी में, जिसमें कि सेन्द्रिय पदार्थ तथा प्राकृतिक खनिज पदार्थ यथेष्ट मात्रा में होते हैं, ये खनिज लवण उस समय पौधों के लिये

PDF Compressor Free Version

उपलब्ध हो जाते हैं जब उन्हें उनकी आवश्यकता होती है। इसके सिवाय जडों को संपूर्ण भोजन उपलब्ध होता है, जिसमें से वे यथेच्छ चुन लेती हैं। ऐसी परिस्थितियों में पौधें बहुत चुनकर पोषण ग्रहण करते हैं। इसीलिये गहरी जडोंवाली कुछ फसलें बोना सेन्द्रिय खेतीवाला किसान आवश्यक मानता है। सामान्य रासायनिक उर्वरक उपरोक्त खामियों के अलावा बहुत ही सामान्य स्तर के अणुओं से बने होते हैं, जब कि पौधे के पोषण की आवश्यकताएं अनेकविध प्रकार के मिश्र अणुओं की रहती हैं। सिर्फ दो या तीन प्रकार के तत्व देकर हम पौधों के तनों तथा पत्तियों की बाढ अत्यधिक प्राप्त कर लेते हैं, लेकिन इस प्रक्रिया से अन्य आवश्यक तत्व समाप्त हो जाते हैं अथवा पौधे से थोडी ही दूरी पर जमीन की निचली सतह में पडे रह जाते हैं। इससे, जैसा कि पहले कहा है, पौधे कुपोषण का शिकार बनते हैं और अक्सर इन अतिरिक्त रसायनों के पानी में घुलकर बहने पर पर्यावरण दूषित बनता है।

पहले माना जाता था कि पौधों का सभी पोषण सामान्य अणुतत्वों के रूप में देना आवश्यक है। लेकिन पौधे अनेक सेन्द्रिय मिश्र अणुओं को पूरा का पूरा ही अपने में समा लेते हैं या हजम कर लेते हैं। इस सम्बन्ध में डी. डी. टी. का उदाहरण आंखें खोल देनेवाला है। इसी तरह अन्य अनेक सहजीवी सूक्ष्म जंतुओं के माध्यम से पौधे उसी तरह का पोषण प्राप्त करते हैं, जैसे कि पशु-पोषण में विटामिन होते हैं।

एक और कारण, जिसके लिये अभी हमारे पास कोई वैज्ञानिक सबूत नहीं है, लेकिन जो इस प्रश्न का एक तर्क-संगत और अब तक के अध्ययनों से सुसंगत हल प्रस्तुत करता है, वह है, प्रकृति की पोषण-प्रक्रिया में पौधों द्वारा खनिज पदार्थ सीधे ग्रहण करने के बजाय अप्रत्यक्ष रूप से अवशोषित किया जाता है, जिसमें जमीन के अन्दर के सूक्ष्म जंतुओं की प्रक्रिया के सहउत्पादन के तौर पर पौधे खनिज लवण प्राप्त करते हैं।

इस तरह के सहउत्पादन नत्र-स्फुर-पोटाश की तुलना में बहुत अधिक जटिल या मिश्र होते हैं तथा वे जीवित प्रक्रिया के अंश होते

PDF Compressor Free Version

हैं। असेन्द्रिय रसायन निर्जीव होते हैं। पौधों का भोजन-पथ सिर्फ पदार्थ-चक्र ही नहीं है, वह एक ऊर्जाचक्र भी होता है। जमीन के उपजाऊपन की परिभाषा ही यह है कि वह ऊर्जा को प्राप्त कर, संग्रह रख सके और आगे संप्रेषित कर सके। रासायनिक दृष्टि से एक पदार्थ दूसरे के समान हो सकता है, लेकिन जीवनी शक्ति के वाहक के तौर पर दोनों बिल्कुल भिन्न हो सकते हैं। मेरी परिकल्पना यह है कि जन्म, वृद्धि, पुनरुत्पादन, मृत्यु, नाश तथा पुनर्जन्म की शृंखला सिर्फ जीवित कोशाणुओं के माध्यम से ही काम करती है और जब इस जीवनचक्र में बाधा डाली जाती है तो वह चक्र टूट जाता है और भोजनचक्र के उसके किसी अन्य भाग को हानि पहुंचती है। स्वीटजरलेण्ड की एक संस्था ने इस सम्बन्ध में अनुसंधान करके कुछ तथ्य एकत्रित किये हैं। मैं चाहूंगी कि इस दिशा में और अधिक अनुसंधानकार्य हाथ में लिये जावें।

स्वाश्रयी खेती का दृष्टिकोण

स्वाश्रयी खेती की दृष्टि से अब हमारे उद्देश्य क्या होने चाहिये, इस पर थोडा प्रकाश डालूंगी तथा अंत में सेन्द्रिय खेती पर अपना मत रखूंगी। स्वाश्रयी खेती का मापदंड एक शब्द में कहना हो तो वह शब्द 'स्थायित्व' है। इसका मतलब है कि ऐसे साधन अपनाना जिनसे जमीन की उपजाऊ शक्ति हमेशा बनी रह सके जो, जहां तक संभव हो पुनः पूर्ति हो सके, ऐसी सामग्री का उपयोग करें, जो पर्यावरण को अधिक विषैला न बनावें और जो मिट्टी के अंदर तथा अन्य सभी संबंधित भोजनचक्रों में जीवनी-शक्ति को बढावा दें अथवा यों कहें कि जो प्राणिमात्र को प्रोत्साहित करें। जीवविज्ञान पर आधारित कृषि का यही लक्ष्य है जो कि उसको माननेवालों की उत्तरोत्तर वृद्धिगत समझ और ज्ञान पर आधारित है। संसार में सर्वत्र, अपने-अपने अनुभवों के आधार पर हम लोग मानते हैं कि हम कृषि की एक सुदृढ, सच्ची वैकल्पिक व्यवस्था दे सकते हैं, जो मनुष्य-समाज के अनेक प्रश्नों को हल कर सकेगी। इसकी संभावना और आवश्यकता दिन-प्रतिदिन वैज्ञानिक तथा सैद्धांतिक क्षेत्रों में अधिकाधिक मान्य की जाने लगी है।

PDF Compressor Free Version

मुझसे अक्सर पूछा जाता है कि मोटे तौर पर मैं सेन्द्रिय कृषि को रासायनिक खेती से किस तरह भिन्न मानती हूं। यद्यपि मैं 'जैविक कृषि' शब्द पसद करती हूं क्योंकि उसमें जीवन पर विशेष जोर है, फिर भी मेरा संक्षिप्त उत्तर है – 'संतुलन'। इसकी थोडी व्याख्या आवश्यक है। कुछ लोगों की राय के विपरीत, मैं यह मानती हूं कि सेन्द्रिय खेती की पद्धतियां किन्हीं निश्चित नियमों में नहीं बांधी जा सकती। ये बुनियादी तौर पर किसान के दृष्टिकोण पर निर्भर करती हैं। जीवन के प्रति सकारात्मक तथा जैविक दृष्टिकोण अपनाये बिना सेन्द्रिय खेती नहीं हो सकती। आज के किसान का दृष्टिकोण नकारात्मक, संकीर्ण तथा अपूर्ण है, अतः इससे असंतुलन पैदा होता है। उदाहरण के तौर पर, आज के किसान का कीडों तथा खर-पतवार के प्रति दृष्टिकोण शत्रु का है जिन्हें वह मारना या पूर्णतः नष्ट कर देना चाहता है। जब वह उन पर संहारक रासायनिक औषधियों की मार्फत आक्रमण करता है तो वह इस बात को अक्सर भूल जाता है कि इन विषैले रसायनों का अन्य जीव-जन्तुओं पर जिनमें बहुत से उसके लिये फायदेमंद होते हैं, तथा अनाज और फलों पर क्या असर होगा। फसल के कीडों को खा जानेवाले पक्षी तथा जीवजन्तु इसके अच्छे उदाहरण हैं।

सेन्द्रिय कृषि करने वाले किसान का दृष्टिकोण, जीव-विज्ञान पर आधारित होने से भिन्न प्रकार का होता है। वह जीव-जगत की एकता को मद्देनजर रखता है। वह कीडों और घास-पात को संसार की प्राकृतिक रचना के एक भाग के तौर पर स्वीकार कर लेता है, तथा उसे स्थायित्व के लिये आवश्यक मानकर नष्ट करने की बजाय उसका उपयोग अपने लिये करने का प्रयास करता है। अपने पूरे क्रियाकलापों के द्वारा अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु वह प्रकृति के साथ कृत्रिम साधनों से संघर्ष को बजाय सहयोग का रुख अपनाने का प्रयास करता है। वह जंगल में दृष्टिगोचर होनेवाले प्राकृतिक नियमों का अध्ययन करता है और उन्हें अपने लाभ के लिये अनुकूल बनाने का प्रयास करता है, न कि उनका उल्लंघन करता है।

संतुलन और स्थायित्व

प्राकृतिक रूप में जो जंगल कायम है उनका अध्ययन करने पर सर्वप्रथम उसे पता चलेगा कि वहां **स्थायित्व** है और **संतुलन** है।

PDF Compressor Free Version

विविध प्रकार के पेड-पौधों को मिलाकर एक ऐसा स्थायी समाज बनता है जो कि परस्परावलंबी है, भले वह आलंबन स्पर्धात्मक हो अथवा सहयोगात्मक । शायद ही कभी किसी प्रकार के पौधें पूरी तरह नष्ट होते हैं और शायद ही कभी किसी प्रकार की बीमारी सीमा को लांघती है। इस प्रकार सेन्द्रिय कृषक की यदि कोई फसल कीडों से प्रभावित होती है तो वह यह महसूस कर लेता है कि इसका कारण उसके स्थानीय वातावरण में किसी प्रकार का असंतुलन ही है और वह अपने क्रियाकलापों का पुनरावलोकन करता है और पता लगाता है कि कहीं उनमें से कोई गलत तो नहीं हैं, जैसा कि अक्सर होता भी है । इसका यह अर्थ नहीं है कि वह ऐसे मौकों पर बचाव के कोई तात्कालिक उपाय नहीं अपनायेगा । परंतु वह ऐसा बहुत जरूरी होने पर ही करेगा, न कि एक सामान्य सावधानी के तौर पर । वह पुनः जैविक संतुलन बनाने का प्रयास करेगा और यह आश्चर्य और खुशी की बात है कि सेन्द्रिय कृषक यह संतुलन अधिकांश रूप में प्राप्त करने में सफल ही हो जाता है । इसके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, किंतु यहां सिर्फ एक काफी होगा ।

कुछ वर्ष पहले बडे पैमानेपर सेन्द्रिय कृषि करनेवाले मेरी पहचान के एक किसान के यहां केम्ब्रिज विश्वविद्यालय के कुछ वैज्ञानिक पहुंचे । उनमें पौधों तथा कीडों की बीमारियों के विशेषज्ञ भी थे । उन्हें मालूम था कि मेरे मित्र के खेत में कीटनाशक औषधियों का छिडकाव नहीं किया गया था अतः वे बीमारियों तथा कीडों की खोज करने लगे । उन्हें यहां वहां इक्के दुक्के उदाहरण सभी संभावित रोगो के मिल गये परंतु जैसा कि उन्होंने कहा, उन्हें एक भी उदाहरण ऐसा नहीं मिला जहां कीडों ने फसल का नुकसान किया हो ।

जैविक संतुलन प्राप्त करने के साथ-साथ सेन्द्रिय कृषक, जैविक कृषि के अन्य अनेक नियमों को ध्यान में रखकर उनका प्रयोग भी करता है । उदाहरण के तौर पर प्रकृति में पाई जानेवाली विविधता को वह फसलचक्र के माध्यम से अपना लेता है । एक ही प्रकार की फसलें या जानवर न रखकर वह विविधता का मार्ग अपनाता है । धूप, हवा,

PDF Compressor Free Version

पानी से बचाव की प्रकृति में प्राप्त धरती की उपरी परत को वह हरियाली को मिट्टी में दबाकर अथवा जमीन ढंकनेवाली फसल लगाकर मजबूत कर लेता है। प्रकृति की योजना में सेन्द्रिय पदार्थ हमेशा जमीन की सतह पर ही संग्रहीत रहते हैं। केंचुए तथा अन्य कीडें उसे जमीन के अन्दर ले जाते हैं। सेन्द्रिय किसान अपना कम्पोस्ट तथा गोबर भी खेती की सतह के करीब ही जमीन में डालता है और जुताई करते समय भी लोहे के गहरे हल की बजाय बखर या दतार का प्रयोग पसंद करता है, जो कम गहरी कुदाई करते हैं।

प्रकृति की कुशल पूर्ति-व्यवस्था इस बात की पूरी सावधानी रखती है कि छोटे-छोटे कीडों से लेकर बडे पेड-पौधों तक के लिये आवश्यक जैविक पदार्थ पर्याप्त उपलब्ध हों। अत: सेन्द्रिय किसान इस बात का खास ध्यान रखता है कि सभी प्रकार का सेन्द्रिय कूडा-कचरा सुरक्षित रखकर खेत में वापस पहुंचाया जाय। उसका उद्देश्य रहता है कि जमीन के अन्दर के जीव-जंतुओं की वृद्धि हो और वे पौधों को पोषण प्रदान करें।

अंत में सेन्द्रिय किसान इस बात का ध्यान रखकर प्रयास करता है कि उसकी जमीन की रचना जैविक सिद्धान्तों के अनुरूप जितनी अच्छी बन सके उतनी बनाई जावें, अर्थात उस जमीन में भुरभुरापन रहें, उसमें पानी सोखने की शक्ति हो तथा पानी के निकास की अच्छी व्यवस्था हो।

यह आश्चर्य की बात है कि अच्छी भूमि के उपरोक्त गुणों की आधुनिक कृषि-पद्धतियों में किस कदर अवहेलना की जाती है। जमीन का पोत कमजोर होने पर उसमें हवा और पानी का संतुलन बिगड जाता है। अक्सर सूक्ष्म तत्वों तथा खनिज लवणों की दीखनेवाली कमी वास्तव में प्राणवायु की कमी साबित होती है। जब इसको सुधारा जाता है तो अन्य कमियां अपने आप दूर हो जाती है। अधिकांश खेतों में वास्तव में खनिज लवण पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते हैं, भले ही उन पर वर्षों तक लगातार खेती क्यों न की जाय, बशर्ते कि पौधों की जडों को पर्याप्त नीचे तक जाने का मौका मिले। इस सबकी

PDF Compressor Free Version

कुंजी है मिट्टी की अच्छी संरचना, जो कि केंचुओं द्वारा बहुत प्रभावित होती है। आधुनिक कृषि-पद्धति मिट्टी की संरचना को अनेक प्रकार से नष्ट करती है। भारी यंत्रों को जमीन पर चलाने से मिट्टी कडी बन जाती है। खराब मौसम होने पर भी बडी मशीनों से खेतों की जुताई करने से जमीन बिगडती है। पर्याप्त मात्रा में सेंद्रिय खाद न देकर तथा अथवा केंचुओं के लिये पर्याप्त मात्रा में चूने की उपलब्धि न करवाकर मिट्टी का पोत बिगाड दिया जाता है।

चुनौती और प्रेरणा

ये सभी दोष हैं जैविक ढंग से न सोचने के। जीव-जगत के बारे में टुकडों में सोचने के हमारे गलत ढंग के ये परिणाम हैं जो कि हमारे अस्तित्व के लिए ही बडा खतरा बन गया है। जीव के विकास के प्रारंभ से आज तक की प्रक्रिया एककोशीय जीवों से बहुकोशीय जीवों की ओर रही है तथा भोजन-चक्र की लंबाई अधिक होती गई है जिससे कि पर्यावरण अधिक समृद्ध बनता गया है। इस पृथ्वी के इतिहास में पहली बार आज का मनुष्य विकास की इस प्रक्रिया को उल्टा मोडने की कोशिश कर रहा है। अनेक प्रकार के पेड-पौधों की जातियां समूल नष्ट की जा रही हैं, भोजन-चक्र छोटा होता जा रहा है और पर्यावरण दरिद्र एवं शोषित होकर रह गया है। अगर यही क्रम चलता रहा तो थोडा विचार करने मात्र से समझ में आ सकेगा कि भविष्य क्या होगा। इस परिस्थिति में हम क्या करें ? यही वास्तविक चुनौती है सेंद्रिय खेती आंदोलनों के अंतर्राष्ट्रीय संगठन के सामने। मेरी राय में यह चुनौती है शिक्षण की।

साइल एसोसिएशन, सेंद्रिय खेती के सिद्धांत तथा व्यवहार का प्रचार करके प्रौढ शिक्षण का एक अत्यंत उपयोगी काम कर रही है। आज यह अत्यंत जरूरी है कि सभी स्कूलों के शिक्षा-क्रम में पर्यावरण का अध्ययन आवश्यक बनाया जावे। वास्तव में आवश्यकता तो इस बात की रहेगी कि पहले हम शिक्षकों को प्रशिक्षित करें। उन्हें किस तरह का प्रशिक्षण दिया जाय इस पर हमें एकमत हो जाना चाहिए।

जैविक दृष्टिकोण के पीछे दो प्रेरणाएं हो सकती हैं। प्रथम तो स्वयं रक्षण की बात है, भले ही वह परोपकाराधारित हो। अर्थात् हमें

PDF Compressor Free Version

यह बतलाना पडेगा कि अन्य जीवों को बचाना आवश्यक है, क्योंकि उनके अभाव में हम भी नहीं बचेंगे । दूसरा दृष्टिकोण इस बात पर आधारित है कि इस संसार में मौजूद समस्त प्राणीजगत एक संपूर्ण इकाई है । हम इसके एक अंशमात्र हैं । और अन्य जो जीव हैं जिन्होंने इस जगत को बनाने में योगदान दिया है, उनको भी बने रहने का अधिकार है । यही एक संपूर्ण दृष्टिकोण है । और मेरा मानना है कि एक संगठन के नाते हम इसी दृष्टिकोण को मानते हैं ।

अगर मैं सही हूं तो इस दृष्टिकोण का अर्थ होगा कि हम नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों से बच नहीं सकते, क्योंकि वे भी संपूर्ण जगत के एक भाग है । उनका तथा उनके फलितार्थों का ध्यान न रखना एक दूसरे प्रकार की एकांगिता साबित होगी । अतः मेरा मानना है कि हमें आल्डो लिओपोल्ड की भाषा में 'जमीन की नैतिकता' दुनिया को सिखलानी है । इसका अर्थ है कि हम समाज की परिभाषा इतनी व्यापक बनायें कि उसमें सभी जीव-जगत आ जाय, जिनके साथ हम इस संसार में रह रहे हैं । हमें प्राणिमात्र के प्रति एक आदर का भाव विकसित करना चाहिए । जिन प्राणियों को हमें नियंत्रण में रखना पडता है उनके प्रति भी यह दृष्टिकोण अपनाना पडेगा । लिओपोल्ड के शब्दों में "जमीन का सही उपयोग केवल आर्थिक प्रश्न है, इस भाषा को अब हमें छोडना होगा तब हर प्रश्न को उसके नैतिक तथा सौंदर्य-प्रेरक दृष्टिकोण से देखना होगा । और उस पर वर्तमान परिस्थिति, आर्थिक दृष्टिकोण से अमल करना कैसे संभव है यह भी पता लगाना होगा । जो वस्तु इस दृश्य जीव-जगत की एकता, स्थिरता एवं सुंदरता की वृद्धि करे वह सही है और इससे विपरीत जो हो वह गलत है ।"

इस उद्धरण में मैं जो मानती हूं कि अपना मार्गदर्शक ध्येय होना चाहिए वह बात आ गई है ।

[अनुवादक : **कनकमल गांधी**]

* *

PDF Compressor Free Version

प्राकृतिक खेती : एक भावी संभावना

बनवारीलाल चौधरी

अमेरिका के केलीफोर्निया प्रदेश के सानजोआक्किन क्षेत्र में पहले बहुत अधिक अनाज, फल और सागभाजी पैदा होती थी। खेती की वर्तमान तथाकथित वैज्ञानिक पद्धति ने इस क्षेत्र को रेगिस्तान-सा बना दिया है। इसी प्रकार विश्व की ६० लाख हेक्टेयर उपजाऊ जमीन रेगिस्तान बनती जा रही है। पंजाब में लुधियाना जिले में सबसे अधिक कृषि-उपज मिलती थी अब उस जमीन का उत्पादन गिर रहा है। ऐसी परिस्थिति संसारव्यापी बनती जा रही है। इससे पार पाने का, बचने का एकमात्र उपाय खेती का प्राकृतिक तरीका अपनाना है।

प्राकृतिक कृषि या सेन्द्रिय कृषि-व्यवस्था कृषि की वह व्यवस्था या पद्धति है, जो जीवन-चक्र के अनुरूप चलती है, जिससे मिट्टी और वातावरण को कम से कम हानि पहुंचती है। जीवन-चक्र का रूप निम्नानुसार है –

जी व न - च क्र

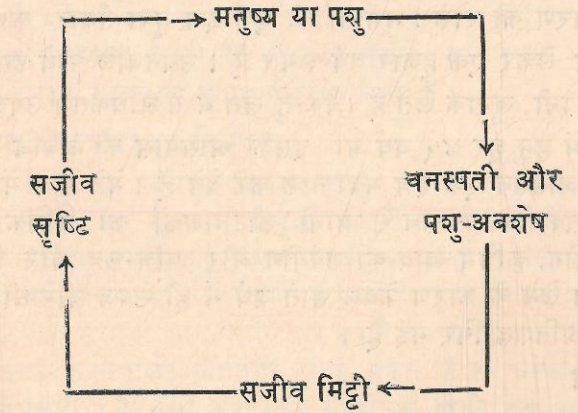

PDF Compressor Free Version

प्राकृतिक कृषि के मूल तत्व या आधार

१. वह जीवन-चक्र या प्राकृतिक क्रम के अनुसार चलती है। इससे सृष्टि में और जीव-जगत के बीच सन्तुलित सम्बन्ध बना रहता है।

२. खेती मनुष्य और उसके पशुओं की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए की जाती है, संग्रह के लिए नहीं। अर्थात खेती पेट भरने के लिये है, न कि पेटी भरने को।

३. मिट्टी की उर्वरता कायम रखना : उपजाऊ मिट्टी वह कहलाती है जो सेन्द्रिय तत्वों को लम्बे समय तक कायम रखे। जहां सेन्द्रिय तत्व समाप्त हुए कि मिट्टी उसर या अनउपजाऊ हो जाती है। इसलिए मिट्टी की उर्वरता की पूर्ति कृत्रिम रूप से न की जाकर कृषि की प्राकृतिक प्रणालियों से की जानी चाहिए। जैसे – (१) फसलों में परिवर्तन करके (२) एक ही प्रकार की फसल पैदा करने की परम्परा से बचकर। इसमें जमीन को पडती छोडने की बात शामिल है। जमीन को पडती छोडने का मतलब है जमीन को आराम देना, हरी खाद देना, गहरी जुताई करना आदि।

४. वनस्पति और जीवन-जगत का सन्तुलन कायम रखते हुए फसल पैदा करना।

५. कम्पोस्ट एवं अन्य सेन्द्रिय खाद का उदारता से उपयोग करना।

६. हड्डी का खाद और पशु-अवशेष का उपयोग।

७. भू-क्षरण की रोक : भूमाता को एक इंच मृदा तैयार करने में एक सौ से लेकर एक हजार वर्ष लगते हैं। उगनेवाले पौधे इसी मृदा में से अपनी खुराक लेते हैं। किन्तु खेत में से अधिकतम उपज लेने की धुन में हम हर ४५ वर्ष या इसके आसपास की अवधि में कम से कम औसतन एक इंच मृदा नष्ट कर देते हैं। मेरे गांव में कृषि की नई तकनीक अपनाने से यानी कीटनाशकों का अधिक मात्रा में उपयोग, कृत्रिम खाद का उपयोग और पांच-छह बार सिंचाई से उपज लेने के कारण केवल सात वर्ष में ही उपज धीरे-धीरे ४० से ६० प्रतिशत गिर गई है।

भू-क्षरण

आधुनिक कृषि का एक सबसे बडा खतरा भू-क्षरण की मात्रा में वृद्धि है। भारत जैसे सघन आबादी वाले देश में भू-क्षरण न हो

PDF Compressor Free Version

इसकी व्यवस्था की जानी चाहिए। यह काम भू-क्षरण के कारणों को रोक कर किया जा सकता है।

जमीन वहां कटती है जहां बुलडोझरों या ट्रेक्टरों से जोती जाती है, जहां मनुष्य यह नहीं सोचता कि वन हवा से बचाते हैं, मिट्टी को बांध कर रखते हैं, पानी बरसाते हैं, छाया देते हैं; और उन्हें काटता जाता है, जहां वह गहरी और चौडी जुताई करता है और ढालू जमीन पर पाले बांधकर जुताई न कर ढाल में जुताई करता है। यह वहां भी होता है जहां जमीन की क्षमता से अधिक पशु चराये जाते हैं और चरणोई जमीन को आराम नहीं मिलता तथा फसल-परिवर्तन न कर एक ही प्रकार की फसल ली जाती है। इसके बाद यह वहां भी होता है जहां उपयोग में ली हुई जमीन में खाद आदि डालकर उसकी गयी हुई शक्ति की पुनः पूर्ति करने में लापरवाही बरती जाती है और फसल ली जाती है। जमीन में गोबर का खाद और वनस्पति का अवशेष डालते रहने से उसमें सेन्द्रिय, पोषक तत्व कायम रहते हैं। जमीन से हम जो कुछ भी लेते हैं उतना उसे ईमानदारी से और समय से लौटाने का ध्यान रखकर ही स्थायी और वास्तविक वृद्धि पाने की अपेक्षा रख सकते हैं।

भू-क्षरण रोकने का एक ही तरीका है और वह यह है कि जमीन का पोत बिगडने न दिया जाये।

जमीन का पोत कायम रखने का तरीका यह है कि हम सेन्द्रिय खाद डालते रहें। यह खाद सेन्द्रिय तत्व, प्राणी और वनस्पति के अवशेषों की सडन से बनती है, और यह सडाने या पकाने का काम जमीन के अन्दर रहनेवाले सूक्ष्म जीवाणु करते हैं।

रोगों और कीटाणुओं का नियंत्रण

हम मिट्टी का स्वास्थ्य कायम रखकर करें। मिट्टी एक जिन्दा चीज है। उसके लिए सूक्ष्म जीवाणुओं का होना उतना ही आवश्यक है जितना सेन्द्रिय तत्वों का, पोषक तत्वों का होना। अतः रोग या कीटाणुओं को रोकने के लिए हम नीमखली, हींग, तम्बाखू के पत्ते वगैरा निरोधक सामग्री का उपयोग कर सकते हैं। रोगों और कीटाणुओं का मुकाबला करनेवाली जातियां उगा सकते हैं। फसल-परिवर्तन प्रणाली समझदारी के साथ अपनाकर सन्तुलित खेती कर सकते हैं। पक्षी, साँप, बिच्छू, ये किसान के मित्र हैं। ऐसे जीवों के द्वारा हम फसल के शत्रुओं का नियंत्रण कर सकते हैं।

PDF Compressor Free Version

सफल खेती की पहली शर्त यह है कि हम जमीन की उर्वरा शक्ति को कायम रखें। यदि फसल पर रोग या कीटाणुओं का आक्रमण होता है तो समझ लीजिये कि जमीन की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। जमीन में जहां उर्वरा शक्ति आ गई कि रोग और कीटाणु सब गायब हो जाते हैं। क्योंकि जमीन के सशक्त बनते ही फसल में संरक्षण-शक्ति अपने आप आ जाती है, जैसा कि बनों का होता है। स्वस्थ जमीन में ही स्वस्थ फसल होती है।

पूर्णतः परिपक्व फसल काटी जाये तथा उसे अच्छी तरह धूप में सुखाकर रखा जाये तो वह अनाज अपने आप कीटाणुओं और रोगों का मुकाबला कर लेता है और उसका बीज भी रोगों और कीटाणुओं का मुकाबला करने की क्षमता रखता है।

कृषि और पशु-पालन

सेंद्रिय कृषि-व्यवस्था के लिए खेत पर कुछ पशु-पक्षियों का होना अनिवार्य है। उनसे दूध मिलता है, अंडे मिलते हैं, शहद मिलता है, खाद मिलती है और खेती करने के लिए शक्ति मिलती है। इससे हमारी खेती पूर्ण बनती है।

जहां संभव हो, मधुमक्खी-पालन भी किया जाना चाहिए। मधुमक्खी पालकों का कहना है कि जहां मधुमक्खी पाली जाती है वहां के उत्पादन में गुण भी ज्यादा होते हैं और मात्रा भी। जिस वातावरण में पौधा होता है वह उसका उपयोग करता है या उसे अपना उपयोग देता है।

वृक्ष की काश्त

वृक्ष-कृषि को खेती के साथ किया जाना चाहिए और आज की स्थिति में यह बिलकुल अनिवार्य हो गया है।

कृषि और आरोग्य

आजकल यह सामान्यतः मान लिया गया है कि रोग का मूल कारण हमारी कमजोरी, सुस्ती, मायूसी और शारीरिक परेशानियां हैं और यह सब सामान्यतः हमारी आज की खुराक का परिणाम है। खुराक निर्भर करती है हमारे आहार पर, हम कैसा और कितना आहार लेते हैं, उसमें कितने तत्व होते हैं आदि पर।

कई प्रयोगों में यह देखा गया है कि जो चूहे सेंद्रिय खाद का अनाज खाते हैं वे स्वस्थ और सुंदर होते हैं और जो कृत्रिम खाद का अनाज खाते हैं, वे कुबडे होते हैं और उनके बाल बाद में गिर जाते हैं।

PDF Compressor Free Version

दोनों तरह के अनाजों के रासायनिक विश्लेषण से मिश्र खाद के अनाज और कृत्रिम खाद के अनाज में कोई भौतिक अंतर नहीं पाया गया। किंतु फिर भी मूल रहस्य सेंद्रिय खाद के जैविक गुणों में समाया हुआ है। वे जैविक गुण जीवन प्रदान करते हैं। उस मिट्टी में जो फसल बोई जाती है उसमें उसे खानेवाले आदमियों और पशुओं को जीवन-शक्ति प्रदान करने की क्षमता होती है।

सेंद्रिय कृषि-व्यवस्था के फायदे

(१) यह प्राकृतिक चक्र के अनुरूप संवेदनशील होती है। इसमें कृषक के मन पर तनाव नहीं पडता, बल्कि आनद आता हैं।

(२) आर्थिक दृष्टि से कम श्रम और कम निवेश सामग्री लगती है। सेंद्रिय कृषकों को मान्यता है कि इसमें जमीन को जोतना भी आवश्यक नहीं है। रसूलिया के फ्रेंडस् रूरल सेंटर पर इस संबंध में प्रयोग किया जा रहा है। उसके उत्साहवर्धक परिणाम मिले हैं।

(३) औद्योगिक शोषण से मुक्ति मिलती है।

(४) मिट्टी स्वस्थ रहती है तथा उसमें सतत एवं अधिक उत्पादन देने की शक्ति आती है।

(५) फसलों में रोगों और कीटाणुओं का मुकाबला करने की क्षमता रहती है।

(६) उत्पादन स्वस्थ होता है और उपभोक्ता को स्वस्थ रखता है।

(७) यह कृषि मनमोहक, आध्यात्मिक और हिंसाविहीन होती है।

(८) भू-क्षरण रुक जाता है।

(९) जमीन के केंचुए आदि जीवाणू और बेक्टीरिया की संख्या पर्याप्त रूप से न केवल कायम रहती है, बल्कि बढती जाती है।

(१०) उत्पादन में तात्विक गुण अधिक होते हैं। संग्रह में अनाज पर कीटाणुओं का प्रकोप नहीं होता।

प्रश्न रासायनिक खाद बनाम सेंद्रिय खाद का नहीं है। प्रश्न है स्वस्थ, पोषणयुक्त, प्रदूषणहीन खाद्य पदार्थ भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखते हुए प्राप्त करने का। सेंद्रिय खेती एक उत्तम एवं विचारणीय पर्याय है। किसानों और कृषि-वैज्ञानिकों को इसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए। ※ ※

PDF Compressor Free Version

सेन्द्रिय खेती और ऊर्जा की खपत

सेन्द्रिय कृषक मक्का पैदा करने में ३० प्रतिशत तथा सोयाबीन पैदा करने में १६ प्रतिशत कम ऊर्जा की खपत करते हैं। अमरीका के न्यूयार्क तथा पेंसिलवेनिया प्रान्तों के सेन्द्रिय किसान अन्य किसानों की तुलना में प्रति एकड ऊर्जा की खपत ३० प्रतिशत कम करते हैं।

सामान्य किसानों की तुलना में सेन्द्रिय किसान ऊर्जा के अच्छे उत्पादक हैं।

	ऊर्जा की बचत
ठंडी का गेहूं, उत्तर - पश्चिम अमरीका	१५ प्रतिशत
ठंडी का गेहूं, उत्तर - पूर्व अमरीका	५८ प्रतिशत
बार्ली [जौ]	२५ प्रतिशत
गर्मी का गेहूं	४७ प्रतिशत

बडे पैमाने पर रासायनिक के स्थान पर सेन्द्रिय कृषि अपनाने में जो बडी समस्या बतलाई जाती है वह है सेन्द्रिय पदार्थों तथा कूडे-कचरे की बहुत सीमित मात्रा में उपलब्धि। रासायनिक उर्वरको के स्थानपर कम्पोस्ट आदि का उपयोग वहीं उर्जा की बचत कर सकेगा जहां कि पशुपालन तथा फसलें साथ-साथ ली जाती हैं, जैसा कि अनेक सेन्द्रिय किसान करते हैं। कुल मिलाकर, सेन्द्रिय खेतों की तुलना में थोडी ज्यादा है। सेन्द्रिय खेतों पर पैदा किये गये सभी अनाजों की औसत उपज ३९ बुशल प्रति एकड हुई, जब कि रासायनिक खेतों पर ३५.२ बुशल हुई।

सेन्द्रिय खेती पर सोयाबीन का उत्पादन रासायनिक खेती की तुलना में अधिक नहीं तो बराबर अवश्य था। सेन्द्रिय पद्धति से गेहूं का उत्पादन रासायनिक पद्धति के बराबर रहा।

* *

PDF Compressor Free Version

सेन्द्रिय खेती यानी पारिवारिक खेती

मोहनलाल चोरडिया

घरेलू खाद की खेती का कभी सोचा भी नहीं था, पर चिकित्सा सम्मेलन में पू० अण्णा (अण्णासाहब सहस्रबुद्धे) ने जगाया एवं उसी क्षण यह तय किया कि रासायनिक खाद काम में नहीं लेंगे। आज करीब १० वर्ष हो गये, खाद के लिये बाजार नहीं जाना पडता। पहला फायदा कुंए में पानी है तथा खेत दो फसल दे सकते हैं, इसलिये कितना भी मुश्किल होते हुए भी गोपालन नहीं छूट रहा है। खेत के लिये खाद, खाद के लिये गाय, पशु, पशुओं के लिये घास (हरा घास, चरी आदि), घास आदि से दूध, गोबर, बछडा आदि। यह अपने आप में एक वर्तुल बन गया, जो स्थानीय आधार पकडे हुए है। दौड बची, पैसा बचा, कच्चे माल का पक्का माल बनने लगा (यह गाय के कारण)। ऐसे घरेलू भाषा में कई फायदे है। मैंने अपने यहां पर कोई आंकडे नहीं रखे। पर प्रारम्भ में जब बाहरी खाद छोडा तब गेहूं की फसल एकदम घट गई। गन्ना भी कम पैदा हुआ, पर हरा घास कम नहीं हुआ। इसकी कमी महसूस नहीं हुई। धीरे-धीरे गेहूं तो पुराने मुकाम पर आ गया। उत्पादन संतोषजनक रहा। हरे घास से पूरा संतोष।

गोबर के खाद में एक खतरनाक बात है, वह यह कि फसल में कचरा बहुत तथा निंदाई के बारे में बहुत मुश्किल। उसका एक इलाज खेत को एक बार पानी पिलाकर फसल बोना, कचरा कम हो जाता है।

चूंकि खेती पारिवारिक तल पर है, इसलिये पैदावार के उपयोग के बारे में बडा आकर्षण है। स्वाद सर्वोपरि है। शरीर पर कैसा असर होता है, इतने सूक्ष्म में जाने का नाप-तौल इस देश के किसान के लिये तथा मेरे लिये भी सोचना तो ठीक है, पर कर लेना आसान नहीं, वातावरण ही नहीं।

PDF Compressor Free Version

गुड, गेहूं, आलू, दूध, घी, सबके सब रतलाम के बाजार में विशिष्ट स्थिति में हैं। अपना एक अलग ही अस्तित्व रखते हैं। खेती अपना अलग ही स्थान कायम किये हुए है।

वस्तुओं के स्वाद में, उपयोगिता में, परिवार का व्यक्तित्व काम करता है। सम्मेलनों में गोबर-खाद की विशेषता की चर्चा तो हो सकती है। लेकिन यह पारिवारिक मिठास एवं जीवन-खेती के साथ एक अलग जीवन रसायन निर्माण करती है एवं यह सर्वोपरि है।

गोबर-खाद आदि के साथ पारिवारिक तल पर खेती-उद्योग की बजाय खेती-घर कोई बडा व्यापक सूक्ष्म, पर आवश्यक माने रखता है। तथा गोबर-खाद खेती के विषय के साथ अगर यह जोडा जाय तो घरेलू खेती हम सबको कहीं अलग धरातल पर खडा करती है। गोबर-खाद का मतलब है स्थानीय आधार। स्थानीय आधार का युनिट गांव तो समूह है। परिवार ही सही इकाई है। परिवार की एकात्मता एवं परिवार के तल पर जीना एक प्राकृतिक बात है। परिवार में जीना अप्राकृतिक है। स्थानीय धरातल व्यापक आधार है। उसमें गोबर एक है। सारे स्थानीय आधार – परिवार, पत्नी, बच्चे, गाय, खेत, गोबर – व्यापक सेन्द्रिय खाद खेती बनते हैं। ऐसे हमारे अनुभव हैं।

पो० दिलीपनगर
जि० रतलाम (म० प्र०)

*　　*

मेरी समझ से, प्राकृतिक खेती का चरम लक्ष्य सिर्फ फसलें उगाना नहीं है; बल्कि वह तो मानव के परिपूर्ण विकास का एक साधन है।

– फुकुओका

PDF Compressor Free Version

सेन्द्रिय खेती की विरासत

कोरा मेथेन

प्रश्न – आप रासायनिक खाद पर आधारित खेती में विश्वास रखते थे, फिर सेन्द्रिय खेती की तरफ कैसे मुडे ?

उत्तर – इसका कोई एक ही कारण नहीं है । अनेक बातें धीरे-धीरे जुडती गईं और मैं रासायनिक खेती से दूर हटता गया । कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि सेन्द्रिय खेती की सर्वांगीण आर्थिक अनुकूलता ही वह मूल कारण है ।

जब मैंने रासायनिक खादों का इस्तेमाल प्रारंभ किया तो मेरी उपज तेजी से बढी । परंतु शीघ्र ही वृद्धि की दर कम होती गई और अंत में जाकर रुक गई । दूसरी ओर रासायनिक खादों की मात्रा प्रारंभ की तुलना में दो-तीन गुना तक बढ गई और खर-पतवार (घास-पात) नाशक औषधियों का उपयोग पांच गुना बढा । साथ ही हाईब्रीड (संकर) बीजों के दाम भी बढते रहे, जब कि मेरी उपज के दाम बहुत कम बढे । अंत में जाकर यह स्पष्ट हो गया कि आर्थिक दृष्टि से रासायनिक खेती फायदे की नहीं रही । हम पहले से ही सेन्द्रिय कृषक थे, अतः उसी पुरानी पद्धति को हमने अपना लिया ।

प्रश्न – आपने रासायनिक खेती प्रारम्भ ही क्यों की ?

उत्तर – यह एक लम्बी कहानी है । मेरे पिताजी के पास १५ एकड जमीन थी । जमीन बिना सिंचाई की थी और हम मुख्यतः धान पैदा करते थे । कुछ गायें भी थीं । हम पांच भाई अपने-अपने परिवारों के साथ एकत्र रहते थे और खेती सामूहिक होती थी । खेती से अपनी आवश्यकता भर पूरी होती थी । बहुत थोडा अनाज बचता था, जिसे हम बाजार में बेच देते थे । कुल मिलाकर हमारा काम ठीक चल जाता था । हमें कर्ज नहीं लेना पडता था । हम लोगों की तुलना में पिताजी जमीन से अधिक उपज लेते थे, हम मानते थे कि यह उनके अनुभव-ज्ञान के कारण हैं । वे सेन्द्रिय खेती के समर्थक थे और अपना अधिक-

PDF Compressor Free Version

तर समय खेती पर बिताते थे । लेकिन जब से हम भाइयों ने हाथ बटाना शुरू किया, तो उन्होंने धीरे-धीरे हम पर ही जिम्मेवारी डाल दी । जमीन सारी पिताजी के नाम पर थी । अतः सरकार, बैंक आदि हमें 'बडा किसान' मानते थे । हमारे ग्राम-सेवक की सलाह थी कि जमीन का भाइयों में बंटवारा कर लेने से छोटे किसानों को मिलने वाले कर्ज, अनुदान आदि मिल सकेंगे । इन्हीं दिनों गांव में रासायनिक खाद का आगमन हो चुका था । सरकारी प्रचार तथा खाद बनाने वाली कंपनियों के प्रतिनिधि इनका प्रचार करते थे । प्रारम्भ में तो हम लोगों ने ध्यान ही नहीं दिया, क्योंकि उसके लिए हर एक को अपना अलग घर बसाना पडता और पिताजी इसके विरुद्ध थे । लेकिन रासायनिक खाद से पैदावार में प्रारम्भिक वृद्धि इतनी ज्यादा थी कि मेरे कुछ भाई अपना लोभ संवरण न कर सके । अंततः पिताजी को भी झुकना पडा । जमीन हम पांचों भाइयों ने बांट ली तथा जानवर पिताजी ने रख लिये । तय हुआ कि हम सब मिलकर पिताजी के भरण-पोषण का ध्यान रखेंगे । इस तरह से हमारे जीवन में कृत्रिम खाद का प्रवेश हुआ ।

प्रश्न – लेकिन इससे रासायनिक खेती का क्या संबंध है ?

उत्तर – जैसा मैंने कहा, यह तो प्रारम्भ मात्र था । बैंक-कर्ज आदि लेने के लिए हमें अपने चूल्हे अलग बनाने पडे । इसके लिए प्रारम्भ में अधिक खर्च आया, जिसके लिए हमें महाजन से कर्ज भी लेना पडा । लेकिन अलग-अलग घर होने से खेती पर काम करने का समय कम मिलने लगा । अतः हम इसी निश्चय पर आये कि उत्पादन बढाये बिना कोई रास्ता नहीं । बैंक-कर्ज चुकाना, महाजन का पैसा लौटाना आदि के लिए रासायनिक खेती एकमात्र उत्तर थी ।

प्रश्न – आपने कहा कि आपकी उपज बढने की गति कम होती गई, लेकिन रासायनिक खाद का उपयोग दो-तीन गुना बढ गया – ऐसे कैसे हुआ ?

उत्तर – यह ठीक है कि प्रारम्भ में मुझे अधिक पैदावार मिली, परंतु अनुभव यह आया कि पानी भी अधिक हो, तो ही पैदावार होती है । सौभाग्य से मेरे पडोसी के पास कुआं था और उसने कुछ दाम

PDF Compressor Free Version

लेकर मुझे पानी लेने दिया । अत: प्रारंभ के दो वर्ष में ही बैंक-कर्ज तथा महाजन का कर्ज चुका दिया गया और थोडी बचत भी रही । परंतु यह बचत खेती में ही लगानी पडी, क्योंकि बैंक से मिला कर्जा पूरा नहीं पडता था । बाद में जाकर कर्ज ज्यादा मिलने लगा तो अनुभव यह आया कि जो भी बचत होती वह बैंक-ब्याज में चली जाती । खेती के लिए जरूरी सामान बाजार में जब मिलता तभी खरीदना पडता । इसमें भी रकम अटक जाती, क्योंकि बैंक से समय पर पैसा नहीं मिलता था । उन चीजों के बाजार-भाव अक्सर अधिक होते थे । इस पर मैं अधिक उत्पादन के चक्कर में पडा रहता, लेकिन अंत में जाकर बचत करीब-करीब नगण्य रह गई । तब मैंने सेन्द्रिय खेती पर लौटने का निर्णय किया ।

प्रश्न – लेकिन क्या इतनी अधिक मात्रा में रासायनिक उर्वरक डालने से आपकी जमीन की उर्वरा शक्ति नहीं बढी, ताकि किसी वर्ष में कुछ कम उर्वरक डालें तो भी काम चल सकता ?

उत्तर – ठीक यही मैं भी मानता था और यही मुझे समझाया भी था । परंतु मैं गलती पर था । वह एक भयंकर गलतफहमी भी थी । अगर यह सच होता तो मुझे रासायनिक उर्वरकों का और औषधियों का उपयोग क्यों बढाते जाना पडता ?

फसल पर बीमारियों का प्रभाव मिट्टी के स्वस्थ होने का प्रमाण होता है । जब मैंने उर्वरकों का प्रयोग आरम्भ किया तो देखा कि केंचुए कम होने लगे, यहां तक कि कुछ वर्षों में तो वे दीखते भी नहीं थे । अन्य जीवाणुओं का भी यही हाल हुआ । जब मैंने पौधों की जडों का अध्ययन किया तो पाया कि उनकी जडें अधिकतर सतह के पास ही फैली हुई हैं । वे पोषण तथा पानी की खोज में नीचे की ओर नहीं फैलीं । इस कारण पौधे की सूखा सहन करने की क्षमता कम हो गई । शायद इसी कारण इन पौधों पर हवामान तथा कीडों का बुरा असर ज्यादा होने लगा । दूसरी तरफ अधिक मात्रा में उर्वरक तथा औषधियों के प्रयोग से जमीन में घास-पात ज्यादा पैदा होने लगी; अत: निंदाई का खर्च बढता गया । अंत में मैंने घास मारने की दवा छिडकने का तय किया । लेकिन उसका भी खास फायदा नहीं हुआ । नये-नये पौधे

PDF Compressor Free Version

उगते रहते हैं, जिन पर पुरानी दवा का असर नहीं होता और कई बार तो दवा में मिलावट रहती है ।

प्रश्न – कुल मिला कर आपकी जमीन पर क्या कुछ भी अच्छा असर नहीं पडा ?

उत्तर– रासायनिक खेती में मिट्टी की हालत बराबर बिगडती जाती है । सेन्द्रिय खाद के अभाव में मिट्टी के कण बारीक होते जाते हैं और उनकी हवा तथा पानी सोखने की क्षमता कम होती जाती है । अत: सिंचाई जल्दी-जल्दी करनी पडती है, लेकिन पानी सतह पर ही ठहर जाता है । काफी पानी वाष्पीकरण द्वारा उड जाता है और जमीन की सतह पर लवण (क्षार) रह जाते हैं । एक बात और है । उर्वरकों के माध्यम से खेती में सिर्फ मुख्य तीन घटक ही डाले जाते थे । मैंने कृषि महाविद्यालय के कुछ विशेषज्ञों से सलाह ली । उन्होंने कहा कि कुछ सूक्ष्म पोषक द्रव्य हैं जो पौधों को बहुत कम मात्रा में जरूरी हैं । उनको कृत्रिम खादों के माध्यम से यदि दिया गया तो उनकी मात्रा ज्यादा हो जाती है और फसल को नुकसान पहुंच सकता है । तब मैंने कुछ कम्पोस्ट डाली । लेकिन उसका भी ज्यादा फायदा नहीं हुआ, क्योंकि फसलों की तो रासायनिक खाद ही लेने की आदतें-सी हो गयी थी ।

प्रश्न– आपने बतलाया कि कीटनाशक औषधियों की जरूरत पांच गुना बढ गई । इसका क्या कारण था ?

उत्तर– पहली बात तो यह कि जो बीज हम काम में लेते थे वे बाहर से लाये गये थे, अत: बीमारियों से बचने की उनकी क्षमता कम थी । स्थानीय बीजों में यह गुण प्रचुर मात्रा में होता है । दूसरी बात, जब भी हम औषधियों का उपयोग एक तरह के घातक कीडों को मारने के लिए करते हैं तो उनके साथ ही फसल के रक्षक कीडे भी मर जाते हैं, जो उपयोगी होते हैं । हमने देखा कि औषधि छिडकने से मधुमक्खी आदि अन्य उपयोगी कीडे तो पूरी तरह से नष्ट हो गए । यहां तक कि पक्षी, मेंढक, तितलियां आदि भी कम हो गई । पहले बीमारियों की रोकथाम करने में इन सबकी मदद मिलती थी । कुछ मुख्य कीडों का नाश किया तो दूसरे छोटे-छोटे कीडे फसल का नाश

PDF Compressor Free Version

करने लगे तथा कुछ कीडों की ऐसी जातियां विकसित हो गई जो औषधि से मरती ही नहीं। कुल मिलाकर हर बार और अधिक विषैली तथा ज्यादा मात्रा में विविध कीटनाशक औषधियों का प्रयोग मुझे करते जाना पडा, जिनका असर उतना ही कम होता गया।

प्रश्न – आपने बतलाया कि आपको पानी का अधिक उपयोग करना पडा। ऐसा अन्यत्र भी देखने में आया। लेकिन क्या आप इसका कारण बतला सकेंगे ?

उत्तर– रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग होने से पौधों को ऊपरी सतह पर ही पोषण मिलने लगा। अतः उनकी जडें नीचे की ओर नहीं बढीं। नीचे की जमीन में जडें न होने से वहां हवा और पानी का जाना कम होने लगा। इससे केंचुए आदि उपयोगी कीडे भी अपना काम नहीं कर सके। रासायनिक खादों से उनकी रही-सही संख्या भी समाप्त हो गई। मिट्टी में से सेन्द्रिय सत्व का परिमाण कम होता गया जिससे कणों को बांधकर रखने की क्षमता कम होती गई और मिट्टी के कण बारीक बनते गये। इससे मिट्टी की निचली सतह कडी बन गई और उसमें पानी का जाना रुकता गया। अधिकतर पानी ऊपर ही रह जाता था और बह जाता या वाष्पीकरण होकर उड जाता था। अतः हमें बार-बार पानी देना पडता था।

प्रश्न– आप किस प्रकार के बीजों का प्रयोग करते थे ? क्या वे संकर बीज नहीं थे ? अगर थे, तो फिर इतनी समस्याएं क्यों ?

उत्तर– यह सही है कि संकरित बीज अधिक पैदावार देते हैं, लेकिन यह तभी सम्भव है जब ठीक समय पर, निर्धारित मात्रा में उर्वरक, औषधियां एवं पानी आदि दिये जाएं। एक बार मेरे पडोसी की मोटर जल जाने से १०-१५ दिन पानी नहीं मिला। इससे मेरी पैदावार भी १५-२० प्रतिशत कम हो गई। अतः संकरित बीजों के लिए दूसरी सारी जरूरतों का समय पर पूरा होना बहुत जरूरी है। इसमें अक्सर किसान को दिक्कतें आती रहती है। अनुभव यह है कि बीज सहित इन अनेक जरूरतों के लिए किसान को बाहरी स्रोतों पर निर्भर रहना पडता है। पहले हम अपना खुद का बीज सम्भालकर रख लेते थे। अब हर वर्ष शहर से संकर बीज लाना पडता है और जो भी मिला,

PDF Compressor Free Version

जैसा भी मिला, जिस भाव मिला, लाना पडता है। क्योंकि समय की बहुत कमी रहती है। कई-कई बार तो प्रमाणित बीज भी गलत निकलते हैं और तब पूरी फसल मारी जाती है। पहले हमने धान की आई० आर० ८ किस्म बोई, लेकिन एक साल वह बीमारी में पूरी नष्ट हो गई। तब हमने आई० आर० २२ बोना शुरू किया। लेकिन उस पर भी बीमारियां बहुत आने लगी। तभी मैंने सेन्द्रिय खेती करने का निर्णय लिया।

प्रश्न – ऐसा दीखता है कि आपका निरीक्षण बहुत सूक्ष्म है। रासायनिक खेती के बारे में अब तक जो बताया क्या उसके अलावा और भी कुछ आपके अनुभव हैं?

उत्तर – धन्यवाद। मेरी निरीक्षण की दृष्टि पिताजी की देन है और इसी ने सेन्द्रिय खेती में भी मेरी बहुत मदद की है। एक बात मैंने अभी तक आपको नहीं बतलाई। वह है, हम सबका सामान्य स्वास्थ्य। रासायनिक उर्वरक के द्वारा पैदा किया चावल हम खाने लगे तो हमें पेट भरने के लिए ज्यादा मात्रा लगने लगी और भूख भी जल्दी लग जाती थी। हमें बाद में मालूम पडा कि उस चावल में पोषक तत्व कम होते हैं। देशी चावल में स्वाद के साथ ही पोषण पूरा रहता था। धीरे-धीरे हमारे घर में छोटी-मोटी बीमारियां आने लगीं जिनका कारण समझ में नहीं आता था। यहां तक कि गायें भी संकरित पौधों का पुआल और कडबा चाव से नहीं खाती थीं और वह कडबा अधिक समय टिकता भी नहीं था। देशी कडबा साल भर टिकता था और गायें चाव से खातीं थी। जब से हमने सेन्द्रिय खाद से तथा देशी बीजों से खेती करनी प्रारंभ की, वे सब बीमारियां अपने आप मिट गई। संभव है कि जिन जहरीली दवाओं का हम कीडों को मारने के लिए इस्तेमाल करते थे उनमें से कुछ अंश फल, अनाज, दूध आदि के माध्यम से हमारे पेट में भी पहुंच जाता होगा। मैंने अपनी यह शंका कुछ खेती-तज्ञों के समक्ष रखी और उन्होंने उसका समर्थन किया, यद्यपि वे यह नहीं मानते थे कि इतने थोडे जहर से हमारा स्वास्थ्य बिगड जायेगा। मुझे विस्तार से तो मालूम नहीं, परंतु यह सच है कि जब तक रासायनिक उर्वरक वाला अनाज खाते रहे, तक हमने बीमारियों के शिकार होते रहे।

PDF Compressor Free Version

प्रश्न – आप जिन स्थानीय किस्मों का धान बोते थे, उनके बारे में कुछ बतलाएंगे ?

उत्तर – मेरे पिताजी हर समय अनेक किस्में पैदा करते रहते थे । संकरित बीज आने तक सारे गांव में यही प्रथा थी। हम ६०-७० दिनों में पकने वाली किस्में बोते थे । अधिक पैदावार देने वाली अलग किस्में थीं । स्त्रियों के खाने के लिए भी कुछ विशिष्ट किस्में थीं। कुछ किस्मों में विशिष्ट बीमारियों की रोकथाम करने की ताकत भी पाई जाती थी ।

प्रश्न – रासायनिक उर्वरकों पर आधारित खेती करने का अभ्यास होने के पश्चात् सेन्द्रिय खाद पर आधारित खेती करने में आपको क्या कोई खास दिक्कतें आईं ?

उत्तर – सबसे बडी दिक्कत तो यही थी कि किसीको भी विश्वास नहीं होता था कि यह संभव है अथवा उचित है । सिर्फ मेरे पिताजी को विश्वास था । सरकारी अधिकारियों सहित मेरे भाइयों ने भी मुझे खतरे की चेतावनी दी । आर्थिक दृष्टि से मैं नष्ट हो जाऊंगा, ऐसा उन्होंने कहा । लेकिन मेरी अपनी मान्यता अलग थी । जैसे ही मैंने उर्वरक खरीदना बंद किया उन पर खर्च होने वाली रकम बच गई । मुझे दिक्कत आई फिर से स्थानीय किस्म के बीजों को प्राप्त करने में । सिर्फ १० वर्ष की अल्प अवधि में सदियों से चली आने वाली स्थानीय किस्में लुप्त हो चुकी थीं । बमुश्किल कुछ सुधरी स्थानीय किस्में मैं प्राप्त कर सका । खाद की दृष्टि से मैं भाग्यशाली था, क्योंकि मेरे पिताजी ने अभी तक जानवर पाल रखे थे । अन्य किसान उर्वरक उपयोग करने लगे तब से खर-पतवार, पत्ते डंठल आदि बहुत सारी सामग्री काम में नहीं लेता था ; इन्हें काम में लेना खर्चीला, मेहनतपूर्ण तथा गंदा काम माना जाने लगा था । उर्वरक लाने और बिखेरने का काम पढे-लिखे लडके भी कर सकते थे । कंपोस्ट बनाने में उनकी रुचि नहीं रही थी । अतः मुझे कच्ची सामग्री आसानी से मिल गई ।

प्रश्न – जैसा कि आपको चेतावनी दी गई थी, क्या आपकी उपज में कमी नहीं आई ?

PDF Compressor Free Version

उत्तर – प्रारंभ के दो वर्षों में उपज कम आई। कारण यह था कि मिट्टी की स्वयं पोषण प्राप्त करने की शक्ति कम हो गई थी। वह बीमार थी। जैसे ही कंपोस्ट आदि के उपयोग से मिट्टी में केंचुए आदि उपयोगी कीडे बढने लगे, उससे मिट्टी अपना स्वयं का पोषण प्राप्त करने लगी तो स्वस्थ पौधे पैदा होने लगे और उपज फिर से बढ गई। लेकिन यह ध्यान में रखने की बात है कि उपज बढने की बात भ्रामक है, क्योंकि दरअसल उर्वरकों, कीटनाशकों आदि पर होने वाला खर्च पूरा का पूरा बच गया था। मेरा खुद का बीज मैं रख लेता हूं, अतः बुनियादी जरूरतों के लिए बाहरी स्रोतों पर मेरी निर्भरता कम हो गई।

प्रश्न – फिर भी पैदावार की दृष्टि से पहले की तुलना में क्या अनुभव रहा ?

उत्तर – आई. आर. ८ तथा आई. आर. २२ जाति के धान से मैं १२ से १५ क्विंटल प्रति एकड सामान्यतः पैदावार लेता था। लेकिन २० क्विंटल प्रति एकड कभी नहीं मिल पाया, जैसा कि विशेषज्ञों ने आश्वासन दिया था। सिर्फ एक साल १६ क्विंटल की उपज मिली। लेकिन खराब वर्षों में ५-७ क्विंटल ही मिल पाता था।

सेन्द्रिय खेती से प्रथम वर्ष में १० क्विंटल प्रति एकड उपज मिली। दूसरे वर्ष १२ क्विंटल और अभी पांचवें साल में हमारा उत्पन्न २० क्विंटल के करीब आया है। ध्यान में रखना चाहिए कि पहले वर्ष मौसम बहुत खराब था और अनेक बीमारियां भी फसल पर आई थीं, तब भी हमारी उपज १० क्विंटल से कम नहीं हुई। अभी तो बीमारियां नाम-मात्र की रही हैं। पौधे अधिक स्वस्थ दीखते हैं तथा मौसम की प्रतिकूलताओं का सामना कर सकते हैं। पानी की आवश्यकता बहुत कम हुई है। वास्तव में गत वर्ष मुझे पडोसी से पानी लेने की जरूरत ही नहीं हुई।

प्रश्न – यह वास्तव में एक महत्वपूर्ण जानकारी है। लेकिन क्या आप यह बतलाएंगे कि आपने इतनी उपज लेने के लिए कौन-कौनसी प्रक्रियाएं कीं ?

उत्तर – पहले तो जमीन में भरपूर पानी देकर ऊपर खाद छिडक दी जाती है। खाद को बहुत कम मिलाते हैं। बीजों को अच्छे अंकुरण

PDF Compressor Free Version

के लिए पहले से गो-मूत्र में भिगोकर तैयार रखा जाता है। बीज सारे खेत में छिडक दिए जाते हैं। परंतु पानी के बहाव की दिशा में बीज एकत्र हो जाते थे, अत: हमने रोप लगाने का सोचा। लेकिन उसके लिए मजदूरी बहुत लगती थी। अत: अगले वर्ष पत्तियों तथा पुआल आदि को काटकर खाद तथा बीज के ऊपर फैला दिया। चिडियां बीज चुग जाती हैं, अत: बीजों को मिट्टी में मिला कर छिडका जाता है। प्रारंभ के तीन वर्षों में खेत में कीचड बनाने की जरूरत रही, लेकिन अब नहीं।

प्रश्न – कृपया यह बतलाइये कि स्थानीय बीज मिलना मुश्किल था तो फिर आपने यह समस्या कैसे हल की ?

उत्तर – आपने ठीक पूछा। आजकल सभी किसान स्थानीय बीजों के स्थान पर संकरित बीज लाते जा रहे हैं, अत: स्थानीय बीज मिलना दुष्कर होता जा रहा है। वास्तव में तो संकरित बीज अधिक पैदावार देने के बजाय अधिक खाद खाने वाले बीज होते हैं। मैंने स्थानीय बीज प्राप्त करने की एक तरकीब सोची। जो भी थोडे से बीज मुझे मिलते, मैं उनको जनवरी में बो देता था। पौधे एक माह के होने पर उन्हें उखाड कर अनेक भागों में विभक्त कर लेता था। यह जरूर ध्यान रखता था कि हर एक भाग के नीचे एक जड जरूर रहे। ऊपर का कुछ हिस्सा तोड कर इन रोपों को फिर से खेत में लगा देता था। पौधे बढने पर इसी तरह दुबारा करता था, जिससे मुझे आवश्यक रोप मिल जाते।

प्रश्न – कम बीज में काम चलाने की यह तरकीब आश्चर्यजनक है। आपके पौधों पर कुछ बीमारियां तो जरूर आई होंगी। चूंकि आप औषधियों के प्रयोग के विरुद्ध हैं, आपने क्या उपाय किये यह जानना बहुत उपयोगी होगा।

उत्तर – जैसा कि मैंने पहले ही आपको बतलाया है, बीमारी होने पर भी मुझे १० क्विंटल प्रति एकड की उपज मिली है। मेरे पिताजी की तरह मेरी भी यह मान्यता रही है कि कीडे स्वस्थ पौधों को ज्यादा नुकसान नहीं पहुंचा सकते; कमजोर पौधों को ही नष्ट

PDF Compressor Free Version

करते हैं। स्थानीय किस्म के बीज में रोगों का प्रतिकार करने की शक्ति काफी है। फिर भी मैंने नीमखल्ली, नीम-पत्ती का उपयोग किया तथा मेथी की फसल साथ में बोई। इससे कीडे कम आये। एक बार दीमक का आक्रमण हुआ तो मैंने साबुन-मिर्ची तथा पानी का मिश्रण छिडक कर फसल का बचा लिया। चींटियां तथा दीमक भी मिर्ची व साबुन से बचती हैं यह देखकर मुझे आश्चर्य लगा।

प्रश्न – खरपतवार या घास के बारे में आपका अनुभव ?

उत्तर – मैंने तो कभी घास से होने वाले नुकसान की परवाह नहीं की, क्योंकि वह नगण्य-सा होता है। जब उर्वरकों का इस्तेमाल करना था तब फसल के साथ घास भी तेजी से बढती थी, मानों उनको भी खाद दी गई हो। अभी सेन्द्रिय खेती में स्थिति बदल गई हैं। हो सकता है यह जुताई की पद्धति में बदल का परिणाम हो। खेत में पानी भरकर जब कीचड बनाया जाता है तो घास के बीज सड जाते हैं। इसके खेत की उर्वरा शक्ति बढती ही है। यूं भी सावधानी के साथ बीज में से घास के बीज अलग कर लेता हूं। देशी बीज घास की तुलना में ज्यादा तेजी से बढ जाते हैं। कमजोर या खराब बीज कभी नहीं बोता। धान के बीजों की पानी में डालने से खराब बोज तैरकर ऊपर आ जाते हैं कभी-कभी हम पुरानी फसल काटने से पहले ही नया बीज बो देते हैं। इससे नई फसल घास की तुलना में जल्दी बढ जाती है। कभी-कभी फसल काटने के बाद पूरे खेत को पुआल से ढक देते हैं कि जिससे घास नहीं बढती।

प्रश्न – सेन्द्रिय खेती के बारे में अन्य कोई अनुभव हो तो बतलाइये।

उत्तर – हां, एक खास बात यह है कि गहरी जड वाले स्थानीय वृक्ष जिनका फैलाव ज्यादा न होता हो, उन्हें मेंड पर चारों ओर पर लगाना चाहिए। कारण यह है कि ऐसे पौधे नीचे का पानी लेने हेतु जडें गहरी ले जाते हैं, इससे मिट्टी को हवा मिलती है। कम फैलाव होने से ऐसे वृक्ष फसलों का नुकसान भी नहीं करते।

प्रश्न – क्या आपने कभी आधुनिक खेती-उपकरण, जैसे ट्रेक्टर, बिजली से चलनेवाले थ्रेशर आदि का उपयोग किया है ?

PDF Compressor Free Version

उत्तर – मैंने खुद तो ट्रेक्टर का कभी उपयोग नहीं किया, लेकिन मेरे पडोसी ने किया है। मैं हमेशा भैंसों का उपयोग पसंद करता रहा हूं। भैंस का वजन करीब १००० किलो प्रतिजोडी होता है, मैं मानता हूँ कि उनके खुरों की बनावट के आधार पर धान की खेती के लिए यह ठीक वजन है। इनके खुरों से जमीन में एक छोटा गड्ढा-सा बन जाता है, जिसमें पानी रुकता है। इससे आसपास की मिट्टी भीगकर नरम हो जाती है। एक भैंस प्रतिवर्ष ३००० से ५००० किलो तक गोबर देती है तथा उसका पेशाब भी खेती की उत्पादकता बढाने में सहायक होता है। ट्रेक्टर से यह सब कुछ नहीं मिलता तथा उसका भारी वजन जमीन को इतना दबा देता है कि जिससे ऊपर की सतह का पानी नीचे चला जाता है तथा सतह कडक बन जाती है। इससे बार-बार सिंचाई की आवश्यकता पडती है। ट्रेक्टर की जुताई बहुत गहरी होती है। इससे खेत में नीचे की ओर के नाजुक सेन्द्रीय तत्त्व ऊपर आ जाते हैं तथा अधिकांश में धूप से नष्ट हो जाते हैं अथवा पानी के साथ बह जाते हैं। इसके सिवाय ट्रेक्टर न तो दूध देता है और न बच्चे। कुछ वर्षों में नया ट्रेक्टर ही खरीदना पडता है, जो कि एक बहुत खर्चीला काम है। हां, मैंने बिजली से चलनेवाले थ्रेशर का इस्तेमाल अवश्य किया है। जब तक मैं प्रतिवर्ष बाजार से संकरित बीज खरीदता था तब तक तो यह ठीक रहा। लेकिन जब से स्थानीय बीजों का चुनाव अपनी फसल में से ही करने लगा तब से थ्रेशर अनुपयोगी दीखा, क्योंकि इससे निकले बीज की अंकुरण-क्षमता चोट लगने से कम हो जाती है। मैं तो अभी पांव से चलनेवाला थ्रेशर काम में लेता हूं। इससे बीज सुरक्षित रहते हैं तथा उनकी अंकुरण क्षमता कम नहीं होती।

प्रश्न – अब तो आपने सेन्द्रिय खेती ही करने का तय कर लिया है, तो आपके भाइयों तथा पडोसियों की क्या प्रतिक्रिया है?

उत्तर – कुछ लोग तो मेरी बात मानने को तैयार हुए हैं। दूसरे लोग अभी शंका की दृष्टि से देख रहे हैं। विशेषज्ञ लोग ज्यादा से ज्यादा उपज का आश्वासन देते रहते हैं और ये लोग उसके जाल में फंस जाते हैं। सेन्द्रिय खेती में एक मुख्य बात यह है कि आपको अधिक समय खेत पर बिताना चाहिए। पौधे, घास, पक्षी, कीडे आदि आपको संदेश देते रहते हैं। आपको उनको ध्यान से सुनना और अमल करना

PDF Compressor Free Version

चाहिए। अर्थात् प्रकृति और उसकी आश्चर्यजनक प्रणालियों का अध्ययन करना चाहिये। इससे जीवित संसार एवं प्रकृति के प्रति आप आदर करना सीखेंगे। कुल मिलाकर यह संतोषप्रद जीवन-पद्धति बन जाती है।

[अंग्रेजी से अनुवाद : कनकमल गांधी]

* *

कीटनाशक और कीट : मर्ज बढता गया

१९४० से १९८० के बीच अमरीका में कीटनाशक दवाओं का उपयोग दसगुना बढा। नतीजा यह हुआ कि कीटकों से होनेवाला नुकसान ७ प्रतिशत से बढकर १३ प्रतिशत हो गया। अन्य अनेक उपायों के साथ ४,५०,००० मेट्रिक टन कीटनाशकों का उपयोग करने के बावजूद, कीट-पतंगे और खरपतवार से संभावित उत्पादन का एक-तिहाई आज भी नष्ट हो जाता है। इसका एक कारण है, खेती की पद्धतियों में होनेवाला फर्क तथा उच्च उत्पादन की लालसा। कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से वायुमण्डल तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य को खतरा बढता जा रहा है। अमरीका में प्रतिवर्ष ४५,००० आदमियों को कीटनाशकों से विष-बाधा होती है।

मक्का और गेहूं जैसी कुछ फसलों के लिये तो रासायनिक कीटनाशकों की तुलना में जैविक प्रतिबंधक तथा परंपरागत उपाय अधिक उपयोगी सिद्ध हुए हैं। कीटनाशकों की तुलना में इन उपायों से फसलों के नुकसान में मक्का में १ प्रतिशत तथा गेहूं में सिर्फ २ प्रतिशत की वृद्धि होती है, जबकि फायदे अनेक हैं।

जुताई और बखरन से घास-पात के ९९ प्रतिशत बीज तथा कीडों-मकोडों के ९८ प्रतिशत अंडे आदि नष्ट हो जाते हैं। विविध प्रकार की फसलें लेने से कीडों की रोकथाम करने में काफी मदद मिलती है। कुछ बीमारियां तो फसल बदलने से भी नष्ट की जा सकती हैं।

टेविड पिमेन्टेल

कालेज आफ एग्रीकल्चर एण्ड लाइफ साइन्सेस,
कारनेल यूनिवर्सिटी, इथाका, न्यूयार्क

PDF Compressor Free Version

प्राकृतिक बनाम कृत्रिम खाद

शत्रुघ्नप्रसाद

[रासायनिक खाद के स्थान पर प्राकृतिक खाद का प्रयोग कर हजारीबाग (बिहार) के श्री. शत्रुघ्नप्रसादजी ने यह सिद्ध कर दिया है कि इससे न केवल उत्पादन में वृद्धि होती है, बल्कि जमीन की उपजाऊ शक्ति भी समाप्त नहीं होती। श्री. स्वामीनाथन तिवारी ने उनसे साक्षात्कार कर कई महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर संकलित किये हैं।]

प्रश्न – पुरानी प्रणाली से कृषि करने के बावजूद भी आपकी कृषि इतनी सफल क्यों हो रही है ?

उत्तर – पुरानी प्रणाली से कृषि करने के बावजूद भी आज के वैज्ञानिक ढंग से कृषि करने में जो उपज हो सकती है, उससे आर्थिक एवं वैज्ञानिक रूप से अधिक उपज ले रहा हूं और यह प्रणाली भारत जैसे देश के लिये बहुत ही उपयोगी है।

प्रश्न – पुरानी प्रणाली से कृषि करने के बावजूद भी आज के आधुनिक तरीके से हो रही कृषि की तुलना में अधिक उपज कैसे लेते हैं ?

उत्तर – चूंकि मैं एक साल में कम से कम तीन और ज्यादा से ज्यादा छह फसल एक ही जमीन पर लेता हूं, जो कि आज के आधुनिक वैज्ञानिकों को असम्भव प्रतीत होता है।

मैं जैविक खाद को व्यवहार में लाता हूं और इसका व्यवहार करने का मेरा अपना तरीका है। आधुनिक खेती करने वाले कृत्रिम खाद का व्यवहार करते हैं। अपने तरीके से खाद व्यवहार करने से कृत्रिम खाद व्यवहार करने की अपेक्षा समय की अधिक बचत होती है और उतने समय में एक-दो फसल ले लेता हूं।

प्रश्न – आपको पर्याप्त रूप से वहीं जैविक खाद मिल जाता है ?

उत्तर – सिर्फ पर्याप्त रूप में ही नहीं, वरन् मुझे अपनी जरूरत से भी बहुत ही ज्यादा प्राप्त हो जाता है, जिसकी मैं अपने तरीकों से कम्पोस्ट में तैयार कर बाहर अपने देहात के खेतों में भेजता हूं।

PDF Compressor Free Version

प्रश्न – आपको पर्याप्त रूप में जैविक खाद कैसे प्राप्त होता है ?

उत्तर – मैं मानव के मलमूत्र, नालियों से बहने वाला पानी एवं गो-मलमूत्र का व्यवहार करता हूं और उसीसे कम्पोस्ट खाद तैयार करता हूं ।

प्रश्न – आपके हजारीबाग का फार्म कितना बडा है ?

उत्तर – हमारा हजारीबाग का फार्म करीब १२ एकड का है ।

प्रश्न – आपको १२ एकड जमीन के लिए कितने नाइट्रोजन, फास्फेट, पोटाश और अन्य तत्वों की जरूरत है ?

उत्तर – मेरे हजारीबाग फार्म के लिए करीब-करीब ३ क्विण्टल नाइट्रोजन और ३ क्विण्टल फास्फेट, पोटाश एवं अन्य तत्व चाहिए ।

प्रश्न – कितने मानव-मलमूत्र और गो-मलमूत्र से आपके फार्म के लिये आवश्यक जैविक को पूर्ति हो जाती है ?

उत्तर – १० मनुष्य के मलमूत्र और ३ मवेशी के मलमूत्र से हमारे फार्म को पर्याप्त मात्रा में जैविक खाद मिल सकता है । लेकिन मुझे करीब २० मनुष्य का मलमूत्र तथा २० मवेशी का गोबर एवं मूत्र तथा नाली का पानी मिल जाता है, जिससे मेरी आवश्यकता से अधिक होने पर मवेशी के मलमूत्र एवं मानव-मलमूत्र तथा रिफूल से कम्पोस्ट तैयार करता हूं, जिससे अपने फार्म के अतिरिक्त और ६० एकड खेत को पर्याप्त रूप से खाद प्रदान करता हूं ।

प्रश्न – क्या आपकी कृषि की प्रणाली भारतवर्ष के अन्य कृषक अपना सकते हैं ?

उत्तर – भारत का प्रत्येक कृषक इस प्रणाली को अपना सकता है और इस प्रणाली से भारत की कृषि में बहुत बडी उन्नति हो सकती है । अगर हमारी प्रणाली से कृषि की जाये तो सिर्फ ४ करोड मवेशी के मलमूत्र और ४ करोड मानव के मलमूत्र से ही भारत की खाद्य समस्या का हल हो सकता है । जब कि भारत की पशु संख्या करीब २५ करोड है, अगर और भी उचित ढंग से किया जाये तो भारत के पशु एवं जनसंख्या से उपलब्ध जैविक खाद खेती योग्य जमीन से दुनिया की आधीजनसंख्य को आहार दिया जा सकता है ।

PDF Compressor Free Version

प्रश्न – क्या आपके विचार से जैविक खाद, कृत्रिम खाद से अधिक उपयोगी है ?

उत्तर – सिर्फ मेरा विचार नहीं, बल्कि संसार के बडे-बडे कृषि-विशेषज्ञ एवं वैज्ञानिकों के विचारों ने यह सिद्ध कर दिया है कि जैविक खाद कृत्रिम खाद से बहुत ही अधिक उपयोगी है। वैज्ञानिकों ने इस विषय पर अपना-अपना तर्क दिया है और आज संसार के जितने अग्रगण्य कृषिप्रधान देश हैं वे जैविक खाद के प्रयोग पर ही जोर दे रहे हैं।

प्रश्न – क्या कृत्रिम खाद और जैविक खाद के हानि-लाभ को स्पष्ट कर सकते हैं ?

उत्तर – कृत्रिम खाद से बहुत-सी हानियां हैं, जब कि लोगों को नजर में इससे एक ही लाभ है। लाभ सिर्फ यह है कि कृत्रिम खाद उपज को तुरन्त बल देती है, किन्तु उस उपज की हानि लोगों को साक्षर नजर नहीं होती है।

तत्काल उपज तो हो जाती है, परन्तु उस उपज का बाजार-मूल्य कम होता है और उस जमीन की उपज दूसरे साल कम हो जाती है। इसके साथ ही कृत्रिम खाद देने के लिये विशेष जानकार व्यक्ति की आवश्यकता होती है। उस जमीन से अधिक उपज लेने के लिए अधिकाधिक कृत्रिम खाद देना पडता है। परिणाम यह होता है कि खेत की फसलों में बीमारी लग जाती है। इन सब बुराइयों को हटाने के लिये जैविक खाद के इस्तेमाल का सुझाव दिया जाता है।

जैविक खाद के व्यवहार से इन कुचक्रों से परे रहते हैं। इसकी उपज स्वादिष्ट होती है। इसकी उपज को बहुत दिन तक रखा जा सकता है। इस उपज का बाजार-मूल्य अधिक होता है। फसल में बीमारी लगने की संभावना नहीं होती है, जमीन की उर्वरा शक्ति बढती है तथा विशेषज्ञ की जरूरत नहीं पडती और सबसे जबरर्दस्त लाभ यह है कि जैविक खाद से एक पौधे को जितने भी तत्वों की जरूरत है, करीब-करीब सभी मिलते हैं।

और इनके सामने कृत्रिम खाद में दिक्कत यह है कि पौधे को आवश्यकतानुसार तत्व नहीं मिल सकते और अगर तत्त्व मिले तो भारत में उनकी कीमत इतनी अधिक होगी कि भारत की कृषि आर्थिक

PDF Compressor Free Version

दृष्टि से लाभकर नहीं होगी। एक पौधे के लिये १६ तत्वों की जरूरत है, जिन्हें कृत्रिम खाद के रूप में बहुत कम ही लोग दे सकते हैं। कृत्रिम खाद के व्यवहार से भी जो बीमारी होती है उसके निवारण के लिये कीटाणुनाशक दवाइयों का इस्तेमाल करना पडता है।

प्रश्न – तो क्या आप अपने फार्म में कीटाणुनाशक दवाइयों का इस्तेमाल नहीं करते?

उत्तर – हमारे खेतों में जहां सरकारी अफसरों ने राष्ट्रीय प्रदर्शन किया उसमें मुझे दवाइयों का इस्तेमाल करना पडा, वरन् आज तक मैंने अपने खेतों में दवाइयों इस्तेमाल नहीं किया है। इसका इस्तेमाल करने की एक वजह और भी है कि उसे इस्तेमाल करने में नाइट्रोजन, बैक्टिरिया का नाश हो जाता है, जिससे जमीन की बडी क्षति होती है।

प्रश्न – यदि आपके विचार से जैविक खाद के द्वारा ही भारतीय कृषि को अत्यधिक उपजाऊ बनाया जा सकता है तो भारत में उत्पन्न कृत्रिम उर्वरक कारखानों का क्या उपयोग होगा?

उत्तर – सबसे उचित उपयोग तो यह होगा कि इन उर्वरकों को भारत निर्यात कर विदेशी मुद्रा प्राप्त कर सकता है, और इसके अलावा वैज्ञानिकों को विशेष अनुसंधान करने का अवसर प्राप्त होगा?

प्रश्न – क्या आपकी कृषि-प्रणाली की भारत सरकार को जानकारी नहीं है?

उत्तर – जब से मैंने स्वयं कृषि करना आरंभ किया तब से ही अपनी कृषि-प्रणाली की जानकारी बिहार प्रान्तीय एवं केन्द्रीय सरकार के विभिन्न विभागों को देता रहा हूं। उनके विशेषज्ञ भी आये। हमारी खेती को देखकर सन्तोष भी प्रगट किया। हमारी कृषि-प्रणाली का अनुकरण करने का वादा भी किया, प्रत्यक्ष रूप से मुझे कुछ भी पता नहीं है कि भारत सरकार हमारी कृषि-प्रणाली के विषय में क्या सोच रही है। परन्तु इतना तो मैं स्पष्ट ही कर देना चाहती हूं कि हमारी प्रणाली का यदि उचित रूप से कार्यान्वयन किया जाये तो भारत में व्याप्त भुखभरी को पांच वर्षों के अन्दर समाप्त किया जा सकता है। बेकारी की समस्या को हल करने के लिये एक सुदृढ आधार मिल सकता है और चार-पांच वर्षीय योजनाओं का खर्च भी बच सकता है।

['युगवार्ता' से साभार] **भेंटकर्ता : स्वामीनाथन तिवारी**

PDF Compressor Free Version

उर्वरक और भूमि की उर्वरता

रवि शर्मा

क्या हरित क्रांति सोने का अंडा देने वाली मुर्गी को मार रही है ? दूसरे शब्दों में, क्या वह जहां पर उन्नत जाति के बीज बोये जाते हैं, उस भूमि को ही कमजोर तो नहीं बना रही है ? रासायनिक खाद और उन्नत बीज के द्वारा की जा रही सघन खेती अनेकों के पेट पालने में सहायक हुई है। लेकिन अब निराशा के साथ कृषि-वैज्ञानिकों की समझ में आ रहा है कि वह भूमि को कमजोर बना रही है, जिसका परिणाम अंततः उपज की दिनों-दिन कमी होने में ही होगा।

हरित क्रांति वाले पंजाब के लुधियाना जिले में कई फसलों की अधिक से अधिक उपज होती है। लेकिन साथ में वहां पौधों के लिए जरूरी सूक्ष्म पौष्टिक तत्वों की सर्वाधिक कमी नजर आ रही है।

नाइट्रोजन, पोटाशियम, फास्फोरस जैसे प्रमुख उर्वरकों के अतिरिक्त, पंजाब में कई कृषकों ने घटती फसलों और जमीन में जिंक की कमी की वजह से खाद में जिंक का उपयोग भी शुरू कर दिया है। सूक्ष्म पौष्टिकों के निर्माता प्रमुख भारतीय कंपनियों की बिक्री १९७५ में एक करोड रु. थी, जो १९८२ में ६ करोड तक बढ गई। और वर्ष ८३ में वह १० करोड रु. तक पहुंचने की संभावना है। अभी कृषि की कुल एक प्रतिशत भूमि पर सूक्ष्म पौष्टिकों का उपयोग होता है। लेकिन वह क्षेत्र बढते जाने वाला है। पुणे और बंगलौर के आस-पास सूक्ष्म पौष्टिक तत्व निर्माण करने वाले कई छोटे-छोटे कारखाने खुल गये हैं।

पौधों के संतुलित विकास के लिए १६ तत्व आवश्यक होते हैं, जबकि इनमें से एन. पी. के. सहित ९ तत्वों की, जिन्हें स्थूल पौष्टिक कहा जाता है, अधिक मात्रा में आवश्यकता रहती है। बचे हुए ७ तत्वों की आवश्यकता अल्प मात्रा में रहती है, और इन्हें सूक्ष्म पौष्टिक कहा जाता है। इनका वजन पौधे के वजन का केवल एक प्रतिशत

PDF Compressor Free Version

होता है। अध्ययन से यह सिद्ध हुआ है कि इन सूक्ष्म पौष्टिकों की कमी का पौधों की उपज पर विपरीत परिणाम हो सकता है। अद्यतन शोध-कार्य बतलाते हैं कि उन्नत उपज वाले पौधों पर इनका परिणाम अधिक होता है।

चावल-गेहूं की अनुवर्तित फसल एक हेक्टर में ८.८ टन पैदा होती है। उससे भूमि में ६६३ कि. ग्राम नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाशियम निकल जाने के अतिरिक्त आवश्यक सूक्ष्म पौष्टिकों में भी कमी आ जाती है। उससे भूमि में संचित पौष्टिकता कम हो जाती है। कृषक की तो बार-बार एन. पी. के. डालने की प्रवृत्ति रहती है। अधिकतर किसान तो केवल एन. ही डालते हैं, क्योंकि दूसरे उर्वरक उनकी आर्थिक पहुंच के बाहर रहते हैं।

वरिष्ठ कृषि-वैज्ञानिक डा. जे. एस. कंवर ने नई दिल्ली की पिछली अंतर्राष्ट्रीय भूमि विज्ञान कांग्रेस में अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था कि "यह आश्चर्य की बात नहीं है कि सघन फसल लिये जा रहे क्षेत्र में सूक्ष्म पौष्टिकों का गहरा अभाव हो रहा है।"

दूसरे शब्दों में इसका अर्थ हुआ भारतीय कृषक जितना अधिक स्थूल-पौष्टिकों का उपयोग करेंगे, उतना ही सूक्ष्म पौष्टिकों का क्षय होता जाएगा। १९७५-७६ में रांची कृषि कालेज फार्म पर किये गये अध्ययन ने बताया कि एक हेक्टर में ५० : २५ : २५ के अनुपात में डाले १०० कि. ग्राम एन. पी. के. से एक हेक्टर भूमि में ६२९ ग्राम जिंक, ४३३ ग्राम तांबा, ४१८० ग्राम लौह, ४१८५ ग्राम मैंगनीज का क्षय हुआ। सूक्ष्म पौष्टिक का क्षय स्थूल पौष्टिक के सीधे अनुपात में होता है।

"आगामी वर्षों में जिंक के क्षय में और वृद्धि होगी और दूसरे सूक्ष्म पौष्टिकों की भी कमी की समस्या खडी होगी, यदि निम्नस्तर की भूमि का इसी स्तर पर उत्पादन करने के लिए अधिक उर्वरकों द्वारा दोहन किया जाये"– भविष्य की बात करते हुए इंडियन कौंसिल आफ एग्रीकल्चरल रिसर्च (आय. सी. ए. आर.) के डेप्युटी डायरेक्टर जनरल डा. एन. एस. रंधावा ने कहा था। आय. सी. ए. आर. की

PDF Compressor Free Version

रिपोर्ट कहती है कि जहां जिंक की कमी रोकी गई वहां लौह की और दूसरी कमियां उभरने लगीं।

भारत की भूमि में जिंक के अतिरिक्त तीन सूक्ष्म पौष्टिकों की कमी पायी जाती है। भूमि के ११ प्रतिशत में लौह, ५ प्रतिशत में मैंगनीज और एक प्रतिशत में तांबे की प्रायः कमी रहती है।

पौधों की बढत और विकास में इन सूक्ष्म पौष्टिकों में से हरेक का एक निश्चित और विशिष्ट कार्य रहता है। जिंक का कार्य है – नाइट्रोजन और फास्फोरस का पौधों में घुलना। वैसे तांबे का काम है विटामिन ए को बढाने में मदद पहुंचाना। लौह क्लोरोफिल के संश्लेषण और संपोषण के लिए भी आवश्यक है और मैंगनीज पौधे की श्वसन क्रिया से संबंधित है।

मिट्टी में सूक्ष्म पौष्टिकों की कमी सन् १९६६ में परिलक्षित हुई, जब कई जगह उन्नत उपज देने वाली फसल की किस्मों में सामान्य वृद्धि नहीं देखी गयी। आई. सी. ए. आर. के वैज्ञानिकों ने पाया कि उन सभी जगह मिट्टी में जिंक कम मात्रा में था। उन्हीं स्थानों पर जिंक सल्फेट डालने से चावल, गेहूं में प्रति हेक्टर २०० से ३९०० किलोग्राम की वृद्धि हुई।

भारत में जिंक की कमी एक प्रमुख समस्या है। भारत की आधी कृषि भूमि में जिंक की मात्रा धीरे-धीरे कम होती गई है। कमी की जमीन में फिर से जिंक की मात्रा सामान्य करने का मतलब है ३.५ ट्रन जिंक का उपयोग। आज के भाव से उसके लिये कृषकों को १४०० करोड रुपये खर्च करने पडेंगे।

समस्या की गंभीरता को देखकर आई. सी. ए. आर. ने देश में विभिन्न जगह शोधकार्य करने के लिए १९६७ में अखिल भारत सूक्ष्म पौष्टिक समन्वयी प्रकल्प हाथ में लिया।

मिट्टी वैज्ञानिकों ने यह उपाय सुझाया है कि मिट्टी में जिस सूक्ष्म पौष्टिक की कमी है, उसे लगातार मिट्टी में डालते रहें। लेकिन गरीब किसान तो यह कर नहीं सकेंगे। सूक्ष्म पौष्टिक निर्माता कंपनियां देश के गरीब हिस्सों में अपना माल बेचने से कतराती हैं। इसके अलावा जिंक

PDF Compressor Free Version

सल्फेट का छिडकाव बहुत सावधानी से करना पडता है । छिडके हुए जिंक का ८०-९० प्रतिशत इस तरह परिवर्तित हो जाता है कि पौधे उसे खींच नहीं पाते और लगातार डालने से जिंक की मात्रा आवश्यकता से अधिक हो जाएगी । यदि पौधे जिंक की मात्रा आवश्यकता से अधिक खींच लेते हैं तो वह मानव और पशुओं के लिए हानिकारक होगा । डा. कंवर सोचते हैं कि सूक्ष्म पौष्टिकों की कमी को बरदाश्त करने वाली विशेष आनुवंशिक किस्में बोना एक आशाप्रद उपाय हो सकता है ।

समस्या पर दूसरे उपाय हमें फिर से परंपरागत कृषि-पद्धति की ओर खींचते हैं, जैसे – जैविक खाद का अधिक उपयोग और अंतराल रोपण । पंजाब के एक कृषि विश्वविद्यालय द्वारा किये गये प्रयोग के अनुसार मुर्गों की बीट, कूडा-कचरा, सूअर-बाडे के अवशेष से मक्का-गेहूं की आवर्तित फसल में जिंक की आवश्यकता पूरी हो सकती है । उसी प्रकार मटर जैसे फलीदार पौधे या हरित खाद मिट्टी में पौष्टिक तत्वों का पुनर्निर्माण करते हैं । और दूसरा प्रकार है जमीन को लंबे समय तक पानी में डूबी रहने देना । उससे लौह और मैंगनीज की कमी दूर हो जाती है ।

यह दु:खपूर्ण है कि जैविक कूडा-करकट तथा फसल के डंठल का खाद के लिए उपयोग नहीं किया जाता । इस लापरवाही का एक कारण यह है कि रासायनिक खाद के लिए सरकारी अनुदान सरलता से मिल जाता है । और इसी वजह से स्वयं कृषक भी वैज्ञानिकों और सरकारी अधिकारियों के साथ मिलकर जैविक खाद की उपेक्षा करता है ।

दूसरा मुख्य कारण है देहातों में भोजन पकाने के लिए ऊर्जा का अभाव । लोग मिट्टी के तेल जैसे मंहगे ईंधन का उपयोग नहीं कर सकते और जलाऊ लकडी दिनोंदिन दुष्प्राप्य हो रही है । इसी वजह से किसानों को गोबर और कृषि का कूडा-करकट जमीन को लौटाने के बजाय जलाने के लिए मजबूर होना पडता है । केवल पंजाब में ही हर वर्ष चावल के ५० लाख टन पुआल अक्टूबर से दिसम्बर के बीच

PDF Compressor Free Version

जला दिये जाते हैं । इस प्रकार कीमती पौष्टिक तत्व न केवल नदी में गाद बन कर बह जाते हैं, अपितु धुआं बनकर आकाश में उड जाते हैं । यदि फसल के बचे डंठल, कूडा-करकट फिर से मिट्टी में मिला दिये जायें तो सूक्ष्म पौष्टिकों की कमी होने की रफ्तार, पर्याप्त मात्रा में रोकी जा सकती है ।

सूक्ष्म पौष्टिकों की कमी का परिणाम न केवल आने वाली फसल के वजन पर अपितु फसल के दरजे (गुण) पर भी पडता है । "अभी तक फसल बढाने के लिए उर्वरकों को महत्व दिया गया । खाद की ओर फसल के गुणों की दृष्टि से भी देखना चाहिए" – कृषि वैज्ञानिक डा० पी. एन. टक्कर और डा० एन. एस. रंधावा दलील देते हैं ।

सूक्ष्म पौष्टिक मानव और पशु के पोषण की दृष्टि से भी महत्त्व-पूर्ण हैं । जिंक की कमीवाली भूमि से जिंक की कमी वाला अनाज पैदा होगा । चण्डीगढ के पोस्ट ग्रेज्युएट इंस्टीट्यूट आफ मेडिकल सायन्सेस द्वारा किये गये शोधकार्य के अनुसार जिंक की कमी वाला अनाज खाने से मनुष्य की वृद्धि, यौन विकास, जख्मों का भरना, शर्करा संतुलन आदि में हानि पहुंच सकती है । अध्ययन से यह भी पाया गया कि मधुमेह या मधुमेह के फोडे वाले रोगियों में जिंक के तत्व कम पाये जाते हैं । पंजाब में किये गये एक ताजा अध्ययन में देखा गया कि गेहूं, मक्का और चावल के पौष्टिक गुणों में जिंक की वजह से वृद्धि हुई । जिंक की वजह से उनमें ऊर्जातत्व, प्रोटीन और शर्करा तत्व बढे ।

पशुओं को भी हानि पहुँच सकती हैं । हरियाणा तथा पंजाब से प्राप्त चारे के १० लाख नमूनों में २० प्रतिशत जिंक कम पाई गई । इससे पशुओं की पेशकेरटोसिस बीमारी या बाढ में रुकावट तथा हड्डी और जोडों में विकृति आने की संभावना रहती है ।

इसलिए यह आवश्यक है कि जैसे-जैसे रासायनिक खाद का प्रसार बढ रहा है, अन्न में सूक्ष्म पौष्टिकों के प्रति अधिक ध्यान देना होगा । सूक्ष्म पौष्टिकों की कमी उन्नत उपज देने वाली अनाज की किस्मों के प्रति कृषि शोध-कार्य में उलझन पैदा करेगी । अखिल भारत

PDF Compressor Free Version

गेहूं समन्वयी प्रयोगों में पाया गया कि नई किस्में शुरू में प्रति हेक्टर ६.५ टन उपज देती थी, जो अब प्रति हेक्टर ५.५ टन पायी गई। इसी वजह से एक वरिष्ठ कृषि वैज्ञानिक ने व्यंग किया कि "हम उपज घटाने का प्रयोग कर रहे हैं।" इस कम उपज का कारण सूक्ष्म पौष्टिकों की कमी तो नहीं है ?

पब्लिक अकाउण्ट कमेटी के अध्यक्ष श्री. सतीश अग्रवाल के अनुसार भारत में प्रति व्यक्ति प्राप्त अनाज की मात्रा १९६४-६५ में १७५.३ किलोग्राम से घटकर ८२-८३ में १५० किलोग्राम हो गयी है। इकोनामिक एडमिनिस्ट्रेशन रिफार्म कमीशन के अध्यक्ष श्री एल. के. झा ने सावधान किया है कि अगले वर्षों में भारत को अनाज आयात करना पडेगा, क्योंकि भारत में उसका उत्पादन एक सतह पर रुक गया है। हमारे देश का अन्नोत्पादन पिछले ४ वर्षों से १३ करोड टन पर रुका हुआ है। उन्होंने सावधान किया कि "हमारी जनता को खिलाने के लिए यदि हमें विदेशों से अनाज आयात करना पडता है तो हम आर्थिक दिवालियेपन के मार्ग पर हैं। ऐसी स्थिति में सूक्ष्म पौष्टिकों की कमी को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता।"

सेन्टर फार साइन्स एंड एनवायरमेन्ट
८०७, विशाल भवन, ९५ – नेहरू प्लेस, नई दिल्ली

* *

अनेक प्रयोगों से यह सिद्ध किया जा चुका है कि कम्पोस्ट खाद द्वारा उत्पादित पौधों की पत्तियों तथा बीजों को जब पशुओं को खिलाया जाता है तो उनकी रोग-प्रतिकार शक्ति में वृद्धि होती है, बनिस्बत उस समय के, जब कि उन्हें कृत्रिम खादों पर आधारित पत्ते एवं बीज खिलाये जाते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सेन्द्रिय खाद न सिर्फ जमीन का पोत सुधारती है, वह पशु और यहां तक कि मनुष्य-स्वास्थ्य पर भी अनुकूल असर करती है।

– जे. सी. कुमारप्पा

PDF Compressor Free Version

कृषि और प्राकृतिक पुनःपूर्ति

बनवारीलाल चौधरी

प्रकृति में एक अलौकिक नैसर्गिक समग्रता है और परिपूर्णता भी। गंभीरता से यदि विचार करें तो विभिन्न भूतों में एक समवाय भाव अभिन्न देखेगा। इस दर्शन से ओतप्रोत हो गीता के गायक ने गाया है –

"जिससे भिन्न भूतों में एक अव्यय भाव को अविभिन्न हुआ देखें, जान सो ज्ञान सात्विक।"

प्रकृति की एक और विशेषता यह है कि उसकी हर इकाई स्वतंत्र, स्वावलम्बी होते हुए भी उसका दूसरों के साथ एक विशेष प्रकार का आलम्बन है। यह परावलम्बन नहीं है, यह सहजीवन, सहअस्तित्व है। तथाकथित परम्परागत कृषि-पद्धति के इन गुण-धर्मों का अपने लाभ हेतु उपयोग कर प्रकृति का, भूमि का शोषण नहीं, दोहन किया जाता है। परन्तु अब विज्ञान के नाम पर एवं बेतहाशा बढती आबादी के फलस्वरूप खेती की रीति बदली। इसका वर्तमान रूप भविष्य की चिन्ता किये बिना तत्काल जल्दी से जल्दी भूमि से येन-केन प्रकारेण अधिक उपज लेना मात्र बन गया है।

प्रकृति सीमा-उल्लंघन नहीं सह सकती

पृथ्वी की विशालता और उससे प्राप्त उत्पादनों को देख मनुष्य ने पृथ्वी की उत्पादन-शक्ति को कभी खत्म न होनेवाली, अपरिमित माना। पृथ्वी की उत्पादन-शक्ति सीमित है। यह द्रौपदी के चीर के समान खत्म न होनेवाला रूप अपने उत्पादक साधनों को पुनर्उपयोग चक्र स्थापित कर धारण करती है। पृथ्वी में होनेवाली जैविक, भौतिक और रासायनिक क्रियायें पृथ्वी के सब जड-चेतन तत्वों की पारस्परिक प्रतिक्रियायें भी हैं। पृथ्वी के, प्रकृति के सब ही साधन सम्पादन परस्पर आदान-प्रदान के विषय जाल में गुंथी हुई है। हवा पानी को

PDF Compressor Free Version

शुद्ध करने में मदद करती है, पानी पौधों को सींचता है और पौधे हवा को पुनः शुद्ध करते हैं. ऐसा ही चक्र कृषि-उपज में भी है। भूमि से वनस्पति को, वनस्पति से पशुओं को और पशुओं और वनस्पति से भूमि को आहार प्राप्त होता है। आवश्यक खाद्य पदार्थ सतत उपलब्ध करते रहने का यह प्रकृति का पुनःपूर्ति चक्र है। इस चक्र को ठीक से समझकर कुछ हद तक मनुष्य इसे अपने पक्ष में तेज गति दे सकता है और उत्पादन बढा सकता है। परंतु इसकी एक सीमा है। उससे अधिक गति देने का अर्थ प्रकृति के नियमों में प्रतिकूल दखल देना है। प्रकृति इसे कुछ समय तक सहन करेगी, फिर एक स्थिति ऐसी आवेगी कि प्रकृति का मनुष्य की हरकतें, उसका हस्तक्षेप असहनीय हो जावेगा और वह मौन परंतु विध्वंसात्मक विद्रोह कर देती है। कोयना में हुआ भूकम्प इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। राजस्थान का मरूस्थल भी मनुष्य की दस्तंदाजी और गलत कृषि-रीति का सबूत है। एक और उदाहरण, निटाया (जिला - होशंगाबाद) में दलहन की बहुत अच्छी उपज होती थी। यह गांव इस फसल के लिये प्रसिद्ध था। ग्राम के पीपल के वृक्ष मधुमौना के छत्तों से लद जाते थे। फिर आया मलेरिया-उन्मूलन कार्यक्रम के अंतर्गत डी० डी० टी० का छिडकाव। साथ ही लोग अपने खेतों में, खासकर चना, तिवडा की फसल पर गेमेक्सीन, डी० डी० टी० आदि डालने लगे। इसका असर मधुमौना पर भी हुआ। वे मरने लगीं और एक-दो वर्षों में उन्होंने छत्ते ही बनाना छोड दिया। लौटी ही नहीं। अब गांव में शहद नहीं मिलता। दलहन की उपज भी कम हुई। लोगों को मालूम ही नहीं कि मधुमौना और दलहन फसल का सहआस्तित्व है। वे एक-दूसरों को सहायक हैं।

प्रकृति श्रेष्ठ किसान है

प्रकृति सबसे बुजुर्ग और चतुर किसान है। उसकी पद्धति का यदि अनुकरण करें तो सतत अच्छी उपज प्राप्त हो सकती है। संक्षेप में, यह है मिश्रखेती, पशु और फसल का साथ-साथ होना। प्रकृति कभी भी पशुहीन खेती करने का प्रयत्न नहीं करती। पशु और फसल एक-दूसरों के पूरक रूप में होते हैं। भूमि की सूर्य, तेज वायु और सीधी

PDF Compressor Free Version

पडने वाली वर्षा की धार से रक्षा, वर्षा के जल का अधिक से अधिक उपयोग करना एवं अतिरिक्त जल का संचय करना, जोकि अधोभूमि में प्रवेश कर झरना और नदी-स्रोत बन जाता है, खाद की पूर्ति में स्वावलम्बन पौधों को, फसल को धातुजनित तत्व भूमि से एवं सेन्द्रिय तत्वों (ह्यूमस- खाद-मिट्टी) से प्राप्त होना, यह सब एक प्रकार से प्रकृति में चलने वाली सृजन और क्षय की क्रियाओं का संतुलन लाभकारी रूप में बनाये रखने की नैसर्गिक व्यवस्था है।

ट्रैक्टर बनाम पशु-शक्ति

प्राकृतिक क्रियाओं की अपनी एक गति होती है। विज्ञान के सहारे मनुष्य ने अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु इसे तेज करने का प्रयत्न किया। वह जल्दी-जल्दी प्राप्ति चाहता है। पशु-शक्ति की गति प्रकृति की लय के अनुकूल है। तदनुरूप वह सुधीर है। मनुष्य ने इसका प्रतिस्थापन यंत्र-शक्ति से किया। बैल और घोडों की जगह ट्रैक्टर आये। यंत्र-शक्ति का उपयोग पशुशक्ति के पूरक रूप में करना लाभप्रद है। ऐसे काम जो पशुशक्ति के लिये बहुत भारी पडते हों यंत्रों से, ट्रैक्टर द्वारा अवश्य किये जाते, परंतु बैलों के बदले ट्रैक्टर लाना गाय को खत्म करना है। अन्ततोगत्वा ये ट्रैक्टर भी चल नहीं पायेंगे। उनके लिए आवश्यक ईंधन की आपूर्ति ही उन्हें खडा कर देगी। यह स्थिति शीघ्र आ रही है। फिर भी खतरा यह दिख रहा है कि स्वयं डूबते-डूबते यह पद्धति भूमि का विध्वंस कर देगी। भूमि-कटाव, भूमि-क्षरण को खतरनाक स्थिति में ला देगी।

भारतीय स्थिति में इस संबंध का एक और विचारणीय प्रश्न है गोधन का। गाय भारतीय कृषि की रीढ है। कृषि-कार्य की शक्ति, गोरस और महत्वपूर्ण खाद और चमडा, हड्डी, खुर और बाल इससे प्राप्त होते हैं। गोशक्ति का उपयोग करने वाले उन्नत कृषि-यंत्रों का स्वागत है, पर ऐसे यंत्र जो बैल की उपेक्षा करते हैं, उनका गोपालन पर प्रतिकूल प्रभाव होगा जो कृषि को भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित करेगा।

PDF Compressor Free Version

कम्पोस्ट की महत्ता

भारत में दो वर्षों तक तथाकथित हरित क्रान्ति का खूब ढिंडोरा पीटा गया। भारत गेहूं के निर्यात का स्वप्न तक देखने लगा था। कृषि-मंत्री ने इसकी खुली घोषणा भी की थी। पर केवल एक वर्ष के प्रतिकूल मौसम ने इस सबको टांय-टांय फिस कर दिया। हरित क्रान्ति का वैशिष्ठ्य है – गेहूं की संकर जातियां, उर्वरकों और सिंचाई का भरपूर उपयोग। अंतिम दो घटक केवल इनेगिने लोगों को, शायद पांच प्रतिशत किसानों को उपलब्ध हैं। स्वाभाविक ही इन दो घटकों की प्राप्ति होने में भी कठिनाइयां उत्पन्न होती रहेंगी। सतत उर्वरक का उपयोग करने से भी औसत उपज क्रमशः कम होती है और इसकी पूर्ति करने के लिये और अधिक मात्रा में उर्वरक जरूरी होगा।

देशव्यापी उपज की औसत बढाने के लिये पूरे देश के हर एक एकड की औसत उपज बढाना जरूरी है। चूंकि देश में छोटे-छोटे रकबा वाले किसान अधिक हैं, इसलिये हर एकड की औसत उपज बढाना कठिन नहीं है। इसका एक सरल और सहज उपलब्ध तरीका किसानों में कम्पोस्ट के उपयोग का इमानदारी से प्रचार करना है। जापान के समान भारत में भी कम्पोस्ट बनाने पर जोर दिया जाय तो देश से गंदगी मिटेगी और हर घर में एक लघु परन्तु पूर्ण खाद उत्पन्न करने-वाली फैक्ट्री हो जावेगी। पूरे देश में इस प्रकार किया खाद का उत्पादन कई सिंदरी कारखानों के बराबर होगा। बिना हर्रा और फिटकरी लगे चोखा रंग देने वाला यह कार्यक्रम है। कम्पोस्ट का अर्थ है वनस्पति और मनुष्य एवं पशुओं द्वारा त्याज्य कूडा-कचरा, मलमूत्र का ऐसा रूप बना देगा कि वह पौधों को उपयोगी हो जाये। पुनर्उपयोग चक्र का यह एक अति व्यवहारी रूप है।

सिंचाई

अनुभव और प्रयोग से यह सिद्ध हुआ है कि सिंचाई की व्यवस्था कर देने से औसत उपज डेढी-दुगुनी हो जाती है। उर्वरक न भी हो और केवल सिंचाई की निश्चित समुचित व्यवस्था हो तो किसान कूडा-

PDF Compressor Free Version

कचरा, गोबर आदि स्थानीय रूप से उपलब्ध होने वाले खादों का सहारा लेकर खेत की औसत उपज कम से कम ४० प्रतिशत अवश्य बढा लेता है। पानी प्रकृति के पुनःपूर्ति चक्र का एक बहुत महत्वपूर्ण अंग है, इसलिये प्राथमिकता इसे उपलब्ध करने की हो, न कि उर्वरक की। पेट्रोलियम (भूतेल) पदार्थों के वर्तमान और भावी भाव और प्राप्ति को देखते हुए पानी-पूर्ति का कार्यक्रम लेना बहुत महत्व का हो गया है। यह आर्थिक दृष्टि से भी देश को लाभकर होगा।

अति वैज्ञानिक कृषि

खेती करने की पद्धतियों में वर्तमान तकनीकी का उपयोग अनिवार्य है। परन्तु इसकी एक सीमा अवश्य मानें। वह सीमा होगी कृषि में प्राकृतिक पुनःपूर्ति की श्रृंखला को अस्तव्यस्त न होने देना। हमने विज्ञान और तकनालाजी का हमारे फायदे के लिये उपयोग किया है। इनका सहारा ले फसल का उपादन अधिक, और भी अधिक बढाया है। इस प्रक्रिया के साथ ही हमने एक खतरनाक अनियंत्रित क्षेत्र में प्रवेश किया है। इस बारे में हमें सतत सतर्क रहना होगा। प्रकृति के जैविक नियमों को मर्यादा रखकर मानव अपना भविष्य निश्चित और समृद्ध बना सकता है। जैसे ही वह इन नियमों का उल्लंघन करता है या इनके प्रति उदासीन होता है वह अपने को अनेक अदृष्ट खतरों में डालता है। इस प्रकार के कई उदाहरणों में से तीन उदाहरण यहां दिये जा रहे हैं–

(१) भूमि के उपरी उपजाऊ थर का अदूरदर्शितापूर्वक की गई गहरी जुताई से ह्रास।

(२) पौध-रक्षा हेतु उपयोग में लिये जाने वाले विभिन्न विषैले रसायनों का परिस्थिति एवं जनसाधारण के स्वास्थ्य पर कुप्रभाव।

(३) कृत्रिम गर्भाधान की दूरगामी जननिक संदिग्धता।

कोई भी इतिहासकार यह बता सकेगा कि इनकी अवहेलना में ही फूली-फली कृषि के विनाश के आसार हैं।

कृषि में प्राकृतिक पुनःपूर्ति बनाये रखने के व्यवहारी सुझाव

(१) नैसर्गिक, सेन्द्रिय खाद के उपयोग को प्रोत्साहन दिया जाय। इस हेतु ग्राम और नगर कम्पोस्ट योजनाओं को ठीक से ईमान-

PDF Compressor Free Version

दारीपूर्वक लागू कर कूडे से कंचन बनाया जाय । गंदगी और गरीबी, दोनों को हटाने में यह सहायक होगा ।

(२) रासायनिक खाद का आयात एवं रासायनिक खाद के कारखानों की स्थापना की अपेक्षा प्राथमिकता हर खेत को पानी पहुंचाने को दी जाय ।

(३) छोटी जोत वाले किसान, जो कि लगभग ८० प्रतिशत से भी अधिक हैं, की जोत में सुधार करने की शोध की जाय । वर्तमान शोधों के फल इन बहुसंख्यक वर्ग को प्राप्त नहीं हो पाते हैं ।

(४) कम पानी और कम खाद, विशेषत: रासायनिक से अधिक उपज प्राप्त करने की युक्तियां खोजी जावें ।

(५) कीट और व्याधियों को रोकथाम की रासायनिक पद्धति को तिलांजलि दें । जैविक और कृषिय पद्धतियों की शोध हो और उन्हें बढावा दिया जाय ।

(६) मिश्र खेती अर्थात् गोपालन और फसल उत्पादन-कार्य एक-दूसरे के परिपूरक रूप में चलें ।

उपुर्यक्त सभी सुझाव प्रकृति के पुन:पूर्ति चक्र के अनुकूल होने से कृषि की उपज साल-दर-साल बढाने में सहायक होंगे । प्राकृतिक संतुलन बनाये रखने के कारण यह स्वास्थ्यवर्धक भी होगा । इससे खेती का भारतीयकरण होगा ।

* *

अगर मेरा बस चले तो उन सभी तथाकथित कला एवं संस्कृति की प्रवृत्तियों को, जिनसे नैतिक जीवन का ह्रास होता है, मैं उन्हें बन्द कर दूंगा । मनुष्य के लिये हानिकारक ऐश-आराम की चीजों तथा आदत डालनेवाले द्रव्यों पर भारी कर लगाकर अंकुश में रखूंगा । देश की सारी कपडे की मिलें, बिजली से चलनेवाली आटाचक्कियां तथा तेलघानियां बंद कर दूंगा । परन्तु हर गांव अपनी आवश्यकता के लिये पर्याप्त अनाज, कपडा, दूध, सब्जी, फल पैदा करें तथा ये सभी को यथेष्ट प्रमाण में उपलब्ध हों, इसका मैं अवश्य प्रबन्ध करूंगा ।

— गांधी

PDF Compressor Free Version

कीटनाशक या सृष्टिनाशक ?

कान्तिभाई शाह

वसंत ऋतु नई सृष्टि की ऋतु है । इस ऋतु में समूची सृष्टि सुन्दर हो उठती है । सारी प्रकृति एक नया रूप धारण कर लेती है । पेडों और पौधों में नई कोपलें फूट निकलती हैं । उन पर नये पत्ते लहलहाने लगते हैं । पक्षी अपने कलकूजन और कलरव से सारे वातावरण को गुंजा देते हैं । बसंत ऋतु इनके संवर्द्धन और प्रजनन की ऋतु होती है ।

किन्तु पिछले दो-तीन दशकों में यूरोप और अमेरिका के देशों में यह देखा गया है कि वहां वसंत ऋतु आती है, और गूंगी रहकर चली जाती है । कहीं न कोयल की कूक सुनाई पडती है, और न पपीहे और बुलबुल की आवाज सुनाई देती है । पक्षी अण्डे देते हैं, पर वे अण्डे निर्जीव होते हैं । लम्बे समय तक इन अण्डों को सेने के बाद भी इनमें से बच्चे नहीं निकलते । पेड-पौधे पहले की तरह हरे-भरे नहीं रह जाते । मीलों की दूरी पार करके दूर-दूर के देशों से आने वाले प्रवासी पक्षी भी अब वहां दिखाई नहीं देते ।

क्या कुदरत रूठ गई है ? क्या किसी दुश्मन ने ऐसी दुर्दशा कर दी है ? क्या किसीने मूठ मारी है ?——नहीं, स्वयं मनुष्य ने ही अपने अविचारपूर्ण व्यवहार से यह स्थिति खडी कर ली है । अमेरिका की एक सुप्रसिद्ध प्राणिशास्त्रज्ञ बहन रैचल कारसन चार-साढे चार वर्षों तक इस परिस्थिति का सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद इसी परिणाम पर पहुंची थीं । अपने इस अध्ययन का सार उन्होंने सन् १९६२ में अपनी एक पुस्तक के माध्यम से दुनिया के सामने रखा था । पुस्तक का अत्यन्त सार्थक नाम था : "**साइलेण्ट स्प्रिंग**" अर्थात् "**गूंगा बसन्त**" कलरव से गूंजती बसंत ऋतु को गूंगी बना देने की यह कारस्तानी मनुष्य ने खुद ही की थी । ठोस तथ्य, आंकडे और उदाहरण दे-देकर उन्होंने प्रगति की पागल दौड में सिर नीचा करके दौड रहे मनुष्य की घातक लापरवाही, लोभ-लालसा और गैर-जिम्मेदारी के बारे में सारी

PDF Compressor Free Version

दुनिया की आंखें खोल दी थीं। खेती-बाडी की फसलों का प्रचुर उत्पादन बढाने के लोभ में आज रासायनिक खाद और कीटनाशक दवाओं का जो बेहिसाब और अंधाधुंध उपयोग शुरू हुआ है, उसके कारण प्रकृति का सारा सन्तुलन गडबडा रहा है, समूची सृष्टि में जहरीले पदार्थों का प्रभाव बढ रहा है, और मनुष्य-जाति के लिए जो एक भारी संकट खडा हो रहा है, उनके बारे में उन्होंने दुनिया को सावधान किया है।

कीटनाशक रसायनों के अमर्याद उपयोग के नानाविध दुष्परिणाम प्रकट होते देखे गये हैं। कहीं हजारों की संख्या में पक्षी मरे हैं। कहीं उनकी अमुक एक जाति पूरी की पूरी नष्ट हो चुकी है। कहीं सैकडों की संख्या में प्राणी तडप-तडपकर मर गए हैं। कहीं फूलों और वनस्पति की विवध सृष्टि ही नष्ट हो चुकी हैं। कहीं नदियों और नालों में मछलियाँ मर गई हैं। फसलों पर इन दवाइयों का छिडकाव करने वाले बहुत से आदमी भी मौत के शिकार हुए हैं।

इन कीटनाशक दवाओं में प्राणघातक रासायनिक विष होते हैं, ये विष जंतुओं और कीडों-मकोडों को नष्ट करने के साथ ही समूची जीव-सृष्टि को और पर्यावरण को भी बडे घातक रूप से प्रभावित करते रहते हैं। जब ये दवाएं फसलों पर छिडकी जाती हैं, तो इनका जहर जमीन के अंदर इकट्ठा होने लगता है। वहां घुलकर वह पानी में पहुंचता है। नदियों, नालों और समुद्रों में पहुंच जाता है। इन सबका पानी दूषित हो जाता है। पानी में रहने वाली मछलियों के पेट में यह जहर पहुंचता है। जिन अनाजों, साग-सब्जियों, फलों आदि पर ये कीटनाशक दवाएं छिडकी जाती हैं, उनमें भी यह जहर न्यूनाधिक मात्रा में बना रहता है। घास और वनस्पति पर छिडकी गई कीटनाशक दवाएं पशुओं के पेट में पहुंचती हैं, और उनके जरिए दूध के रास्ते वे शरीरों में भी प्रवेश करती हैं। इन दवाओं के सीधे संपर्क में आने पर भी मनुष्य के शरीर से इनका जहर कमोबेश पहुंचता रहता है। इस जहर से प्रभावित पशुओं के मांस के माध्यम से भी यह जहर मनुष्य के शरीर में पहुंचता है। इस प्रकार अलग-अलग रीति से ये विषैले तत्व हमारी हड्डियों में, मज्जा-तंतुओं में, लहू में और चरबी में अपना घर

PDF Compressor Free Version

बना लेते हैं। आगे चलकर ये ही जहर बढ-बढ कर शरीर में कई प्रकार के रोगों और दोषों को जन्म देते रहते हैं।

ये जहर मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए बहुत ही हानिकारक हैं। इन रासायनिक जहरों के कारण कैंसर होता है। अब तो इनके कारण बालक भी कैंसर के शिकार बनने लगे हैं। पहले बालकों में कैंसर की बीमारी क्वचित् ही पाई जाती थी। आज हालत यह है कि अमेरिका में जितने बालक कैंसर से मरते हैं, उतने दूसरे किसी भी रोग से नहीं मरते। इन रासायनिक जहरों का प्रभाव गर्भवती स्त्रियों पर भी पडता है और उनके गर्भ में रहने वाले शिशुओं पर भी पडता रहता है। इन जहरों का अनिष्टकारी प्रभाव प्रजनन की और वंशवृद्धि की प्रक्रियाओं पर भी पडता है। आनुवंशिक प्रभाव की स्थिति यह है कि एक-दो पीढी तक इनका प्रभाव चाहे न दिखाई दे, किंतु बाद की पीढियों में इस जहर के दुष्परिणाम प्रकट हो सकते हैं। इस तरह गर्भाधान से लेकर मौत की घडी तक इसके तरह-तरह के विघातक प्रभाव मनुष्य के जीवन पर पडते रहते हैं।

इससे पहले हमारी यह दुनिया इतनी जहरीली कभी नहीं बनी थी। शूमाखर ने इसे "हिंसक तकनीक" कहा है। एक सुप्रसिद्ध जीव-विज्ञानी बहन एलिस जेरार्ड ने एक जगह लिखा है : "अब हम सब 'टेक्नालाजी' के अत्याचारों से भली-भांति परिचित हो चुके हैं। रसायनों का अंधाधुंध और बेहिसाब उपयोग, बहुत बडी मात्रा में बढ रहा विकिरण और प्राकृतिक साधन-संपत्ति की बरबादी, ये सब इसके प्रमाण हैं। इससे पहले इस दुनिया में बालकों ने इतनी दूषित हवा अपने फेफडों में कभी भरी नहीं, ऐसा दूषित पानी उन्होंने कभी पिया नहीं, और ३० हजार रसायनों से दूषित ऐसा आहार उन्होंने कभी लिया नहीं। इससे पहले मानव-शिशु के पेट में अपनी मां के दूध के साथ-साथ 'पीसीबीएस', 'पीबीबीएस', 'मीरेक्स' और 'केपोन्स' के समान विषैले तत्व कभी पहुंचे नहीं।"

पहले जहरीली और खतरनाक चीजों के डिब्बों आदि पर दो हड्डियों की चौकडीवाला या आदमी की खोपडीवाला चित्र चिपका रहता था। लेकिन अब तो ऐसी जहरीली और खतरनाक चीजें खुले-

PDF Compressor Free Version

आम बिकने लगी हैं, और चटकीले-भडकीले विज्ञापनों के द्वारा लोगों को इनका उपयोग करने के लिए ललचाया जाता है। इनके जो अनगिनत खतरे हैं, उनसे बचने के लिए चेतावनी का एक शब्द भी कहीं कहा और लिखा नहीं जाता। कोई बालक खेल ही खेल में ऐसी खतरनाक चीजों के साथ छेड-छाड करे, इनके डिब्बों को खोल ले और अपनी मौत को खुद ही न्योत ले, तो क्या हो? पर आज हमारी मनुष्य-जाति अपनी ऐसी ही निपट नादानी का परिचय दे रही है।

हमारे देश में पिछले दिनों भोपाल में जो कुछ भी हुआ, वह हमारी ऐसी आत्मघातक नादानी का ही परिणाम था। विकास और प्रगति के बहुत ही गलत और भ्रमपूर्ण विचार आज चारों ओर फैल चुके हैं। उनके जाल में फंसकर हम भी पश्चिम के देशों का अंधा अनुकरण करने में लगे हैं। भौतिकवादी विचारधारा ने बाजार की मुनाफाखोरी वाली अर्थव्यवस्था के नागपाश से सारी दुनिया को जकड लिया है। परिणाम यह हुआ है कि आज मनुष्य का स्वास्थ्य 'फार्मास्यूटिकल' उद्योगों की जकड-पकड में उलझ कर रह गया है। पेट्रो-केमिकल उद्योगों का एक भारी षडयंत्र खडा हो चुका है। इस उद्योग ने अपने उत्पादनों की खपत के लिए खेती-किसानी की परंपरागत पद्धतियों को तोड-फोडकर उनकी जगह अधिक-से-अधिक यंत्रीकरण पर आधारित और रासायनिक खादों और कीटनाशक दवाओं पर आधारित तथाकथित आधुनिक खेती का धुंआंधार प्रचार किया है। एक ऐसी मानसिकता ही खडी कर दी गई है कि खेती की जमीन को रासायनिक खादों की अधिक-से-अधिक मात्रा देना जरूरी है और फसलों में होने वाली बीमारियों को खत्म करने के लिए कीटनाशक दवाओं का भरपूर उपयोग करना आवश्यक है।

सन् १९६२ में रैंचल कारसन की उपर्युक्त पुस्तक प्रकाशित होने के बाद पश्चिम के देशों में इस प्रश्न को लेकर कई तरह के संशोधन हुए हैं, और वहां के लोग अब बहुत सावधान हो गये हैं। खेती की इस नई पद्धति का काला पहलू उनके ध्यान में अच्छी तरह आ चुका है। इसके परिणामस्वरूप इसे छोडकर सही दिशा में मुडने की वृत्ति भी उनमें प्रकट होने लगी है। कई जगहों में रासायनिक खादों और

PDF Compressor Free Version

कीटनाशक दवाओं का उपयोग न करके खेती करने के प्रयोग भी शुरू हो चुके हैं। इन सब बातों को ध्यान में रखकर अब वहां दुकानों में दूसरे अनाजों की तुलना में अधिक पौष्टिक और स्वादिष्ट अनाज थोडी अधिक कीमत पर बेचा जाता है। पश्चिम के कई देशों में पिछले दस-बारह वर्षों में अनेक कीटनाशक दवाओं के उपयोग पर रोक भी लगाई है।

किंतु इस विषय में हम लोग बहुत ही बेखबर हैं। हरित क्रांति के नाम पर हमने पश्चिम वालों के अनुकरण में जो अंधी दौड शुरू की थी, हमारी वह दौड आज भी पूरी ताकत के साथ जारी है। जहां लोग नासमझ और लोभी होते हैं वहां उनको ठगने वाले भूखों नहीं मरते। जिन दवाओं पर उनके अपने देश में रोक लगा दी गई है, उन दवाओं को बहुराष्ट्रीय कंपनियां हमारे देश-जैसे देशों में खुलेआम बेच रही हैं, अथवा उन्हें नए नामों और नए लेबलों के साथ बेचती हैं। यूनियन कार्बाइड का ऐसा ही एक कारखाना कनाडा में चल रहा था। पर कनाडा की सरकार ने उसे सन् १९७१ में बंद करवा दिया था। इसके बावजूद हमारे देश में वह बिना किसी रोक-टोक के अपना पंजा फैला सका। 'एल्ड्रीन', 'क्लोरडेन्' 'मिथिल पेरेथियोन', 'लिण्डेन' आदि दवाओं पर यूरोप और अमेरिका में रोक लग चुकी है, फिर भी हमारे देश में इन दवाओं का उपयोग खुले हाथों किया जा रहा है। हाल ही में सिबागायगी की एक कीटनाशक दवा "गेलीक्रोन" के बारे में बहुत बहस चली। उत्पादक कम्पनी यह दावा करती रही कि उसकी दवा में कैन्सर को जन्म देने वाले या ऐसे दूसरे विनाशक तत्व नहीं हैं। यूनो की पर्यावरण-सम्बन्धी संस्था ने उसको चुनौती दी, और उसके सामने अपने संशोधनों के परिणाम रखे। अन्त में यह सिद्ध हुआ कि इस दवा में जो 'क्लोरडाइमफार्म' होता है, उसमें कैन्सर को जन्म देने वाले तत्व रहते हैं। कम्पनी को यह बात स्वीकार करनी पडी। फिर भी एशिया और अफ्रीका के देशों में इस दवा का उपयोग अभी बंद नहीं हुआ है। "लेप्टोफोस" नामक दवा के बारे में भी ऐसी ही बहस चलती रहती है। कुछ समय पहले मिस्र में नाइल नदी के किनारे इस दवा के कारण कोई एक हजार किसान और पशु मौत के शिकार बने थे।

PDF Compressor Free Version

इसलिए अब यह बहुत जरूरी हो गया है कि भोपाल की अत्यंत दुःखद घटना के बाद हम सब तुरन्त चेत जाएं, चौकस हो जाएं, और इस सारे सवाल के बारे में पूरी गम्भीरता के साथ सोचना शुरू कर दें। अब यह कहना और करना काफी नहीं है कि ऐसे कारखाने बस्ती से बहुत दूर होने चाहिए। दरअसल अब तो यह सोचा जाना चाहिए कि ऐसी दवाओं का उपयोग कैसे बंद किया जाए। जो जहरीले तत्व इतने अधिक घातक हैं कि उनके कारण ऐसी भयंकर प्राणहानि हो सकती है, उनका कोई स्पर्श, किसी भी प्रकार से हमारे आहार को, हमारी धरती को और हमारी सृष्टि को हम क्यों होने दें ? लफंगे पैसे के अर्थशास्त्र द्वारा खडा किया गया यह एक मायाजाल ही है। मनुष्य-जाति को निश्चयपूर्वक इस जाल में से बाहर निकल जाना चाहिए।

अधिक उत्पादन-वृद्धि के और हरित क्रान्ति के नाम पर आज भी इन कीटनाशक दवाओं और रासायनिक खादों के उपयोग की अनिवार्यता के पक्ष में दलीलें दी जाती हैं। लेकिन यह निरा भ्रम है। हर जगह अनुभव यही आया है कि इन रसायनों के उपयोग से फसल को नुकसान पहुंचाने वाली बीमारियां बढती जाती हैं। इन बीमारियों की रोकथाम के लिए बडी मात्रा में कीटनाशक दवाओं का उपयोग किया जाता है। किन्तु इस तरह अधिक रसायनों के उपयोग से और अधिक रोग बढते हैं। इस प्रकार एक दुष्चक्र चलता रहता है। कीटनाशक दवाएं प्रभावहीन बनती जाती हैं। फसलों को नुकसान पहुंचाने वाले कीटों पर उन दवाओं का कोई असर नहीं होता – वे बे-असर बनते जाते हैं। इन उपद्रवी जन्तुओं को नियंत्रण में रखने के लिए प्रकृति ने जिन संहारक जन्तुओं की सृष्टि की होती है, इन दवाओं के कारण उनका नाश हो जाने से फसलों को होने वाले नुकसान बढ जाता है। संकर बीज आदि के कारण फसलों की अपनी प्रतिकार-शक्ति बहुत घट जाती है, और नए-नए उपद्रवी जीव-जंतु उत्पन्न होते रहते हैं। पिछले ३० सालों में अमेरिका में जंतुनाशक दवाओं का बहुत अधिक उपयोग हुआ। फिर भी वहां रोगों के कारण होने वाला फसलों का नुकसान घटने के बदले पहले की तुलना में लगभग दुगुना

PDF Compressor Free Version

बढ गया है । और कुछ ऐसी नई-नई बीमारियां प्रकट हो गई हैं, जो पहले कभी नहीं हुई थीं । इन बीमारियों पर अब कोई भी दवा काम नहीं करती ।

इनके कारण सबसे बडी हानि यह होती है कि जमीन की गुणात्मकता और उसका उपजाऊपन नष्ट होता रहता है । मनुष्य के शरीर की तरह ही जमीन भी एक जीती-जागती इकाई है । एक घन-फुट जमीन में लाखों जीवित कृमि-कीट, जीवाणु और केंचुए आदि रहते हैं । सृष्टि के संतुलन की यह एक बहुत ही जटिल और एक-दूसरे के सहारे पर टिकी हुई व्यवस्था है, जिसके अंतर्गत जीवन के लिए उपयोगी तत्वों का एक चक्र निरन्तर चलता रहता है । रासायनिक खाद और कीटनाशक दवाओं के बेहिसाब उपयोग के कारण सृष्टि के चक्र का यह संतुलन गडबडा जाता है । जमीन के अंदर रहने वाले जीवाणुओं पर इनका जो प्रभाव पडता है, उसके कारण फसलें अपनी वह शक्ति खोती रहती हैं, जिससे वे जमीन के अंदर से कुदरती तौर पर पोषण प्राप्त किया करती थीं ।

जब जमीन में सेन्द्रिय पदार्थों की मात्रा कम हो जाती है, तो नमी को संचित और सुरक्षित रखने की उसकी शक्ति घटने लगती है। नमी की अथवा 'ह्यू मस' की कमी होने से जमीन का फुसफुसापन, उसकी छिद्रमयता कम होने लगती है । इसके कारण जमीन मुरदे की तरह सूखी और सख्त बन जाती है । उसके अंदर पानी के पहुंचने पर भी वह गीली नहीं हो पाती । ऐसी मुरदा बनी जमीन का क्षरण हवा और पानी के कारण बहुत बढ जाता है । एक अनुमान यह है कि अमेरिका के आयोवा राज्य में पिछले २५ सालों में जमीन के ऊपर की आधी मिट्टी धुलकर साफ हो चुकी है ।

अपने देश में पंजाब की हरित क्रांति का गढ माने जाने वाले लुधियाना जिले की जमीन, जिसमें सबसे अधिक उत्पादन होता रहा है, आज सबसे ज्यादा कमजोर बन चुकी है, और फसल के लिए आवश्यक पोषक तत्वों से वंचित हो गई है । गुजरात के राजकोट जिले में पिछले

PDF Compressor Free Version

१५ सालों में कीटनाशक दवाओं का बहुत अधिक उपयोग हुआ है। आज वहां की भी बहुत-सी जमीन की यही स्थिति होती जा रही है।

इसलिए अब आज तो खेती के इन नए तरीकों के बारे में ही नए सिरे से विचार करना जरूरी हो गया है। विकास के नाम पर रासायनिक खादों और कीटनाशक दवाओं के ज्यादा-से-ज्यादा कारखाने खोलते रहने का अर्थ होता है, विनाश की दिशा में दौडते रहना। यह विकास नहीं है, अधोगति है। भोपाल की-सी भीषण दुर्घटना तो क्वचित् ही घटती है, और तब वह एक नाटकीय ढंग से हमारा ध्यान कुछ खींचती है। किन्तु ऐसी दुर्घटना के अभाव में भी गलत दिशा की यह दौड मनुष्य-जाति के जीवन में और समूची सृष्टि में अपना धीमा और कातिल जहर फैलाती ही रहती है, और हम सबको धीमी मौत के रूप में मारती भी जा रही है। ईश्वर करे, भोपाल की घटना हमें व्यापक फलक पर सोचने की और इस आत्म-घातक दौड से मुंह मोडने की प्रेरणा दे।

[अनुवादक : **काशिनाथ त्रिवेदी**]

* *

अगर हमारी खेती को शरीर के लिये आवश्यक पोषक अनाज का उत्पादन करना है तो उन पौधों को, जिनसे हमें भोजन मिलता है, स्वस्थ, सामान्य एवं तंदुरुस्त होना चाहिए। जिस प्रकार मनुष्य-शरीर को कुछ मादक द्रव्यों द्वारा आवश्यकता से अधिक उत्तेजित किया जा सकता है, उसी प्रकार पौधों की भी कृत्रिम खाद आदि के द्वारा अस्वास्थ्यकर वृद्धि की जा सकती है। परन्तु यह आत्मघाती पद्धति है। सभी पौधों का प्राकृतिक आहार सेन्द्रिय पदार्थ एवं खाद है। इस प्रकार की खादों में कुछ ऐसे तत्व होते हैं, जो पौधों को भोजन बनाने में उसी तरह मदद करते हैं जिस तरह मनुष्य-शरीर को (विटामिन) जीवन-सत्व।

— **जे. सी. कुमारप्पा**

PDF Compressor Free Version

कृत्रिम खाद के बदले गोबर से तीव्र खाद बनाने की पद्धति और उपयोग

बालाप्रसाद धूत

१. गोबर-दाने बनाने के लिये गोबर को समृद्ध करना

गाय-बैल को शाम के समय निम्न खुराक दिया गया और दो घंटे तक चारा नहीं दिया गया :

२५० ग्राम अरहर की पत्ती का भूसा या मूंग-उडद की पत्ती, कंडियों का भूसा ।

५०० ग्राम मूंगफली की खली या १ किलो अरंडी की खली । ऐसे समृद्ध गोबर के चोथ (पोठा) को सबेरे जैसे के तैसा उठाकर गोबरदाने बनाने की क्रिया की जाती है ।

२. गोबर-दाना (ग्रेन्युअल) बनाने की रीति

(१) चोथ (पोठा) को एकत्रित करके धूप नहीं देना है ।

(२) चोथ के छोटे-छोटे एक इंच से डेढ इंच के टुकडे हाथ से तोडकर बताशे जैसी कडी जमीन पर डालकर सबेरे के १०-११ बजे की धूप में सुखाने के लिए डालना ।

(३) एक या डेढ घंटे के बाद कुछ सूखने पर आधा इंच के सुराख की छन्नी से रगडकर छानना, जिससे दाने-दाने पड जायेंगे । इसे धूप में सुखाया जाय, सुखाते समय हाथ से हेरफेर किया जाय । तीन घंटे के बाद उसे १ /२ इंच से ५ /८ इंच की छन्नी से छान लिया जाय । ऊपर रहे बडे दाने अलग सुखाये जायें । ये दाने अरहर-चना, मूंगफली आदि के नाप के रहेंगे । छन्नी से गिरे हुए दानों को १ /८ इंच की छन्नी से दुबारा छान लिया जाय । ऊपर रहे बडे दाने अलग सुखाये जायें । ये दाने गेहूं, ज्वार, मूंग, उडद के नाप के रहेंगे । छन्नी के नीचे गिरे हुए बारीक चूरे को सुखा लें । इन्हें बरसाती फसलों के लिये, दो कतारों के बीच में (टाप ड्रेसिंग) बोकर उपयोग में ले सकते हैं ।

PDF Compressor Free Version

यह बारीक चूरा साग-सब्जी को तीव्र खाद देने के लिये बोकर (ड्रिलींग) उपयोग में ला सकते हैं। मेथी जैसी भाजी में दूसरे ही दिन परिणाम पाया गया। प्याज जैसी फसल में दो दिन के बाद परिणाम प्राप्त हुआ।

३. गोबर-दाने का उपयोग और परिणाम

(१) गोबर-दाने को धूप में अच्छी तरह सूख जाने पर ही संग्रह करना। यदि नमी रह गयी होगी तो संग्रह करने के समय गरमी पैदा होगी। यह उसकी जाँच है।

(२) बीज के वजन से दो गुना इसी आकार में गोबर-दाने मिलाकर बोआई की जाय।

गोबर-दाने की बीज की बोआई के परिणाम
(सूखी खेती के)

फसल का नाम	बोआई का समय	बीज का प्रमाण प्रति एकड	सादी बोआई से एक एकड में	गोबर-दाने के साथ बोआई से एक एकड में
अरहर	खरीफ फसल १९६४-६५	४ किलो	५५ किलो	१६० किलो
ज्वार (१८ इंच के फासले पर)	रबी फसल १९६६-६७	५ किलो	५०६ किलो	७०० किलो
गेहूं (१५ इंच के फासले पर)	रबी फसल १९६६-६७	२४ किलो	४६२ किलो	६३४ किलो

नोंद :– गेहूं में ज्यादा खाद देने पर भी उत्पादन में कोई खास वृद्धि नहीं हुई।

४. गोबर के पेढे में बरसाती ज्वार के बीज देना

गीला गोबर एकाध तोले जितना लेकर उसमें ज्वार के तीन-चार दाने दबा देकर पेढे जैसे चौपटे बनाकर गरमी के दिनों मे सुखा-

PDF Compressor Free Version

कर रख लेना। बारिश होने पर सीधी कतार में १८ इंच के अन्तर पर थोडी-सी मिट्टी खोलकर नमी पर पेढे रखकर ढंक दिये गये। दूसरी कतार २४ इंच के फासले पर की गई। उगने में सादे बीज के मुकाबले इसे ७ दिन ज्यादा लगे।

परिणाम : आम बोआई के मुकाबले में उत्पादन ३ से ४ गुना ज्यादा मिला।

५. अरहर के डठंलों से पियत खेतों में किये प्रयोग

हल्दी की बोआई करने के समय हल से नाली निकालकर हल्दी की गांठें डाल दी। साथ ही अरहर के डंठलों को एक-एक बिछाते गये। दूसरी नाली निकालने पर पहली नाली पर मिट्टी ढंक जाती है। बाद में तीसरी नाली निकालकर पहले जैसे ही किया गया।

परिणाम : अन्य किसी भी प्रकार के खाद देने के मुकाबले में इस पद्धति से ज्यादा लाभ रहा है।

६. गीले गोबर को पियत की खेती में देने की पद्धति

(१) प्रति गुंठा दो टोकरी (२० किलो) गीला गोबर प्याज की रोपाई के तीन से चार सप्ताह के बाद पानी के बहाव के साथ एक बार दिया गया।

परिणाम : सादे प्लॉट में ६२५ किलो उत्पादन आया। गीला गोबर दिये प्लॉट में ९४० किलो उत्पादन आया। यह वजन एक दिन बाद लिया गया था।

नोंद : पैदावार तीन गुंठे के प्लॉट की है। गोबर ६० किलो दिया गया था।

(२) तीन दिनों तक का गीला गोबर एकत्रित किया गया। मवेशी को १८ किलो मूंगफली की खली खिलाकर सबेरे गोबर एकत्रित किया गया था।

(३) इन्हींके साथ ३ गुंठे के प्लॉट में १८ किलो मूंगफली की खली पानी में घोलकर दी गई। उसका उत्पादन ९७५ किलो आया। वजन तुरंत किया गया था।

इससे स्पष्ट होता है कि गाय-बैलो को खली आदि जैसी अच्छी खुराक देने का खर्च किसान पर न पडते हुए खेती में आने वाले उत्पादन में से मुआवजा मिल जाता है।

PDF Compressor Free Version

७. बरसाती धान-खेती में गीले गोबर का उपयोग

एक-एक एकड के प्लॉट में धान की खेती के दो प्रयोग आठ साल (१९६० से १९६८) तक लगातार किये गये। परिणाम निम्न प्रकार से आया है।

एक एकड में गीला गोबर ४५० से ५०० किलो हर साल धान की रोपाई के बाद एक माह पर देते गये। इसका उत्पादन व १०० किलो अमोनियम सल्फेट देते हुए आया हुआ उत्पादन, दोनों चार-पांच साल तक बराबर रहा। वाद में अमोनियम सल्फेट वाले प्लॉट का उत्पादन घटता गया।

८. बैलों का पेशाब खाद के लिये एकत्रित करना (१९५७-५८)

(१) पेशाब से नाइट्रोजन तुरंत उड जाता है, तो जिस पात्र में पेशाब जमा करना हो उस पात्र में तेल गिरा देने से तेल का ढक्कन बन जाता है, जो हवा के साथ का संसर्ग बन्द कर देता है।

(२) बैलों का सबेरे उठते ही अक्सर पहले पेशाब करने का स्वभाव है। उस आदत को समझकर पेशाब एकत्रित कर सकते हैं और पानी गिरने पर बजनेवाले बर्तन (बाल्टी) के द्वारा समय पर पेशाब करने की बलों में आदत डाल सकते हैं। एक हफ्ते में तो कोई भी बैल आदी हो जाता है और पात्र रखते ही पेशाब करना शुरू करता है। वह १५-२० मिनट तक पात्र रखने की इन्तजारी भी करता है।

(३) धान के खेत में जब पानी भरा हो तब पेशाब का उपयोग किया गया। साढेतीन गुंठे की मडिया में हर गुंठे को १ कनस्तर (४ गैलन का) मूत्र के हिसाब से एक ही दफा रोप लगाने के लिए एक माह के बाद पानी में थोडी-थोडी दूरी पर गिराया गया और तासों में आदमी घुमाने गये, जिससे वह मूत्र भली भांतिएक-सा सब जगह फैल जावे।

परिणाम : (१) अन्य साढेतीन गुंठे के प्लॉट में २५ पौंड मूंग-फली की खली दी गई थी। उत्पादन २०० किलो आया।

(२) केले के पीले को काटकर, ६ इंच से ८ इंच के टुकडे बनाकर बिछा दिये गये। उत्पादन २०० किलो आया।

(३) हरी सनई के २० बोझ (६०० किलो) बिछाकर रौंद दिये गये। उत्पादन १७५ किलो आया।

(४) पेशाब के साढेतीन कनस्तर (१४ गैलन) दिये गये। उत्पादन २५० किलो आया।

PDF Compressor Free Version

९. कम्पोस्ट खाद का हिसाब

प्रयोग-अवधि : १९५६ से १९५९ (तीन साल)
सेन्द्रिय खाद प्राप्त : ३२६६ गाडियां (१ गाडी = ६०० किलो)
लागत खर्च : कचरे की कीमत रु. २-५०
मजदूरी व पानी २-५० रु. यानी रु. ५-०० प्रति गाडी खर्च

कुल लागत खर्च ३२६६ × रु. ५-०० = रु. १६,३३०-००

पोषक तत्व प्राप्त हुए

तत्व का नाम	वजन (पौंड में)	दर पैसे	कीमत रुपये-पैसे
नाइट्रोजन (एन.)	२९३९४	९४	२९,२१०-१३
पोटाश (के.)	६५३२०	२५	१६,३३०-००
फासफोरस (पी.)	१९५१६	५३	१०,३८५-८८
चूना (सी. ए.)	१३०६४०	०२	२६१२-८०
सेन्द्रिय तत्व	७४४६४८	०२	१४,८९२-९६
		कुल प्राप्ति	७३,४३१-७७

सारांश

इन सभी प्रयोगों में नाइट्रोजन का ही विचार नहीं किया गया। लेकिन सूक्ष्म द्रव्यों का बीज की फूट के समय जो असर हुआ वह उपयोगी साबित हुआ। इससे लगता है कि योग्य परिस्थिति व समय पर मिलनेवाले पोषक तत्वों से फसल बढाने में बडा असर हुआ।

अक्सर पाया गया कि १ किलो गोबर-दाने देने से ८ से १० किलो अनाज चाहे जैसी हलकी जमीन में भी आसानी से मिल सकता है। पैसे में हमने उसे परिवर्तित नहीं किया। लेकिन गोबर-दाने का दाम दूध की कीमत से आधा गिना है। मतलब यह कि एक किलो दूध के सामने दो किलो गोबर-दाने दिये गये हैं और किसानों ने वह बहुत खुशी के साथ लिये हैं।

स्नेहनगर, कॉलेज कॉर्नर, नांदेड – २ (महाराष्ट्र)

* *

PDF Compressor Free Version

सेन्द्रिय खेती प्रयोग के २५ वर्ष
१९३८ से १९६२

नतीजे तथा प्रश्नचिन्ह

भूमिका

आज तक जिन-जिन स्वस्थ समाजों का अध्ययन किया गया उनमें समान रूप से पाया गया कि इनका भोजन ताजा तथा पूर्ण होता था तथा वह सेन्द्रिय पद्धति से किसी प्रकार के रासायनिक पदार्थों द्वारा प्राकृतिक प्रक्रियाओं में बाधा डाले बिना उगाया जाता था। सेन्द्रिय पद्धति से उगाये भोजन से मनुष्य की मानसिक शांति तथा स्वास्थ्य अच्छा रहता है, कई बीमारियां दूर होती हैं, यह अनुभव अनेकों का है। पशुओं पर भी इस खुराक का अच्छा असर पडता है। वे बीमार कम पडते हैं, संतुष्ट रहते हैं तथा १०-१५ प्रतिशत कम खुराक देने पर भी उतनी ही मात्रा में उतना ही पोषक दूध देते हैं। वे समय पर बच्चे देते हैं तथा अधिक वर्ष तक जीवित रहते हैं। ऐसी खुराक में कारखानों से बनी वस्तुएं नहीं दी जाती तथा स्थानिक पैदावार की घास व खुराक पर पशु और मनुष्य निर्भर रहते हैं।

सेन्द्रिय पद्धति के पौधों पर बीमारियां कम आती हैं और उनकी प्रतिरोधक शक्ति हर वर्ष बढती जाती है।

यह सब क्यों होता है? इसके कारण क्या हैं? इसकी खोज करना 'हाले प्रयोग' की बुनियाद रही।

बुनियादी विचार

स्वस्थ जीवन की बुनियाद स्वस्थ खुराक है। अच्छी खुराक की बुनियाद भूमि की उर्वरकता है और जमीन-पौधे-पशु-मनुष्य, ये सब मिलकर पोषण का एक चक्र पूर्ण बनता है तथा इस चक्र का व्यवहार में पूर्ण अध्ययन करने पर ही रोग-निवारण अथवा स्वास्थ्य-सुधार में कोई स्थायी प्रगति संभव है।

PDF Compressor Free Version

२५ वर्ष के प्रयोगों के निष्कर्ष

(१) सेन्द्रिय पद्धति की गायों को १०-१५ प्रतिशत कम खुराक दी जा सकी, क्योंकि इस विभाग की उत्पत्ति रासायनिक मिश्र विभाग की तुलना में इतनी कम थी, फिर भी सेन्द्रिय गायों का दूध-उत्पादन मिश्र गायों की तुलना में १० प्रतिशत अधिक रहा।

(२) सेन्द्रिय विभाग स्वयंपूर्ण, स्वाश्रयी रहा, जब कि मिश्र विभाग में हर वर्ष बाहर से रासायनिक खाद तथा कीटनाशक आदि डालने पडे। जब जहां इनका प्रयोग नहीं किया, उत्पादन एकदम कम हो जाता था। सेन्द्रिय विभाग में ३५ वर्ष में भी उत्पादन में कोई कमी नहीं आई।

(३) सेन्द्रिय विभाग की खेती में किसी भी मौसम में काम करना अपेक्षाकृत आसान होता है।

(४) सेन्द्रिय विभाग की पैदावार अधिक समान किस्म की होती है।

(५) सेन्द्रिय विभाग के पशुओं के स्वास्थ्य में मिश्र विभाग की तुलना में कुछ वर्षों बाद अधिक सुधार दीखा। वे अधिक उम्र तक दूध देते रहे तथा संतुष्ट दीखते थे।

(६) आर्थिक दृष्टि से देखें तो रासायनिक खादों की कीमत जितना खर्च मिश्र खेती में ज्यादा आता है। अन्य खर्च दोनों पद्धतियों में समान है। मिश्र खेती में जो अधिक उत्पन्न मिला उससे रासायनिक खादों आदि का खर्च मुश्किल से निकलता है। और जब यह अधिक उत्पन्न पशुओं को खिलाया गया तो अधिक उत्पन्न होने की बजाय कम दूध उत्पन्न हुआ। इसका कारण खुराक की गुणवत्ता में फर्क हो सकता है क्या?

भविष्य की दिशा

२५ वर्ष के प्रयोगों से यह तो पता चला कि विभिन्न पद्धतियों की खेती में क्या हो रहा है। परन्तु यह क्या होता है इसका उत्तर खोजना हो तो और अधिक अनुसंधान-कार्य करना होगा। इसके लिये निम्न संभावित दिशायें हो सकती हैं –

PDF Compressor Free Version

(१) गाय को खिलाकर खुराक की पोषकता नापने की बजाय प्रयोगशाला में छोटे जानवरों को वह खुराक खिलाकर १० पीढियों का अध्ययन किया जाय।

(२) पोषक तत्वों की दृष्टि से दूध, अंडे, फल आदि का सविस्तर अध्ययन कर के पता लगाना कि इनकी गुणवत्ता में कुछ फर्क है क्या?

(३) भोजन के अन्य सहायक तत्वों की दृष्टि से खोज।

(४) सुस्वाद का पोषकता से क्या संबन्ध है? खाद के रासायनिक तथा भौतिक तत्व क्या होते हैं?

(५) पशुओं के पेट में होनेवाली पाचन-क्रियाओं का विभिन्न खुराक खिलाकर अध्ययन।

इन सब दिशाओं को मिलाकर "हाले प्रयोग" स्वस्थ जीवन की दिशा में अगला कदम रखेगा।

* *

एक दुष्ट चक्र आज फैलता जा रहा है। जमीन का उपजाऊपन कम होने के कारण पौधे सत्वहीन एवं कमजोर बनते हैं। इससे उन पर कीडों का आक्रमण अधिक होता है। इन बीमारियों की रोकथाम के लिये विषैली औषधियों का छिडकाव किया जाता है, जिससे कि जमीन, पानी एवं पौधों का और भी नुकसान होता है। इस प्रकार पैदा किया सत्वहीन अनाज, जिसमें जीवन-सत्वों एवं खनिज लवणों की कमी होती है, जब मनुष्यों को खिलाया जाता है तो उनमें पोषण की कमी की बीमारियां होने लगती हैं, जिनको दूर करने के लिये डाक्टर लोग और अधिक रासायनिक दवाइयां खिलाते हैं। इस प्रकार एक तरह की औषधियों की लत पड जाती है, जिससे मनुष्य-जीवन ही खतरे में पड जाता है। यह ध्यान में रखें कि इन सारी प्रक्रियाओ में रासायनिक द्रव्य पैदा करनेवाले अत्यधिक मुनाफा कमाते हैं।

— विल्फ्रेड वेलाक

PDF Compressor Free Version

बीजों की आनुवंशिकता की लूट

पेटराय मूनी

हरित क्रांति के माध्यम से उन्नत बीजों का प्रचार बडे व्यापारी तथा सरकारें कर रही हैं । इससे अक्सर स्थानीय विविधतापूर्ण आनुवंशिकतावाले बीजों की अनेक किस्में हमेशा के लिए समाप्त हो जाती हैं । जिन किसानों को न्याय तथा भोजन भी पूरा न मिलता हो उनके लिये आनुवंशिकता बैंक या संकर प्रजनन बहुत दूर की बात लग सकती है । आज के ज्वलंत प्रश्न, जैसे – भूमि-सुधार, ऋण-व्यवस्था तथा राष्ट्रीय स्वावलंबन आदि की तुलना में ये बातें किसान के लिये ज्यादा महत्व नहीं रखती । परंतु याद रहे कि बीजों का सारा दारोमदार उनकी रज में छिपा है और भोजन की शृंखला में बीज पहली कडी है । कुछ सरकारों तथा बीजों की अनेक बडी कंपनियों ने यह बात पहचान ली है और बीजों की रज को हथियाने के लिये अनेक हथकंडे अपना रही हैं । बीज तथा पौधों के मामले में अगर हम पराधीन बन गये, तो फिर जमीन-सुधार या सामाजिक न्याय अथवा राष्ट्रीय स्वावलंबन, सभी बेमानी हो जायेंगे ।

कुछ थोडी ही फसलों पर सारी मानव-जाति का भविष्य आज निर्भर हो गया है । दिन-प्रतिदिन विविधता समाप्त होती जा रही है, इससे महामारी फैलने का खतरा बढता जा रहा है । एक नियम यह है कि कोई बीज जितना अपने मूल बतन से दूर जायेगा, उतनी ही उसकी आनुवंशिक विविधता समाप्त होती जायेगी, रोगों से लडने की शक्ति कम होती जायेगी । मेंडेल के प्रयोगों के आधार पर संकर बीजों का प्रजनन तेजी से बढा, परंतु इससे सदियों की कमाई हुई बीजों की विविधता के अनेक गुण समाप्त हो गये ।

आज जो देश अधिक उत्पादन करते हैं वे भले अनाज में धनवान हों, परंतु आनुवंशिक गुणों की दृष्टि से वे गरीब बन गये हैं और इसके लिये वे गरीब मुल्कों पर अधिकांश में निर्भर हैं । आज अमीर देशों की बहुराष्ट्रीय कंपनियां गरीब देशों के बीजों पर एकाधिकार करती जा रही हैं, और इस एकाधिकार का उपयोग एक राजनैतिक हथियार

PDF Compressor Free Version

के तौर पर भी होने लगा है। दुनिया में संग्रहीत कुल मूल बीजों में से ९२ प्रतिशत बीज येन-केन प्रकारेण अमीर देशों के कब्जे में चले गये हैं। वास्तव में सारी दुनिया बीजों के मामले में इतनी परस्पर-निर्भर कभी नहीं थी।

जिन प्रदेशों में जो किस्में स्थानीय आधार पर उगती हैं, उन किस्मों को लगनेवाली विविध बीमारियां भी उसी प्रदेश में पायी जाती हैं। अतः जब एक स्थान का बीज दूसरे स्थान पर ले जाया जाता है तो बीज की स्वयं का रोग-प्रतिरोधक विविधता कम पडती है, लेकिन बीज के साथ कुछ ऐसी बीमारियां नये प्रदेश में आ जाती हैं, जिनसे वहां की अन्य अनेक किस्मों को खतरा पैदा होता है। ऐसे अनेक उदाहरण विभिन्न देशों में आये दिन देखने को मिलते हैं।

हरित क्रांति से बीज-क्रांति

साम्राज्यवाद का इतिहास वास्तव में आश्चर्यजनक रूप से पौधों के व्यापार का इतिहास है। अधीनस्थ देशों के पौधों को विजेता राष्ट्र हमेशा ले जाकर धन कमाते रहे हैं। चाय, काफी, रबर आदि ने बडे-बडे धनवान बनाये हैं। आज भी अनेक देशों की कृषि-अनुसंधान संस्थाएं आनुवंशिक सामग्री को धनी देशों को भेजने का माध्यम बनी हुई हैं, जहां वह सामग्री बडे व्यापारियों को मुनाफा कमाने के लिये उपलब्ध हो जाती हैं। आज तो पेट्रोल की अनेक कंपनियां रासायनिक दवाएं तथा उर्वरकों के साथ अब संकर बीजों के उत्पादन में अपने पांव फैला रही हैं। अनेक देशों में उन्होंने सस्ते दामों में जमीनें ले ली हैं और कुछ वर्षों में उस जमीन को सघन खेती द्वारा निःसत्व बनाकर छोड देती हैं। फिर नयी जमीन ली जाती है। ये कंपनियां औषधियों के लिये भी फसलें पैदा करने में लगी हैं। ये बहुराष्ट्रीय कंपनियां एकाधिकार द्वारा खाद, बीज, औषधि का मनमाने ढंग से प्रसार-प्रचार कर आम आदमी को गुलाम बना देती हैं। कई सरकारें भी इन कंपनियों के प्रभाव में आ जाती है तथा कुछ तो अपनी आर्थिक सहायता की शर्तों में यह शर्त भी लगा देती हैं कि अमुक संकर बीज, उर्वरक या कीटनाशक औषधियां भी खरीदनी पडेंगी। कभी-कभी तो ये कंपनियां एक ही चीज को अलग-अलग नामों से अलग-अलग देशों में बेचकर मुनाफा कमाती है।

PDF Compressor Free Version

कोई भी नयी किस्म के बीज देश में लाने के पहले यह तय होना चाहिए कि इन बीजों का अन्य वनस्पतियों पर क्या प्रभाव पडेगा और उनकी सुरक्षा की व्यवस्था की गई है क्या ? दूसरी बात यह तय होनी चाहिए कि जिस स्थानीय बीज के बदले नया बीज लाया जा रहा है, क्या वह सचमुच में श्रेष्ठ है ?

बीज और रसायनों का संबंध

नये संकर पौधों में मुख्यत: तीन गुण देखे जाते हैं :

[१] वे अधिक पैदावार देनेवाले हों ।

[२] यांत्रिक खेती तथा प्रक्रिया की दृष्टि से अधिक उपयुक्त हों ।

[३] कीडों व बीमारियों से बचने को शक्ति अधिक हो ।

अक्सर ये तीनों गुण एक पौधे में ला पाना कठिन होता है और जो एक गुण बडी आसानी से या अक्सर जानबूझकर छोड दिया जाता है वह है बीमारी से बचाव की क्षमता का विकास । प्रथम दो गुण तो एक बार विकसित होने पर स्थिर रह सकते हैं, लेकिन बीमारी से रक्षण का गुण कीडों की नयी प्रजातियों के विरुद्ध नाकाम साबित हो जाता है । बीज-कंपनियां किसानों को आसानी से उनके कीटनाशकों का उपयोग करने की सिफारिश कर देती हैं । इस तरह बीज-कंपनियां बीज बेचकर तो अत्यधिक मुनाफा कमाती ही हैं, उन बीजों के उत्पादन के लिये रासायनिक उर्वरक तथा रक्षण के लिये औषधियां बेचकर भी लाभ बटोरती हैं । इन्हीं औषधियों की बदौलत प्रतिवर्ष गरीब देशों में ३,७५,००० लोग बीमार पडते हैं तथा १०,००० मौत के मुंह में समा जाते हैं ।

आज आवश्यकता इस बात की है कि इस तरह की निर्भरता को रोका जाय । किसानों को अपनी स्वयं की पद्धतियों से स्थानीय बीजों का चुनाव एवं संरक्षण करने को प्रोत्साहित करना चाहिये । वास्तव में खेती की आधुनिक तकनीकों का भंडाफोड करके विविध प्रकार के बीज पैदा करने चाहिये । इस काम में सामाजिक सुधारकों के साथ नये-नये वैज्ञानिकों को भी आगे आकर योगदान करना चाहिये ।

['डेवलपमेंट डायलाग १९८३' से संक्षिप्त]

[अनुवादक : **कनकमल गांधी**]

PDF Compressor Free Version

सेन्द्रिय कृषि की मान्यताएं

(१) प्रकृति पूंजी है

ऊर्जा के सघन उपयोग पर आधारित आधुनिक कृषि-पद्धति मनुष्य को प्रकृति के विरुद्ध संघर्ष में डाल देती है। आज की पद्धति का भविष्य अधंकारमय दीखता है। समाप्त होनेवाले संसाधनों के प्रति अधिक सावधानी बरतनी आवश्यक है। सेन्द्रिय कृषि पुनः पुनः पूर्ति हो सकनेवाली पोषण-पद्धति को अपनाती है।

(२) जमीन जीवन की जननी है

खेती के सुस्थिर भविष्य हेतु जमीन का समुचित पोत तथा उसमें पोषक तत्वों का संतुलन (यथा, मिट्टी में पर्याप्त मात्रा में सेन्द्रिय पदार्थों का होना, उपयोगी जीव-जन्तुओं की प्रचुरता होना, सूक्ष्म तत्वों तथा अन्य पोषक तत्वों का होना) आवश्यक है। मनुष्य तथा पशुओं के स्वास्थ्य का जमीन के स्वास्थ्य से सीधा सम्बन्ध है।

(३) पोषण जमीन को, न कि पौधों को

संतुलित तथा जीवंत भूमि में ही स्वस्थ पौधे, स्वस्थ पशु तथा स्वस्थ मनुष्य पलते हैं।

(४) पैदावार की विविधता

एक ही प्रकार की फसल लेना प्राणिशास्त्र तथा पर्यावरण की दृष्टि से अस्थिरतामूलक है।

(५) स्वतंत्रता

सेन्द्रिय खेती अधिक से अधिक ऊर्जा की खपत पर आधारित उत्पादन तथा वितरण-पद्धति पर निर्भरता उत्तरोत्तर कम करके सेन्द्रिय खेती पद्धति व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्वतंत्रता को बढाती है।

PDF Compressor Free Version

(६) भौतिकता की विरोधी

हमें साधनों की सीमितता तथा प्रकृति की मर्यादाओं का ध्यान रखना लाजिमी है। जीव-जगत एक पूर्णता है, हम उसके एक हिस्से हैं, और जिन अन्य प्राणियों से यह जगत बना है और जिन्होंने इसके बनने में मदद की उन्हें जीवित रहने का स्वयंसिद्ध अधिकार है। यही पूर्णता का दृष्टिकोण हैं।

इसका अर्थ यही है कि हम नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों से विरत नहीं हो सकते, क्योंकि ये सब पूर्णता के अंग हैं। इन मूल्यों और उनके असर को नजरअंदाज करना दूसरे प्रकार की एकांगिता होगी। इसलिये हमें एक "जमीन की नैतिकता" कायम करनी होगी। इसका अर्थ होगा कि हम अपने समाज की परिभाषा में उस सब प्रकार के जीव-जगत को शामिल कर लें जिनके साथ हम इस संसार में रह रहे हैं। हमें जीवमात्र के प्रति एक आदर का भाव विकसित करना चाहिये, यहां तक कि जिन जीवों को हमें नियंत्रित करना पडता है, उनके प्रति भी। जमीन का उपयोग सिर्फ आर्थिक प्रश्न ही है। हर प्रश्न की हमें नैतिक तथा सामाजिक दृष्टियों से भी जांच करनी चाहिये तथा साथ ही, यह देखना चाहिए कि आर्थिक दृष्टि से क्या व्यवहार्य है। कोई भी वस्तु जो जीव-जगत की समरसता, स्थिरता तथा सुंदरता में वृद्धि करती है तो वह उचित है, बाकी सब अनुचित।

* *

प्रो० आइन्स्टीन ने हमारे देशवासियों के नाम एक संदेश में चेतावनी दी है कि रासायनिक खादों तथा ट्रेक्टर की जुताई द्वारा अंततोगत्वा जमीन का उपजाऊपन कम होगा, जिससे देश का अनंत गुना तथा न सुधर सकने वाला नुकसान होने का अंदेशा है।

— जे. सी. कुमारप्पा

PDF Compressor Free Version

ग्राम-स्वराज्य की कल्पना

ग्राम-स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि यह ऐसा पूर्ण प्रजातन्त्र होगा, जो अपनी अहम् जरूरतों के लिए अपने पडोसी पर भी निर्भर नहीं करेगा, और फिर भी बहुतेरी दूसरी जरूरतों के लिये, जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा, वह परस्पर-सहयोग से काम लेगा। इस तरह हरएक गांव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरूरत के तमाम अनाज और कपडे के लिये कपास खुद पैदा कर लेगा। इसके अलावा उसके पास इतनी सुरक्षित जमीन होनी चाहिये, जिसमें ढोर चर सकें और गांव के बडों व बच्चों के लिए मन-बहलाव के साधन और खेल-कूद के मैदान वगैरह का बन्दोबस्त हो सके। इसके बाद भी जमीन बची तो उसमें वह ऐसी उपयोगी फसलें बोयेगा, जिन्हें बेचकर वह आर्थिक लाभ उठा सके, लेकिन वह गांजा, तम्बाकू, अफीम वगैरह की खेती से बचेगा।

हर एक गांव में गांव की अपनी एक नाटकशाला, पाठशाला और सभा-भवन रहेगा। पानी के लिये उसका अपना इंतजाम होगा – वाटर वर्क्स होंगे–जिससे गांव के सभी लोगों को शुद्ध पानी मिल सकेगा। कुओं और तालाबों पर गांव का पूरा नियन्त्रण रखकर यह काम किया जा सकता है। बुनियादी तालीम के आखिरी दरजे तक शिक्षा सबके लिये लाजिमी होगी। जहां तक हो सकेगा, गांव के सारे काम मिलजुलकर किये जायेंगे। हमारे आज के समाज में पाये जानेवाले जांत-पांत और छुआछूत के भेद इस ग्राम-समाज में बिल्कुल नहीं रहेंगे।

– मो. क. गांधी

PDF Compressor Free Version

स्वस्थ भूमि : स्वस्थ नागरिक

बनवारीलाल चौधरी

"जीव-जगत्" अर्थात् वनस्पति और प्राणी-जगत् अपना पोषण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जमीन से प्राप्त करते हैं। धरती इस रूप में सबकी माता है। निरोग माता का दूध बालक को स्वस्थ बनाता है। इसी प्रकार प्राणी और वनस्पति-जगत् का स्वास्थ्य प्रत्यक्ष रूप से भूमि के, धरती के स्वास्थ्य पर निर्भर होता है। बीमार भूमि पर और अस्वास्थ्यकर तरीकों से उपजाई फसल पेट भले ही भर दे, पर वह स्वास्थ्यप्रद पोषण प्रदान नहीं कर सकती। इस तथ्य की सत्यता जानने हेतु चूहों पर पोषण के प्रयोग किये गए। एक चूहा-दल बिना कृत्रिम खाद, बिना औषधि-छिडकाव के उगायी उपज पर पाला गया। वह बहुत स्वस्थ और सक्रिय रहा। दूसरा दल, जिसे तथाकथित वर्तमान तरीकों से उपजाई फसलों के अन्न पर पाला गया था, वह कई प्रकार की बीमारियों का शिकार हुआ।

कम उपज की थोथली दलील

वर्तमान बढती हुई आबादी का पेट भरने के लिये एन-केन प्रकारेण अधिक-से-अधिक उपज लेना आवश्यक है। ऐसी दलील दी जाती है कि बिना रासायनिक खाद और औषधि-छिडकाव के अधिक फसल लेना संभव नहीं है। करजगांव, बैतूल (मध्यप्रदेश) में श्री. गं. उ. पाटणकर ने अपनी शाला के प्रक्षेत्र पर न कभी रासायनिक खाद दिया और न ही फसलों पर औषधियां ही छिडकी, बल्कि यह कहना ज्यादा उपयुक्त होगा कि उनको औषधियां छिडकने की आवश्यकता ही नहीं पडी। कम्पोस्ट और मलमूत्र की खाद का ही उन्होंने उपयोग किया। उनकी यह भूमि जब उन्होंने ली थी, तब बहुत हलकी और कम उपजाऊ थी। क्रमशः इसकी उर्वरा-शक्ति बढी और इन्हें साल-दर-साल बढती उपज मिल रही है।

PDF Compressor Free Version

श्री. आर्यनायकम्‌जी के संरक्षण में नई तालीम विद्यालय, सेवाग्राम में इस प्रकार के प्रयोग हुए । खेती, गोशाला और रसोडा (विद्यार्थी-कार्यकर्ताओं का सामूहिक भोजनालय) एक ही इकाई माने गये । गोशाला से निकला गोबर, गोमूत्र और भोजनालय का कूडा-कचरा, साग-भाजी की कतरन, बर्तनों की धौन-धान, सबका व्यवस्थित रूप से कम्पोस्ट बनाने के काम में उपयोग किया गया । किसी भी खेत में या फसल में रासायनिक खाद या औषधियों का छिडकाव नहीं किया गया । कम्पोस्ट का खाद और कूडे-कचरे को खेत में नालियां खोद-खोद कर दबाने से खेतों की उपजाऊ शक्ति बढी । उत्तर बुनियादी विद्यार्थियों के शाला-फार्म की उपज तीन वर्षों में लगभग दुगुनी हो गई ।

स्वास्थ्य पर प्रभाव

तालीमी संघ सेवाग्राम में सभी उम्र के विद्यार्थी, अर्थात् तीन वर्ष से ४५ वर्ष तक की अवस्था के रहते थे । नियमित रूप से उनके वजन और स्वास्थ्य की परीक्षा होती थी । लोगों को, विशेषतः शिक्षण-प्रशिक्षार्थियों को सुखद आश्चर्य होता था कि सेवाग्राम-निवास की अवधि में उनका स्वास्थ्य सुधरा । उनमें फुर्ति आई, शारीरिक और मानसिक कार्य करने की शक्ति बढी । जब उनको इसका मूल कारण वहां शुद्ध और पौष्टिक भोजन बताया जाता, तो वे तत्काल सहज रूप से स्वीकार नहीं करते थे, क्योंकि अच्छे भोजन की उनकी सामान्य धारणा चटपटा, उनकी आदत के अनुसार जीभ को रुचिकर भोजन था । कहां उनकी यह धारणा और कहां उनका सेवाग्राम का अस्वाद वृत्ति पर स्वस्थ जीवन के सिद्धान्त से पका भोजन ! प्रत्यक्ष को प्रमाण की जरूरत क्या ? तथ्य को वे अस्वीकार भी नहीं कर सकते थे ।

स्वस्थ भोजन और परिवार-नियोजन

ऐसी एक प्रचलित मान्यता है कि पूर्ण स्वस्थ दम्पति की संतानें स्वस्थ होगी और सीमित भी होगी । सामान्य अवलोकन से इसकी पुष्टि भी होती है । ऐसे वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता है, जिससे पता चले कि भोजन का और संतानोत्पत्ति का मनुष्यों में क्या सम्बन्ध है । यदि यह सिद्ध होता है कि संतुलित और स्वस्थ पोषक भोजन से

PDF Compressor Free Version

समृद्धि के साथ-साथ संतानोत्पत्ति भी सीमित हो जाती है, तब हमारा परिवार-नियोजन का नारा अभी तक दिये गये सामान्य फुहड नारों से भिन्न – 'स्वस्थ भोजन, सुखी परिवार' – होगा ।

स्वास्थ्य और कृषि की समन्वित योजना

मानव का कुपोषण और भूमि का कुपोषण, गलत भोजन और अस्वास्थ्य एवं स्वस्थ भूमि और स्वस्थ मानव का एक-दूसरों से जुडा हुआ संबंध है, इसके अकाट्य प्रमाण हैं । कुपोषण, उसका उद्गम चाहें जो भी हो, अपर्याप्त और अनुपयुक्त भोजन, सामाजिक और आर्थिक स्थितियां या इन सबके सम्मिलित प्रभाव के कारण शरीर-शक्ति, उत्साह, ओजस्विता और जीवन-शक्ति का ह्रास होता है और किसी रोग आदि से अच्छ होने में, उबरने में अधिक समय लगता है ।

नटाल, अफ्रीका में किये 'बोथ हिल स्वास्थ्य केन्द्र' ने इन बातों का प्रत्यक्ष अनुभव वहां के आदिवासियों के स्वास्थ्य के अध्ययन के आधार पर पाया । उनके सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ कि झुलू जाति के लोग कुछ ही पीढियों पहले उनके उत्तम गठन, स्वास्थ्य, कठिन परिश्रम करने का पीढीगत अनुशासन एवं सामरिक शक्ति के लिये प्रसिद्ध थे । उनका परम्परागत आहार अति पोषक था । वह था सम्पूर्ण मक्का के पदार्थ, दलिया आदि । पक्की सुखाई फलियां, खाने योग्य जंगली पत्ते, एक प्रकार का दही और कभी-कभी मांसाहार । इस आहार से उनका स्वास्थ्य का स्तर बहुत उच्च था ।

सर्वेक्षण से यह भी ज्ञात हुआ कि उनका वर्तमान स्वास्थ्य-स्तर बहुत खराब है । वे अपोषण और कुपोषण के शिकार हैं । तथाकथित हुए विकास ने उन्हें नगराभिमुख किया । उनकी भूमि की उत्पादकता मारी गई और वे फार्म और घर पर तैयार किये आहार के स्थान पर फैक्ट्री में बने पदार्थों का उपयोग करने लगे, जैसे सफेद चोकररहित आटा, सफेद शक्कर, जैम, चाय सरीखे पेय आदि । यही उनका दैनिक आहार बन गया ।

एक और बात का पता चला, वह है उनकी भूमि की गिरी हालत । भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने का ध्यान न देने के कारण, भूमि बेकाम-सी हो गई थी ।

PDF Compressor Free Version

डा० स्टार, जो कि यहां की स्वास्थ्य योजना के संचालक थे, को लगा कि लोगों का स्वास्थ्य सुधारने के लिये उनकी भूमि सुधारना आवश्यक है, जिससे उन्हें स्वस्थ और पोषक आहार मिले। भूमि-सुधार एवं अधिक कृषि-उपज प्राप्त करने का भार उन्होंने ऐसे व्यक्ति को सौंपा, जिसने आश्वासन दिया कि वह रासायनिक खाद के उपयोग के बिना एवं सिंचाई की आशा के बिना यह कार्य करेगा। इस व्यक्ति ने वही रीति अपनाई, जिसे इन्दौर में हावर्ड, नैनी में हिंगनबाथम और सेवाग्राम में आर्यनायकम्जी एवं अण्णासाहब सहस्रबुद्धे ने अपनाई थी।

संक्षेप में, यह युक्ति है भूमि का सेन्द्रिय तत्व बढाकर उसकी उत्पादन-क्षमता एवं नमी धारण करने की शक्ति बढाना। भूमि को नमी प्राप्त हो इस हेतु बन्धान एवं छोटे-छोटे तालाब आदि बनाना है। सेन्द्रिय तत्व बढाने के लिये खेत में खाइयां खोदकर उनमें कचरा डाल मिट्टी से ढकना है। खाई या नाली, पार बनानेवाले हल से बनाई जा सकती है। इस युक्ति से एक ही वर्ष में फसलों का उत्पादन बढ गया तथा खेत से प्राप्त फसलें स्वस्थ और पोषक थीं। इनका भोजन में समावेश करने से फिर से झुलू लोगों का स्वास्थ्य क्रमशः पूर्ववत् होने लगा।

मध्यप्रदेश के धार-झाबुआ सरीखे इलाकों की भूमि और निवासियों के स्वास्थ्य की वही हालत है जो बोथ हिल के लोगों की थी। यहां उल्लेखित पद्धति से इन क्षेत्रों की हालत सुधर सकती है। वहां के लोगों को केवल भुखमरी से ही नहीं बचायेगी, उन्हें उत्पादक काम भी देगी और स्वास्थ्य भी। "केश" कार्यक्रम के अन्तर्गत सडक के नाम से मिट्टी डलवाने के बजाय खेती में खेती खोद, कूडा-कचरा दबाने की योजना अधिक स्थायी और लाभप्रद सिद्ध होगी। प्रश्न है, तथाकथित विज्ञान के नाम पर हमारे मन में भरी अवैज्ञानिक भावना से ऊपर उठने की, यह समय का तकाजा है और चुनौती। हम इसे स्वीकार करें और स्वस्थ भूमि सुखी और स्वस्थ नागरिक का कार्यक्रम अपनावें।

* *

PDF Compressor Free Version

कीटनाशक या मनुष्यनाशक ?

वीर सिंह

कीटनाशकों से खतरे

औद्योगिक युग की सबसे भीषण दुर्घटना हमने झेली और हम धूल झाडकर निश्चिंत हो गये । भोपाल-त्रासदी क्यों हुई ? यांत्रिक खराबी के कारण । कैसे हुई ? कर्मचारियों की लापरवाही के कारण । सब सतही प्रश्नों के उत्तर मिल गये । परन्तु भोपाल-दुर्घटना के मलवे में कई प्रश्न दबे रह गये, जो मानवीय प्रश्न हैं । इन प्रश्नों के उत्तर हमें खोजने होंगे, क्योंकि इनका संबंध केवल उन इन्सानों से नहीं था या है, जिनकी इस घटना में बलि चढ गई है, बल्कि उन सभी जीते-जागते इन्सानों से भी है, जो भारत और भारत जैसी तीसरी दुनिया के देशों में रह रहे हैं और जिनके भविष्य का एक-एक पल दाव पर लगा है ।

भोपाल-त्रासदी का तकनीकी कारण जो भी रहा हो, पर इसके मूल में एक बडा कारण था – कीटनाशक, जो अब तक पूरे घटना – क्रम में 'निरापद'-सा ही बना रहा है । सामान्य आदमी के दिमागी पटल पर केवल 'मिक' (मिथाइल आइसो साइनेट) है, जिसे वह इतनी बडी तबाही का कारण मानता है । कीटनाशक से ध्यान हटा दिया गया, शायद जानबूझकर नहीं तो सत्तर प्रतिशत ग्रामीण किसान पूछते – "क्या कीटनाशक इतने खतरनाक होते हैं ? हमें अब तक अंधेरे में क्यों रखा गया ?" और जब हमारा सभ्रांत वर्ग उनके प्रश्नों के उत्तर देने के लिए बाध्य होता, तो खेतिहर कीटनाशकों से मुंह मोड लेते । समझने की बात है, 'मिक' उसी कीटनाशक परिवार को है, जो तीसरी दुनिया में हर वर्ष १०,००० व्यक्तियों की जान ले लेता है, और पौने चार लाख व्यक्तियों को गंभीर बीमारियों के मुंह में धकेल देता है । ये आंकडे विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट में प्रकाशित हुए हैं ।

PDF Compressor Free Version

१९५० के दशक से कीटनाशक दवाओं का इस्तेमाल फसलों की कीडों से सुरक्षा के नाम से प्रारम्भ हुआ था, जिसने अब रौद्र रूप धारण कर लिया है। अब धरती के चप्पे-चप्पे पर इस रसायन के प्रदूषण का साम्राज्य है। उत्तरी ध्रुव से दक्षिणी ध्रुव तक की यात्रा यह प्रदूषण कर चुका है। हवा, पानी, मिट्टी, सब इस प्रदूषण से सतृप्त हैं। ३० साल से कम अवधि में ही कीटकनाशक का प्रयोग १६५ गुना बढ गया है। डी. डी. टी. की हमारे यहां खपत ७५०० टन प्रतिवर्ष है। बहुत पहले ही यह सिद्ध हो गया था कि डी. डी. टी. शरीर में कैंसर को जन्म देती है, लेकिन उससे भी बढकर एक से एक खतरनाक कीटनाशक की खोज होती रही। बी. एच. सी., डी. डी. टी. से ढाई गुना अधिक जहरीला है, और इसकी वार्षिक खपत ३३,००० टन है। मिथाइल पैराथियान को डी. डी. टी. के मुकाबले २० गुना अधिक जहरीला माना गया है और इसकी प्रतिवर्ष खपत ३,००० टन है। २, ४–डी नामक खरपतवार-नाशक का प्रयोग भी हमारे यहां धडल्ले से होता है, जब कि पूरा विश्व जानता है कि इसके प्रयोग से धरती बांझ हो जाती है।

कीटनाशक या मनुष्यनाशक ?

कीटनाशकों को फसलों पर छिडका जाता है, या फिर सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग द्वारा मलेरिया के मच्छर मारने के लिए घरों में। फिर नदी, तालाब, समुद्र, बर्फ, हवा में कीटनाशी कैसे पहुंच गये ? केंकडे, सील, व्हेल, पेंग्विन पक्षी के शरीर में कैसे पहुंच गये ? दूध, मक्खन, अण्डे, मांस, मछली में कीटनाशी कैसे प्रवेश कर जाते हैं ? इन सबका जवाब खोजा है अमेरिका के दो मानवतावादी कीट-वैज्ञानिकों, डेविड पाइमेंटल और क्लाइड एडवार्डस ने। विश्वविख्यात "बायोसाइंस" पत्रिका में प्रकाशित इन वैज्ञानिकों के एक संयुक्त शोध-पत्र में बताया गया है कि जब कीटनाशक को फुहारा जाता है तो उसका मात्र एक प्रतिशत भाग उस लक्ष्य (कीट) पर काम करता है, जिसके लिए रसायन फुहारा गया है और बाकी ९९ प्रतिशत भाग दूसरे इकोतंत्रों में प्रदूषण के रूप में फैल जाता है।

PDF Compressor Free Version

इन वैज्ञानिकों की यह खोज कीटनाशकों के बारे में फैले-फैलाए गए भ्रमों को तोडनेवाली है और इससे सिद्ध होता है कि 'कीटनाशक' ९९ प्रतिशत प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से 'मनुष्यनाशक' है। पाइमेंटल और एडवार्डस के अनुसार कीटनाशक के प्रदूषक तत्व दूसरे इकोतंत्रों में घुसकर सामान्य खाद्य-शृंखला से जुड जाते हैं। इकोतंत्रों के जीवों की आनुवंशिक विविधता (जेनेटिक डायवर्सिटी) को नष्ट करते हैं, और जीवों के मूल प्राकृतिक गुणों में विकृतियां पैदा करते हैं। इतना ही नहीं, ये हमारे मित्र और शत्रु, दोनों प्रकार के कीडों पर समान रूप से प्रहार करते हैं। इनके छिडकाव से प्रारंभ में तो कीट-संख्या पर नियंत्रण होता है, किन्तु बाद में हानिकारक कीटों की संख्या में प्रस्फुटन होता है, दवाई का असर फैलने के बाद कीडे और भी हानिकारक हो जाते हैं।

कीटनाशक जब मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जाता है, यानी जब मनुष्यनाशक बन जाता है तो इसके बाद शुरू होता है क्रमिक मौत का सिलसिला। आर्गनोक्लोरीन किस्म के कीटनाशक शरीर में पहुंच कर चर्बी में संचित होते रहते हैं और १०-१५ वर्षों तक भी इनका विषयहीन पदार्थों में अपघटन नहीं होता। जब शरीर में इनकी मात्रा घातक स्तर तक पहुंच जाती है तो डिसेंट्री, दमा, हृदयरोग आदि अनेक रोगों को जन्म देते हैं। प्रकृति की सारी जैविक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने की कीमत पर हम कीटनाशकों का इस्तेमाल कर रहे हैं और भविष्य में यह कितना महंगा पडेगा, इस बात से अब कोई अनभिज्ञ नहीं रह गया है। विनाश की इस अंधी दौड में, जो विकास के रथ पर चल रही है, हमने ऐसी गति पकड ली है कि धरती ही हमारे पैरों तले से खिसकती जा रही है। कीटनाशी जहर को हमारे उस तंत्र पर बरसाया जा रहा है, जो पूरी मानव-जाति के जिन्दा रहने की पहली शर्त है, यानी कृषि-तंत्र।

फसलों में कीटनाशक दवाओं का छिडकाव किया जाता है जिसका सीधा प्रभाव मनुष्य के स्वास्थ्य पर पडता है। यही कारण है कि पाश्चात्य देशों में इन दवाओं के प्रयोग पर प्रतिबन्ध लगाया जा रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय विकास शोध-केन्द्र आटावा ने अपनी हाल की

PDF Compressor Free Version

रिपोर्ट में बताया कि करीब ७.५० लाख व्यक्ति इन दवाओं के जहर से पीडित हुए। विकासशील देशों के १०,००० से अधिक व्यक्ति प्रति-वर्ष इन दवाओं के जहर से मृत्यु को प्राप्त होते हैं। भारत में पिछले ३० वर्षों में इन दवाओं का उपयोग तेजी से बढा है। पांचवें दशक (१९५०-५५) में इनका उपयोग २,००० टन वार्षिक होता था, जब कि इस समय उपयोग की मात्रा ८०,००० टन वार्षिक है। एक भारतीय प्रतिदिन अपनी खुराक में करीब ०.२७ मिलीग्राम डी.डी.टी. ले लेता है, जो विश्व में सर्वाधिक है। विभिन्न सर्वेक्षणों से यह तथ्य सामने आया है कि केवल गेहू, चावल, बाजरा, ज्वार, मक्का, दालें, फल-सब्जी में ही नहीं, बल्कि बालकों को दिये जानेवाले दूध में भी डी. डी. टी. तथा अन्य जहरीली दवाओं का अंश पाया गया।

* *

जमीन की उपजाऊ शक्ति कृत्रिम खाद-आधारित सघन खेती द्वारा नष्ट कर दी जाती है तथा खेती-उपज को सबसिडी, घूस तथा भावों के फरक द्वारा सहायता देने का ढोंग किया जाता है। गांव की जनता को संतुष्ट रखने के लिये कारखानों का बना सस्ता माल, विलास की सामग्रियां, सिनेमा, रेडियो, मोटरगाडी और इसी तरह के अन्य अनेक साधनों का प्रचार किया जाता है। सर्वत्र सडकों तथा रेलों का जाल फैलाया जा रहा है, जिनके बिना भी गांव का अधिकांश जीवन सुखी रह सकता है; परन्तु इनसे शहरों के बडे कारखानों का हितसाधन होता है, अतः इन्हें देश में बढावा दिया जाता है। इस प्रकार गांव के लोगों को भ्रमित कर दिया जाता है, ताकि वे इन सबको प्रगति की निशानी मानने लगते हैं तथा अपने स्वयं के शोषण में स्वेच्छा से साधन बन जाते हैं।

— मो. क. गांधी

PDF Compressor Free Version

'नाडेप' कम्पोस्ट खाद

ना. दे. पांढरीपांडे

कम्पोस्ट खाद बनाने की इस पद्धति का नाम इसके आविष्कर्ता श्री. ना. दे. पांढरीपांडे संक्षिप्त के नाम पर है। यह कम-से-कम गोबर का उपयोग करके अधिक-से-अधिक मात्रा में खाद बनाने की पद्धति है, जो नाइट्रोजन प्रतिशत में अधिक होती है। 'नाडेप' कम्पोस्ट की पद्धति द्वारा २-३ जानवरों के गोबर से ही साल में ३०० टन खाद प्राप्त की जा सकती है। खेती के लिये अच्छी खाद मिलने के अलावा यह पद्धति एक लाभकारी धन्धा बन सकता है। एक व्यक्ति एक साल में यह खाद जमा कर रु. ४,६०० कमा सकता है।

कम्पोस्ट खाद बनाने का तरीका

कम्पोस्ट टांका – जमीन के ऊपर ईंट का एक आयताकार टांका बांध लें, जिसकी लंबाई १० फीट, चौडाई ६ फीट और उंचाई ३ फीट हो। ईंट की चुनाई मिट्टी से की जा सकती है। ऊपरी ईंट की एक तह सिमेंट में लें।

कम्पोस्ट टांका : परंपरागत तरीकों से खाद जमीन में खोदे गड्ढों में बनाई जाती है, इससे खाद-सामग्री पर पानी और मौसम के प्रभाव को रोका नहीं जा सकता। 'नाडेप' पद्धति में खाद जमीन पर बने ईंट के कम्पोस्ट टांकों में बनाई जाती है, जिससे खाद-सामग्री को बाहरी प्रभावों से बचाया जा सके और संचलित ढंग से पकने की प्रक्रिया बढ़ाई जा सकती है। यह पद्धति संपूर्णतया अप्रदूषणकारी है।

कम्पोस्ट टांका ऐसी जगह पर बनायें, जो सूखी रहती हो। टांका बनानेके स्थान को धुम्मस से ठोक कर सपाट बना लें। इस पर ईंट का एक आयताकार टांका बांधें, जिसकी लम्बाई १० फीट, चौडाई ६ फीट, और उंचाई ३ फीट हो। ईंट की चुनाई मिट्टी से की जा सकती है। यह टांका हवादार होना आवश्यक है, क्योंकि खाद-सामग्री को पकने के लिए कुछ मात्रा में हवा जरूरी है। टांका छेददार हो, इसके लिये बांधते समय ईंट की तीसरी कतार की हर दूसरी ईंट को निकालते चले जायें। टांका पूरा बनने पर आप पायेंगे कि हर छेद के बीच का अन्तर १ फीट' $\frac{1}{2}$ फीट होगा। नीचे के $\frac{3}{3}$ हिस्से में ही छेद रखें, ऊपरी ९" हिस्से में छेद की आवश्यकता नहीं।

इस टांके की अन्दर की दीवारों और फर्श को गोबर-मिट्टी से लीप दें। इस प्लास्टर को सूखने के बाद ही टांके का प्रयोग करें।

PDF Compressor Free Version

खाद के लिये सामग्री

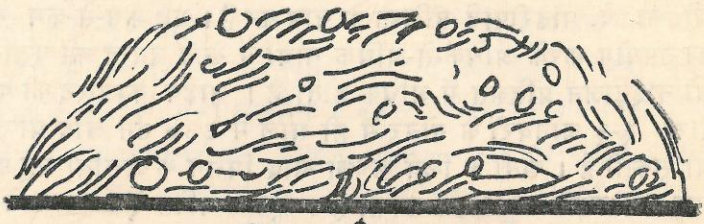

चित्र नं० २

चित्र नं० ३

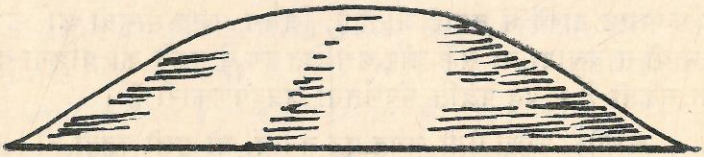

चित्र नं० ४

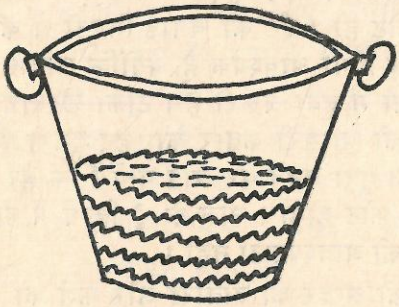

चित्र नं० ५

PDF Compressor Free Version

खेती तथा अन्य वानस्पतिक व्यर्थ पदार्थ, जैसे – सूखे हुए पत्ते, छिलके, डंठल, टहनियां, जडें आदि ।

मात्रा : १३५० किलोग्राम से १४५० किलोग्राम तक ।

गोबर-गैस संयंत्र से निकला गोबर का घोल भी उपयोग में लाया जा सकता है ।

गोबर मात्रा : १२ किलोग्राम ।

सूखी मिट्टी : खेत की या अन्य मिट्टी लें । उपयोग के पहले इसमें से कांच, पत्थर, ढेले, प्लास्टीक तथा दूसरे खाद न बननेवाले पदार्थ निकाल लें । साफ की हुई मिट्टी को बारीक कर लें या छान लें ।

मात्रा : १६७५ किलोग्राम ।

पानी : मात्रा १३५० लीटर से १४५० लीटर (खरपतवार के वजन) के बराबर, अच्छी कंपोस्ट खाद के लिये पशुओं के मूत्र को इकट्ठा कर उसका उपयोग करें । मौसम के अनुसार पानी की मात्रा कम या जादा करनी होगी – धूप कचरे के १.५ गुनी लगेगी ।

PDF Compressor Free Version

चित्र नं० ६

कम्पोस्ट टाके को भरने की विधि

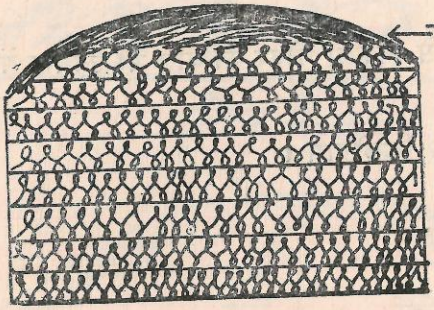

मिट्टी की सील

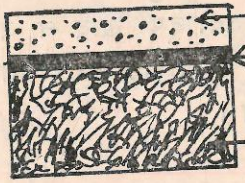

सूखी मिट्टी १-२ सें.मि.
गोबर घोल
वानस्पतिक व्यर्थ पदार्थ १५ सें.मि.

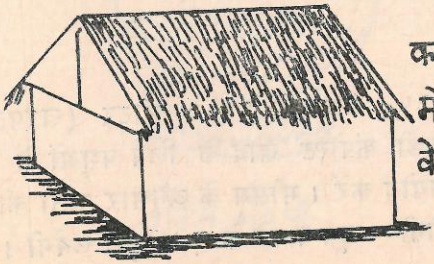

कम्पोस्ट टाके पर मौसम से बचाव के लिए शेड

PDF Compressor Free Version

कंपोस्ट टांका भरने की पद्धति

खाद-सामग्री पूरी तरह एकत्र करने के बाद नीचे बताये क्रम से टांका भरें, क्रम में बदल न करें। जिस तरह अचार डाला जाता है उसी तरह 'नाडेप' पद्धति से खाद-सामग्री एक ही दिन में पूरी तरह से टांके में भरकर सील कर दी जाती है। आधा काम छोड देंगे तो कंपोस्ट खाद बनाने की प्रक्रिया में बाधा आयेगी।

पहली परत (पहली भराई)

वानस्पतिक व्यर्थ पदार्थ : पहले टांके को ६ इंच तक वानस्पतिक व्यर्थ पदार्थ से भर दें। ३० घनफूट में १०० से ११० किलो की सामग्री आयेगी।

दूसरी परत (गोबर-गैस स्लरी १० लीटर)

गोबर का घोल : दस बाल्टी पानी, अर्थात् १०० किलो से ११० किलो में ४ किलो गोबर मिला लें। इस घोल को पहली परत के ऊपर इस प्रकार छिडकें कि पूरी वनस्पति-स्तर अच्छी तरह भींग जाय। गर्मी के मौसम में पानी का अंश अधिक रखें।

तीसरी परत

साफ सूखी मिट्टी : भींगी हुई वानस्पतिक परत पर आधा इंच की मिट्टी की तह बिछा दें। २½ घनफूट की इस परत के लिये ५०-६० किलो मिट्टी लगेगी।

टांके को इस प्रकार तीन परतों के क्रम से तब तक भरते चले जायें, जब तक सामग्री टांके के मुंह से १½ फूट ऊपर उठ न जायें, खोपडीनुमा आकार बनें। साधारणतया पहली भराई में १० से ११ परतों से टांका भर जायेगा।

अब भरे टांके को सील कर दें। भरी सामग्री के ऊपर तीन इंच की मिट्टी की तह जमा दें। इस मिट्टी की तह को गोबर-मिट्टी के मिश्रण से व्यवस्थित रूप से लेप दें। सूखने पर लेप में आयी दरारों और छेदों को गीले लेप से भर दें। इस गोबर-मिट्टी की सील से खाद-सामग्री के अंदर की नमी और गर्मी बाहर नहीं जायेंगी तथा सामग्री में मौजूद अमोनिया भी नहीं उडेगा।

PDF Compressor Free Version

दूसरी भराई – २० या २५ दिन के बाद टांके में भरी चीजें सिकुडकर टांके की ऊपरी सतह से ८-९ इंच नीचे बैठ जायेगी, तब पहिले भराई जैसे ही परते देकर टांकी के ऊपर १½ फीट खोपडीनुमा आकार में भरे और ३ इंच मिट्टी की परत देकर सील करें। दूसरी भराई में २ या ३ परते लगेगी।

पूरे भरे कंपोस्ट टांके से कचरा, गोबर और मिट्टी की परतों का विवरण।

कंपोस्टिंग

टंकी में ३-४ महिने का समय खाद को पूरी तरह पकने के लिये लगेगा। इस पूरे समय में खाद की टंकी को किसी तरह से हिलाने-डुलाने की जरूरत नहीं पडती। दो ही बातें ध्यान में रखने की है : एक तो टंकी में पानी की मात्रा ठीक बनी रहे, इसलिए अंदर का पानी उडने न पाये, इसलिए ऊपर का लेप व्यवस्थित रहे इसका ध्यान देना आवश्यक हैं। धूप व पानी न पडे इसलिए या तो ये टंकिया पेडों के नीचे बनानी चाहिए या फिर इन पर बांस की चटाई से छाया करके रखनी चाहिए।

तीन-चार महिने में खाद गहरे भूरे रंग की बन जाती है और इसकी सब दुर्गंध समाप्त होकर एक अच्छी खुशबू आती है। इस पकी खाद को एक जाली की छन्नी (एक फूट में ३५ से ४० छिद्रवाली) में छान लें। नाडेप कंपोस्ट खाद उपयोग के लिए तैयार है।

इस एक १८० घनफूट की टंकी में जितना खाद बनेगी, वह एक एकड खेत के लिए काफी है।

इसमें नाइट्रोजन, फास्फरस और पोटेशियम का प्रतिशत निम्नानुसार होगा :

नाईट्रोजन ०.५ से १.५ प्रतिशत, फास्फोरस ०. से ०.८ प्रतिशत
पोटेशियम १.२ से १.४ प्रतिशत

PDF Compressor Free Version

अंदाजन खर्च रु. – पैसे

वानस्पतिक व्यर्थ पदार्थ	१३५० किलो	(५ पैसे प्रति किलो)	६७-५०
गोबर	९२ किलो	(२० पैसे प्रति किलो)	१८-४०
मिट्टी	१६७५ किलो	(२ पैसे प्रति किलो)	३३-३०
मजदूरी १६ दिन की, दर रु. ८)			१२८-००
पूंजी पर घसारा –			४४-००
		जोड रुपये –	२९१-२०

आमदनी

१४५ घनफूट कीमत			३३२-५० पूर्ण पक्व
४२ घनफूट अर्धपचित खाद			८२-५०
१८७ घनफूट कम से कम		जोड रु.	४१५-००

शुद्ध लाभ : रु. ४१५-०० – २९१-२० = रु. १२३-८०

योग्य भराई एवं प्रक्रिया हुई तो ज्यादा से ज्यादा २१० घनफूट तक नाडेप कम्पोस्ट इस टांके से प्राप्त हो सकती है।

पूर्ण पक्व छनी खाद का प्रति घनफूट वजन १५ से २० किलो होता।

कुमारप्पा गोबरधन केंद्र,
पुसद–४४५२०४ (जिला यवतमाल, महाराष्ट्र)

* *

भोजन तुम्हारी औषधि हो और औषधि का तुम भोजन करो।

– हिप्पोक्रेट्स

PDF Compressor Free Version

जीवंत कृषि के बुनियादी लक्षण

(१) गतिशीलता

जो स्थिर है, वह शायद ही कभी जीवंत होता है । जीवंत वह है, जो आवश्यकता होने पर अथवा दबाव पडने पर टूटने की बजाय दृढतर बनता जाय ।

(२) समरसता

जो प्राकृतिकी पद्धतियों से संघर्ष की बजाय सहयोग की दृष्टि से फसलों का उत्पादन करें, पशु-पालन करें तथा खेती की साधन-संपत्ति का उपयोग करें ।

(३) विविधता

ऐसी प्रणाली, जो समुचित उत्पादन की विविध दिशाओं में प्रभावी हो ।

(४) पुनः पूर्ति

जो समुचित उत्पादन के लक्ष्य को प्राप्त करने तथा कायम रखने हेतु पुनः पूर्ति हो सकने वाले साधनों पर निर्भर रहे ।

(५) व्यक्तिगत लगन, विचार तथा नवीनता

ऐसी पद्धति, जिसमें तकनीकी मदद की बनिस्वत व्यक्तिगत लगन, नये विचार तथा शोध को ज्यादा महत्त्व हो ।

(६) संतुलित पोषण-दृष्टि

जीवंत कृषि वह है, जो समाज के स्वास्थ्य के लिये संतुलित भोजन के महत्व को स्वीकार करती है तथा यह मानती है कि उत्पादक या किसान की यह विशेष जिम्मेदारी है कि वह न केवल

PDF Compressor Free Version

प्रदूषण के खतरों को टालें, परंतु साथ ही यह प्रयास करें कि सामान्य जन का भोजन अच्छा, पोषक हो।

(७) सर्वसमावेशक सामाजिकता

जीवंत कृषि यानी सिर्फ फसलें पैदा करना या पशुपालना अथवा जमीन की सुरक्षा रखना नहीं है, उसमें तो जमीन पर जो लोग रहते हैं उन सबका समावेश होता है। साथ ही, जिस समाज में वह स्थित है उससे भी उसका संबंध आता है। जीवंत कृषि जीव-विज्ञान के साथ ही समाज-विज्ञान भी है।

(८) आध्यात्मिक

जो भी व्यक्ति ऐसी जमीन पर काम करते हैं या उसके पास रहते हैं वह उन सबके लिये आध्यात्मिक दृष्टि से प्रसन्नता प्रदान करनेवाली होती है। व्यक्तिगत अथवा सामूहिक तौर पर हम उस चीज को बचाये रखने का ज्यादा प्रयास करते हैं, जो हमें प्रसन्नता प्रदान करती है, बजाय उसके कि जो हमें विचलित करती है।

* *

स्वराज्य का अर्थ है – सरकारी नियंत्रण से मुक्ति।

हमारा ध्येय लोगों को सुखी बनाना और साथ-साथ उनकी संपूर्ण बौद्धिक और नैतिक यानी आध्यात्मिक उन्नति सिद्ध करना है। यह ध्येय विकेन्द्रीकरण से ही सध सकता है। केन्द्रीकरण की पद्धति का अहिंसक समाज-रचना के साथ मेल नहीं बैठता।

स्वराज्य का अर्थ है– सरकारी नियंत्रण से मुक्त होने के लिए लगातार प्रयत्न करना। फिर वह नियंत्रण विदेशी सरकार का हो या स्वदेशी सरकार का। यदि स्वराज्य हो जाने पर अपने जीवन की हर छोटी बात के नियमन के लिये लोग सरकार का मुंह ताकना शुरू कर दें तो वह स्वराज्य सरकार किसी काम की नहीं होगी।

('ग्रामराज' : ११ नवंबर, ८४ से) – मो. क. गांधी

PDF Compressor Free Version

पशु-आधारित अर्थ-व्यवस्था

यह स्पष्ट है कि सघन, छोटे पैमाने पर तथा विविधतापूर्ण खेती ही सही जीवन-पद्धति है, जो ग्रामोद्योगों द्वारा पोषित होगी। यह पद्धति ही अधिकतम जनसंख्या को विश्वासपूर्वक तथा असरकारी तरीके से स्वस्थ एवं सुखी रख सकेगी।

इसका फलितार्थ यह होता है कि मनुष्य और पशु, दोनों को यंत्र-शक्ति की प्रतिस्पर्धा से संरक्षण मिलना चाहिये। पशु-आधारित अर्थ-व्यवस्था ट्रेक्टर, डीजल इंजिन तथा बिजली के पम्पों की होड में नहीं टिक सकेगी।

एक किसान को अगर अपने लिये तथा अपने पशुओं के लिये खुराक शहरों से खरीदनी पडती है तथा अपनी खेती की आवश्यकताओं के लिये अगर वह शहरों पर निर्भर करता है तो उसका जीवन अर्थहीन बन जाता है।

– मो. क. गांधी

* *

PDF Compressor Free Version

नीम की खाद

देवेन्द्रकुमार

क्या आपको मालूम है कि जो नाइट्रोजन उर्वरक आप अपने धान की फसल को देते हैं, उसका सिर्फ आधा हिस्सा ही फसल ले पाती है? बाकी बेकार चला जाता है। इससे उर्वरक पर खर्च किया हुआ आधा पैसा बेकार जाता है।

इससे कैसे बचा जाए ?

भारतीय कृषि-अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली ने महंगे रसायनों तथा उर्वरकों की जगह देशी विकल्प निकाला है। परीक्षणों में पता चला है कि नीम की निमौलियों तथा यहां तक तेल निकाली हुई खली में भी वही गुण हैं, जो महंगे रसायनों तथा उर्वरकों में हैं।

नीम-खली मिलाना

निमौलियों तथा नीम-खली में जो रसायन हैं, वे नाइट्रोजन की छाजन को रोकते हैं। यूरिया पर नीम-खली की तह जमाने की आसान तकनीक निकाली गई है। इसके लिये एक ड्रम में १०० किलो यूरिया ले लेते हैं। एक किलोग्राम तारकोल को दो लिटर मिट्टी के तेल में धीरे-धीरे मिलायें। इसे ड्रम में डालकर फिर धीरे-धीरे हिलाते रहें, ताकि घोल यूरिया में अच्छी तरह मिल जाये।

ऐसा करने से यूरिया के दानों पर महीन परत जम जाती है और फिर इसमें २० किलोग्राम पिसी हुई बारीक नीम-खली मिलाते हैं और ड्रम को हिलाते हैं। अब नीम-खली की तह वाली यूरिया तैयार हो जाती है। यदि कम मात्रा में यूरिया लेना हो तो बडे प्लास्टिक के थैलों या मिट्टी के घडों में यह काम किया जा सकता है। घोल तैयार करने में तारकोल और मिट्टी के तेल की मात्रा का अनुपात १:२ होगा।

PDF Compressor Free Version

खेतों में परीक्षण

खेतों में किये गये परीक्षणों के आंकडों से पता चला है कि नीम-खली मिली यूरिया देने से चावल की प्रति हैक्टर ४.३ क्विंटल उपज बढी । इससे सामान्य तौर पर उर्वरक की नाइट्रोजन-क्षमता २० से २५ प्रतिशत बढ जाती है। परिणाम अच्छे होने के कारण यह तय किया गया कि इस तकनीक के फायदे दिखाने के लिये किसानों के खेतों पर ही प्रदर्शन किये जायें ।

सफल प्रदर्शन

१९८० में दिल्ली में छह प्रदर्शनों में यूरिया में नीम-खली मिला कर डाला और २० प्रतिशत कम नाइट्रोजन दिया तो औसत उपज प्रति हैक्टर ५.९ क्विंटल अधिक मिली, जिससे ६५१ रुपये ४० पैसे का अधिक मुनाफा हुआ । यह परिणाम देख कर किसानों ने इस तकनीक को अपने धान के खेतों में शुरू कर दिया है ।

उनको यह भी बता दिया गया है कि अगर वे तह जमाने को मुश्किल या महंगा पाते हैं तो वे १०० किलो यूरिया में २० किलोग्राम महीन पिसी हुई नीम-खली मिलाकर डालें । कुछ किसानों ने सवाल किया कि नीम-खली आसानी से मुहैया नहीं होती ।

यह भी बताया गया कि निमौलियों को सुखा लें और महीन पीस लें । दरअसल नीम-खली से नीम-चूर्ण ज्यादा शक्तिशाली है और सिर्फ १० किलोग्राम चूर्ण प्रति १०० किलोग्राम यूरिया के लिये काफी है । देखा गया है कि इतनी फायदेमन्द निमौलियों का सिर्फ १० से १५ प्रतिशत ही इस्तेमाल हो पाता है, बाकी जमीन पर मसल कर या सड कर खराब हो जाती हैं ।

आशा है कि निमौलियों के गुणों को आंकते हुए इनको उपयोग में लाने का आप पूरा प्रयत्न करेंगे । इससे जमीन में गिर कर बेकार जानेवाली निमौलियों का भी उपयोग हो जायेगा और उर्वरक पर आपका पैसा भी बचेगा ।

* *

PDF Compressor Free Version

बीजों के सौदागर

अनुपम मिश्र

अभी इधर हम हरी क्रांति के नुकसान-लाभ की कोई ठीक बहस भी नहीं चला पाए हैं कि उधर हरी क्रांति लादने वाले हम जैसे देशों को एक और भयानक धंधे में झोंकने की तैयारी पूरी कर चुके हैं। हरी क्रांति का यह 'दूसरा चरण' हमारे बीजों की नींव पर खडा हुआ है और इस चरण में उत्तरी दुनिया के अमीर देशों की कुछ इनी-गिनी कंपनियों ने कोई ५०० अरब रुपए लगाए हैं। कई देशों में धंधा करने वाली ये दादा कंपनियां बीज के धंधे में इसलिए नहीं उतरी हैं कि उन्हें दुनिया की खेती सुधारनी है, फसल बढानी है और भुखमरी से निपटना है, बल्कि इनका पहला और आखिरी लक्ष्य है दुनिया की खेती को अपने हाथ में समेट कर उसका फायदा अपनी जेब में डालना।

हरी क्रांति ने पिछले १४ सालों में अपना हल-बखर चला कर तीसरी दुनिया के देशों में इस नए बीज-धंधे को बोने के लिए खेत तैयार कर लिया है। 'ज्यादा फसल' देने वाले बीजों के साथ अनिवार्य रूप से आने वाली बनावटी खाद और कीटनाशकों के पिटारों ने इन दादा कंपनियों की आंख खोल दी है और इसलिए अब उनकी आंखों में खटक रहा है वह साधारण छोटा-सा देशी बीज, जो कभी भी उनको चुनौती दे सकता है। इसलिए अब उसको तीसरी दुनिया के हर खेत से हटाने और उसके बदले कंपनी के 'प्रामाणिक उत्तम बीज' ठूंसने की भारी कोशिश की जा रही है।

बीजों के भीमकाय सौदे को समझने के लिए हमें पहले बीज के रहस्य को समझना होगा। धरती के गिने जाने लायक कोई तीन लाख पौधों में से अब तक बस कोई ३०,००० पौधों का सरसरी तौर पर अध्ययन हो पाया है। इनमें से कोई ३,००० पौधों पर थोडा ज्यादा काम हुआ है। हमारी थाली, पत्तल में जो कुछ भी परोसा जाता है उसका ९० फीसदी बस केवल ३० पौधों में से आता है। इनमें भी केवल तीन

PDF Compressor Free Version

पौधे—गेहूं, चावल और मक्का—हमारे कुल भोजन का ७५ फीसदी भाग जुटाते हैं। लेकिन प्रागैतिहासिक लोग खाद के मामले में इतने गरीब नहीं थे। बीजों के जानकार बताते हैं कि हमारे पूर्वज कोई १५०० से २००० तरह के पौधों से अपना भोजन चुनते थे। पर फिर खेती की खोज के साथ-साथ पौधों की विविधता घटती चली गई और कुल मिलाकर खेती का इतिहास तरह-तरह के स्वाद की कंजूसी का इतिहास बन गया।

खाना जुटाने वाले पौधों के प्रकार जरूर सिकुडते गए-पर तीसरी दुनिया के देशों में इन सीमित फसलों में भी गजब की विविधता कायम रही। यह बहुत जरूरी थी। एक ही किस्म का गेहूं, धान या दाल मौसम के बदलते रूप, कीडे के हमले या अंगमारी जैसे फसलों के रोगों के आगे टिक नहीं सकते थे। इसलिए पिछले नौ हजार सालों में तीसरी दुनिया के किसानों ने आज से किसी भी कृषि-पंडित से ज्यादा अकल लगा कर इन गिनी-चुनी फसलों की हजारों किस्में खोजी थीं, उनको पाला था और पीढी दर पीढी उनको आगे बढाया था। अब यह बात भी सब लोग जानने लगे हैं कि आज गरीब माने जाने वाले देश बीजों की किस्मों के मामले में बहुत ही अमीर रहे हैं और आज के अमीर देशों की प्लेटों पर परोसा जाने वाला भोजन इन्हीं 'बीज-अमीर' देशों से लाया गया था। अमीर दुनिया में आज बोए जा रहे बीजों के इतिहास में झांकें तो हम भारत, बर्मा, मलेशिया, जावा, चीन, अफगानिस्तान, पेरू और ग्वाटेमाला व मैक्सिको के खेतों तक चले आएंगे।

पर आज 'बीज-अमीर' देश खतरे में हैं। अब तक हर खेत में फैली बीज की विलक्षण विविधता गायब हो चली है – हरी क्रांति के लिए रास्ता बनाने में। आज से कोई ८० साल पहले भारत में केवल धान की ही ३०,००० किस्में बोई जाती थीं। यानी हर दसवें-बारहवें खेत में धान की किस्म बदल जाती थी, बदल जाते थे कम या ज्यादा पानी सहने, कीडों, खरपतवारों से लडने के उसके गुण, उसका स्वाद। लेकिन अगले १५ सालों बाद हमारे पास सिर्फ १५ किस्में बच जाएंगी।

PDF Compressor Free Version

सैकडों सालों से अपनी तरह-तरह की प्याज के लिए प्रसिद्ध मिस्र में अब सिर्फ एक ही किस्म बाकी रह गई है : उन्नत गीजा ६ । सऊदी अरब ने तेल जरूर पा लिया है, पर पिछले ३० सालो में उसने जौ की ७० प्रतिशत किस्में खो दी हैं । हरी क्रांति के महावत से दोस्ती करने के चक्कर में इन सभी देशों ने पीढियों से सुरक्षित बीज-किलों की मजबूत दीवारें ढहाई हैं ।

'बीज-अमीर' देशों की किस्मों में घुन लग गया है अब । जिन 'बीज-गरीब' देशों के कारण घुन लगा है, अब उन्हीं देशों की सरकारें और दादा कंपनियां इन देसी बीजों को बचाने की आवाज लगाने लगी हैं । इसके पीछे भी उनकी नीयत अच्छी नहीं है । उनके यहां से बनी उन्नत किस्म की प्रजातियां भी उन्हीं के कीटनाशक दवाओं के बावजूद नयी तरह के कीडों के सामने गच्चा खा जाती हैं । ऐसे में उन्नत बीज के दबदबे को बनाए रखने और कृषि विज्ञान को बिजूका गाडे रखने के लिए उन्हें फिर से किसी पुराने मजबूत देसी बीज से संकर बीज बनाने की जरूरत आ पडती है । इसलिए देशी बीजों का भंडार बनाने का काम शुरू हो गया है ।

आज दुनिया भर में १६ केंद्रों में भारी सुरक्षा और भारी ताम-झाम के बीच देसी बीजों के बैंक बने हैं । इनमें से कुछ तो सीधे-सीधे दादा कंपनियों के बैंक हैं और जो कुछ संयुक्त राष्ट्रसंघ के खाद्य कार्यक्रम आदि जैसे संदेह से परे संगठन हैं, उनके भी अनुदान के इतिहास में जाएं तो दो-तीन 'दानवीर' दादा कंपनियां सामने आती हैं । संवर्धन की उनकी नीयत दो उदाहरणों में साफ हो जाती है । अमीर देशों में फलों का धंधा करने वाली 'युनाइटेड फूड कंपनी' ने पिछले दौर में केले की लुप्त हो रही किस्मों के संवर्धन का झंडा उठाया था । कंपनी ने केलों की तीन-चौथाई किस्मों की रज जमा कर ली । इससे उसे जो कुछ नए प्रयोग करने थे कर लिये और फिर पिछले साल इन्हीं दिनों में एकाएक कह दिया कि अब वह केलों की रज का संवर्धन बंद कर रही है । इसी तरह रबर टायर आदि का धंधा करने वाली फायरस्टोन कंपनी ने एशिया, ब्राजील और श्रीलंका से रबर की लुप्त

PDF Compressor Free Version

हो रही ७०० किस्मों की रज जमा की और फिर बहुत दुःख के साथ घोषणा की कि कुछ 'अपरिहार्य' कारणों से रबर-रज शोध बंद की जा रही है। ये उदाहरण हांडी के दो चावल हैं, बीजों के सौदागरों की पूरी हांडी ऐसे किस्सों के भरी पडी है

बीजों की रज पर कब्जे का मतलब है– आपके-हमारे खेतों में बोए जाने से लेकर काट कर बेचे जाने तक के हर फैसले पर किसी और का नियंत्रण। रज हथिया लो, सब कुछ हाथ में आ जाएगा। बीजों की रज में छिपी है विराट सत्ता और अथाह संपत्ति। लेकिन यह ऐसे ही नहीं मिलेगी, इसलिए जैसे मिलेगी, उसका भी इंतजाम किया जा रहा है। ये सब दादा कंपनियां अपने-अपने इलाकों में बीज-कानून पास करवा रही हैं। इससे इनके हाथों में किसी भी विशिष्ट किस्म के बीजों का एकाधिकार आ जाएगा––पौधों की आनुवांशिकता पर उनका हक हो जाएगा। वे इस पर अपनी कीमत लगा सकती हैं, रायल्टी कमा सकती हैं। "प्लांट ब्रीडर्स राइट' नामक यह बेहद खतरनाक कानून दुनिया के बीजों को इन कंपनियों की झोली में डाले दे रहा है।

बीजों में इन कंपनियों की रुचि जगने के कुछ और भी मिले-जुले कारण हैं। विलियम टेबेलस एंड कंपनी ने तो इस पूरे मामले पर एक मोटा पोथा ही तैयार कर लिया है––"द ग्लोबल सीड स्टडी" नाम के इस पौधे की कीमत है २५००० अमेरिकी डालर। पौधे के एक-एक शब्द से शानदार मुनाफे की फसल काटी जा सकती है तभी तो यह बिक रही है। बीजों में बढती रुचि का एक अंदाज इस धंधे के केंद्रीकरण से भी लग सकता है। दादा कंपनियां बीज के धंधे में लगी दो-चार छोटी कंपनियों को हर साल अपने में विलीन कर रही हैं। इग्लैंड में सन् ८० के अंत में 'प्लांट ब्रीडर्स राइट' कानून पास होने के आसपास एक बडी कंपनी ने कोई १०० छोटी कंपनियों को पूरा-पूरा खरीद लिया था। "अपनी बीज कंपनी कैसे बेचें ?" जैसी गोष्ठियां भी होने लगी हैं।

ये नए 'बीजपति' कौन हैं ? वही जो अब तक दवाओं, पेट्रोल, रासायनिक खादों और कीटनाशक दवाओं का धंधा करते थे। पर्यावरण

PDF Compressor Free Version

की बढती चेतना से इनकी बदनामी भी बढी थी, इसलिए अब ये अपना पैसा बीज जैसे 'साफ' धंधे में लगा रहे हैं। सीबा-गायगी, यूनियन कार्बाइड, सेंडोज, एस्सो, शैल देखते ही देखते इस धंधे में उतर आए हैं।

इस होड का हम सब पर क्या असर होगा ? सदियों से विकेंद्रित स्तर पर यानी अलग-अलग किसानों के घरों में बंडों, खंत्तियों में सुरक्षित बीजों की किस्मों का अपहरण होगा, और फिर इन्हीं में से कुछ किस्में छांटकर, उन्नत बनाकर हमें दी जाएंगी। पर दूल्हा अकेला नहीं आता, साथ पूरी बारात लाता है। तीसरी दुनिया के देशों में इससे रासायनिक खाद और कीटनाशक दवाओं का बाजार कोई दस गुना तक बढ जाएगा।

बीज-धंधे की बाढ आ रही है, पर हमने उससे बचने की अभी तक कोई तैयारी नहीं की हैं। १५ साल पहले देश के एक प्रसिद्ध (और अब बिल्कुल भुलाए जा चुके) धान-विशेषज्ञ डॉ० राधेलाल रिछारिया ने देशी धान की शानदार मजबूत व स्वावलंबी किस्मों की तरफदारी करते हुए विदेशी संकर किस्मों का विरोध किया था। विरोध का यह पहला अंकुर उसी समय मसल दिया गया। श्री. रिछारिया को धान-शोध के रायपुर और कटक केंद्रों से बाहर कर दिया गया। बहुत बाद में उन्हें म० प्र० सरकार ने अपना धान-सलाहकार जरूर बनाया, पर पूरे देश में खेतीबाडी की शोध चलाने या कहें चलवाने वालों को यह स्वीकार नहीं हुआ।

बीजों के सौदागरों के खिलाफ अब फिर से एक आवाज उठाने की कोशिश चली है। लेकिन यह आवाज कृषि-पंडितों की ओर से नहीं, कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओं की ओर से उठी है। प्रो० उपेंद्र बक्शी एक साल से इस सारे मामले को उजागर करने वाला एक खुला पत्र जगह-जगह भेज रहे हैं। मद्रास में 'द स्किल्स' नामक कलाकारों की एक संस्था ने बीजों के सौदागरों पर सुरुचिपूर्ण, लेकिन हिला देने वाले १५ पोस्टर बनाए हैं। इन्हें तैयार किया है चंद्रलेखा ने। चंद्रलेखा इन्हें

PDF Compressor Free Version

लेकर विभिन्न गैर सरकारी संस्थाओं, सभा-सम्मेलनों में दिखा रही है। अब तिलोनिया की एक सामाजिक संस्था के कुछ ग्रामीण कलाकार कठपुतलियों के जरिए राजस्थान में इसे उठाने जा रहे हैं।

जब तक अनाज के बारे में फैले-फैलाए गए कुछ भ्रम नहीं टूटते तब तक देसी बीजों की तरह इस देशी विचार को अनुकूल खेत नहीं मिल पाएगा। पहला भ्रम है आबादी का 'विस्फोट' और उससे निपटने के लिए हरी क्रांति का। दूसरा बडा भ्रम है कि अमीर देशों की भारी ऊर्जा जलाने वाली तकनीक अनाज के मामले में दुनिया को बेफिक्र कर सकती है। तीसरा भ्रम है कि खेती को एक बडे धंधे में बदलने वाली दादा कंपनियां अपने नए, उन्नत, एक से गुण (या अवगुण वाले) बीजों से हमें तार लेंगी।

खेती का पवित्र रहस्य और उसकी सृजनशीलता वहीं है जहां यह हमेशा से रही है–किसान परिवारों में। ये ही किसान धरती के बीजों को सुरक्षित रखे आ रहे थे, भविष्य में भी ये ही उन्हें सुरक्षित रख पाएंगे, बीजों के सौदागर नहीं।

* *

अधिक-से-अधिक मात्रा में उत्पादन करने की होड एक तरफ तो मनुष्य-जीवन के टुकडे कर रही है, परिवारों को छोटा करके तोड रही है तथा समाज-जीवन को अस्तव्यस्त कर रही है, दूसरी तरफ जमीन पौधों तथा पशुओं का उपोजाऊपन कम कर रही है। साथ ही अनेकानेक प्रकार की बीमारियों को बढावा देकर मनुष्य को औषधियों का गुलाम बना रही है। पश्चिमी सभ्यता के ह्रास तथा पुनर्निर्माण के अध्ययन में जमीन एवं स्वास्थ्य बुनियादी तत्व हैं।

– विल्फ्रेड वेलाक

PDF Compressor Free Version

बारानी खेती : दासी न बनने पाये

सरकार को इस बात का बहुत दुःख है कि ६ पंचवर्षीय योजनाओं के बाद भी ज्यादातर बारानी खेती को "लाभकारी" नहीं बनाया जा सका है। उसका कहना है कि बारानी खेती की जमीन में वर्षा के बाद नमी कायम रखना एक बडी समस्या है और इसमें फसल को कीडों से बचाना, फसल के दानों को पनपाना भी बहुत कठिन काम है। इसलिए इन दो कठिन मामलों पर किसानों की मदद करने के लिए हर जिले में एक-एक "विज्ञान-केंद्र" खोला जाएगा। अभी ऐसे केंद्र ८९ जिलों में हैं। इन केंद्रों के जरिए बारानी इलाकों में उम्दा बीज, खाद, कीडेमार दवाएं और आधुनिक कृषि की तकनीक पहुंचाई जाएगी, और इस तरह खेती को लाभदायक और वैज्ञानिक बनाया जाएगा।

उपजाऊ जमीन बरबाद

दिक्कत यहीं से शुरू होगी। हर चीज को लाभदायक और वैज्ञानिक बनाने के चक्कर में योजनाकारों ने और ज्यादातर उनके पीछे चलने वाले नेतृत्व ने कई अच्छे उपजाऊ इलाकों को बर्बाद किया है। जो प्यार अब बारानी खेती पर बरसता दिखने वाला है, वह आज तक तो सिंचित क्षेत्र पर बरसता रहा है। अधिक से अधिक खेतों को नहरों के पानी से सींचने के कारण हरी क्रांति लाने की कोशिश ने बारानी खेती की बहुत उपेक्षा की है। जिनकी आंखों में बडे बांध, बडी योजनायें बसी हैं उन्हें बारानी खेती पिछडी लगती है ऐसे इलाके, ऐसे किसान, पिछडे और बारानी ढंग की खेती में बोई जाने वाली फसले "परंपरागत" कहलाती हैं।

बारानी खेती के विकास की ताजी योजना "परंपरागत" और "आधुनिक" शब्दों के खतरनाक खेल से ऊपर नहीं उठती दिखती। इसलिए योजना बनाने और उसे चलाने वाले इस खेती के उद्धारक की तरह सामने आ रहे हैं। इसलिए वे बारानी में वर्षा के बाद नमी

PDF Compressor Free Version

सोखने के 'वैज्ञानिक' तरीकों से लेकर अच्छे "उन्नत" बीज लाने की बातें कर रहे हैं। बारानी खेती करने वाले किसान से या कहें कि हर किसान से कोई विशेषज्ञ यदि यह पूछेगा कि बारानी में वर्षा की नमी सोखना एक बडी समस्या है, तो वह हंसेगा। यह समस्या नहीं, यही तो तरीका है उस खेती का। तरीके को समस्या मानकर देखने लगे तो कुल खेती ही समस्या बन जाएगी।

बारानी खेती में वर्षा की नमी रोकने के लिए हर इलाके के किसानों ने अपने-अपने ढंग से शानदार तरीके निकाले हैं। इसका मुख्य आधार रहा है – ऊंचे-नीचे खेतों में मेड बांध कर बरसात का पानी रोकना। मध्य प्रदेश के एक बडे भाग में यह 'हवेली पद्धति' कहलाती है। यह खेती किसान, धरती और बाजार तीनों की जरूरत का ख्याल रखती है। बारानी खेती में बदल-बदल कर अपने क्रम से आने वाला फसल-चक्र धरती के उपजाऊपन का भी ख्याल रखता है। कुछ फसलें खेत से कुछ खास तत्व उधार लेकर पनपती हैं। तो उनके बाद आने वाली फसलें खेतों को फिर से वे तत्व वापस लौटाकर धरती के उपजाऊपन का पिछला हिसाब बराबर करने की कोशिश करती हैं, जैसे दलहन की फसलें। इस लेन-देन में जो भूल-चूक रह जाती है, उसे किसान कंपोस्ट और गोबर की खाद से पूरा करता है।

बारानी खेती मंडी के लिए भी अनाज देती रही है, बशर्ते वह मंडी लोगों का पेट भरने के काम आए। लेकिन तिजोरी भरने वाला बाजार हो, जैसा कि वह आज हो चला है, तो बारानी खेती इसमें मदद नहीं देती। अनाज की मंडी और खेती का धंधा चलाने वाले बाजार का फर्क किए बिना बारानी खेती को और देश के कुल उत्पादन में उसके योगदान को समझा नहीं जा सकता। बारानी खेती की राष्ट्रीय योजना में बताया गया है कि इस खेती से कुल खाद्यान्न का ४२ प्रतिशत उत्पादन हो रहा है। बडे-बडे बांधों से सिंच रही खेती से उपजने वाली ५८ प्रतिशत फसल कहां जाती है, इस बात को समझे बिना बारानी की ४२ प्रतिशत उपज का महत्त्व समझ में नहीं आ सकेगा।

PDF Compressor Free Version

देश के सिंचित इलाकों में पैदा हो रही फसल का एक बडा भाग रोकड, नकदी फसलों का है। रोकड फसल खाने के काम नहीं, तिजोरी भरने के काम आती है और इस तरह भरी हुई तिजोरी उन्नत बीज, बनावटी खाद, कीडेमार दवाओं, खरपतवारों को खत्म करने में, फिर खाली हो जाती है। इस तरह की आधुनिक खेती में कुछ थोडे से लोग कमाते हैं, शेष किसान गंवाते ही रहते हैं। यहां-वहां उभर रहे किसान आंदोलन या असंतोष और उसके पीछे खेती की लागत मूल्य के आधार पर फसल का दाम तय करवाने की मांग का क्षेत्रवार ब्यौरा देखें तो पता चलेगा कि ये सब ज्यादातर आधुनिक सिंचित क्षेत्रों में उभरा है। यह संयोग नहीं है। रोकड फसल को बोने, बेचने की मजबूरी से लेकर मोह तक का अनिवार्य नतीजा है।

गनीमत थी कि बारानी खेती का इलाका यानी एक तरह से तीन-चौथाई देश खेती को धंधे में बदलने वाली आधुनिक बुराई से बचा रहा है। इस खेती ने देश के उम्दा बीजों को काफी हद तक सुरक्षित रखा है। अब जब धीरे-धीरे हम इन बेशकीमती बीजों को खो रहे हैं तब उनकी कीमत मालूम पड रही है।

ये बीज हर तरह के मौसम, जमीन, समाज की जरूरत और स्वाद को पूरा करते हैं। फसल पर आने वाले संकट, हर रोग, कीडे, मावठे, कम-ज्यादा बरसात का ध्यान रखकर उनसे निपट सकने वाले बीजों का बहुत सावधानी से चुनाव किया गया था। ये उम्दा बीज नष्ट न हों, आगे आने वाली पीढी को ये सुरक्षित मिलें, इसके लिए इन कृषि-पंडितों ने हर रबी और हर खरीफ के मौसम में इन्हें बोया है। खेती के शानदार इतिहास को वर्तमान से भविष्य तक पिरोया है। गेहूं की जलालिया, खिबडू, शरबती, पिसी जैसी जातियां तब फिर याद आएंगी, काम आएंगी, जब भोपाल जैसी भारी कीमत चुकाने के बाद भी उन्नत गेहूं के बढते जा रहे रोगों को कीडेमार दवाएं थाम नहीं पाएंगी।

लेकिन एक तरफ खेती को बाकायदा धंधे में बदलने की कोशिशें विदेशी बनते जा रहे तन-मन और धन से बडे पैमाने पर जारी रहें

PDF Compressor Free Version

और दूसरी तरफ बारानी खेती की राष्ट्रीय पैमाने पर पीठ ठोक दी जाए तो इस खेती और उससे जुड़े किसानों की कमर टूटने से रुक नहीं जाएगी।

खेती-बाडी के अर्थशास्त्र पर हुए सैंतीसवें अखिल भारतीय सम्मेलन में कृषि-वैज्ञानिक स्वामीनाथन ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था कि खेती का मामला इतना गंभीर है कि उसको केवल किसानों के भरोसे नहीं छोड दिया जाना चाहिए। समाज के अन्य अंगों को उसकी मदद के लिए हाथ बंटाना चाहिए। लेकिन लगता है कि समाज के इन अन्य अंगों ने मदद का जो हाथ बढाया है उसने किसान को कुछ देने के बदले उससे काफी कुछ छीनने का ही काम किया है। बारानी खेती में मदद की नई राष्ट्रीय योजना के माध्यम से खेती मंत्रालय जमीन पर नहीं उतरा तो, डर इस बात का है कि वह किसानों की जमीन सरका देगा।

[पर्यावरण कक्ष की एक रिपोर्ट]

* *

कम्पोस्ट से हिन्दुस्तान की खेती को जिस बीज की बहुत जरूरत है, अच्छे रूप में मिल जाती है, इसलिए उसके ज्ञान का प्रचार आम जनता में होना निहायत जरूरी है।

१ सितम्बर, १९४९

— विनोबा

PDF Compressor Free Version

स्वस्थ नागरिक : स्वतंत्र देश

बनवारीलाल चौधरी

आपने क्या भोजन किया है, यह मालूम करके बताया जा सकता है कि आप कैसे हैं ? भोजन की गुणवत्ता अन्ततोगत्वा भोजन करने वाले के गुणों को, उसके स्वभाव को, उसके आचार-विचार को, प्रभावित करती है । मनुष्य का स्वास्थ्य तो स्पष्टतः भोजन के प्रकार से बनता-बिगडता है । आयुर्वेद में वात, कफ-पित्त के असन्तुलन को बीमारी का कारण माना है । निश्चय ही यह असन्तुलन भोजन से उत्पन्न होता है । तब फिर उसका सन्तुलन या पुनर्स्थापना भी भोजन में तदनुरूप परिवर्तन या सुधार करके की जा सकती है । इस रूप में भोजन एक प्रकार से औषधि ही बन जाता है । मनुष्य का भोजन और अन्य वनस्पतियां, जिन्हें जडी-बूटी के रूप में उपयोग करते हैं, कृषिजनित हैं । इस प्रकार सदियों या यों कहिये कि अनंत काल से कृषि और औषधियों का आपस में घनिष्ट सम्बन्ध रहा है ।

मानव के पोषण का स्रोत भूमि – धरती माता – ही है, जिस पर जीवन की निरन्तरता अवलम्बित है । पौधे और प्राणियों द्वारा भूमि की उर्वरकता का संश्लेषित किया रूप ही मनुष्य का भोजन है । अनन्त काल से पौधों ने मनुष्यों की कई बीमारियों और व्याधियों का इलाज प्रस्तुत किया है । एक क्षेत्र-विशेष के पर्यावरण में जंगली रूप में पनपे या काश्त किये देशज पौधों का उस क्षेत्र और पर्यावरण में औषधि के रूप में विशेष महत्व रहता है । इसी कारण पहले के वैद्य अपनी बगिया में या लोगों को बाडी में औषधोपयोगी पौधे लगाने का सुझाव देते रहे हैं । ग्राम रैसलपुर (जिला होशंगाबाद, म. प्र.) के कई घरों में एक स्थानीय वैद्य ने गूगल, वनतुलसी, तज, गुरबेल, कडुआ चिरेता, मरुआदोना, गौती-चाय, बाल आदि लगवाये थे । निशानी के रूप में आज भी इनमें से कुछ पौधे इक्केदुक्के घरों में मिलेंगे । कृषि और औषधि की यह एक-दूसरों पर आधारित, निर्भरता ने ही किसान

PDF Compressor Free Version

को, हलधर को प्रेरित किया और कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि कई डाक्टर और वैद्य आज भी भूमि की, खेती की ओर आकर्षित होते हैं।

स्वास्थ्य का आधार

दिनोंदिन उत्तरोत्तर रूप में यह माना जाने लगा है कि स्वास्थ्य का एक महत्वपूर्ण आधार-घटक स्वस्थ, पोषक, स्वादिष्ट और रुचिकर भोजन है। भोजन की गुणवत्ता का यह महत्व यदि निर्विवाद है, तब औषधोपचारक को इस बात पर विशेष ध्यान देना होगा कि उपभोक्ता को खाद्य पदार्थ किस स्थिति में (ताजे, बासी, सडे-गले, गंदे, आदि), किस रूप में और गुणवत्ता की किस कोटि में उपलब्ध होते हैं। दुर्भाग्य की बात है कि न वैद्य, हकीम और न डाक्टर भी इस ओर ध्यान देते हैं और न वे इसके लिये चिंतित ही हैं। सब बीमारियों का उत्तम एवं उपयुक्त इलाज स्वस्थ पौष्टिक भोजन को छोड कर दुनिया भर की औषधियां, विटामिन की गोलियां और पाचक चूर्ण देते हैं। यह पद्धति चिकित्सक के धंधे को अवश्य पोषक है, पर मरीज को नहीं।

अमेरिका में किये मानव-पोषण के एक अध्ययन से इस चौंकाने वाले निष्कर्ष का पता चला है कि सबसे अधिक मृत्यु-दर उन क्षेत्रों में पाई जाती है, जहां भूमि की उत्पादक शक्ति का ह्रास हो चुका है। हमारे अति भूक्षरण के क्षेत्र के आदिवासी और सघन जंगल में बसे बनवासी की मृत्यु-दर में भी संभव है, इसी प्रकार का अन्तर मिलें।

भूमि-शोषण

कृषि की वर्तमान नीति हर संभव उपाय से कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक उत्पादन लेना तथा अधिक-से-अधिक मुनाफा कमाना है। इस कमाई में उपज की गुणवत्ता, भूमि के क्षरण, भूमि का दिल टूटना, भूमि की भावी स्थिति आदि को ओर ध्यान दिलाना दकियानूसी और अवैज्ञानिक माना जाता है, पिछडेपन की निशानी माना जाता है। यह आर्थिक निचोडन या गलघोंटन की प्रक्रिया परोक्ष रूपेण निहित स्वार्थ द्वारा प्रेरित, सत्तात्मक दबाव का प्रतिफल है। मौन ध्वनि की किरणों के समान ही अदृश्य में यह घातक प्रभाव करती है। समाज इन प्रभावों से बेखबर होने से उत्पादन की चकाचौंध में घरफूंक तमाशा

PDF Compressor Free Version

देखता है, आनंद मानता है। इस रक्तवर्णीय क्रांति को हरित क्रान्ति का नाम दे, उससे असीमित काम लेना, लोगों को गफलत में डालना है।

तथाकथित वर्तमान वैज्ञानिक कृषि भूमि का अधिक-से-अधिक शोषण करने पर आधारित है। भूमि के शोषित होते रहने की भी एक सीमा होती है। फिर उसका दिल टूट जाता है। इस स्थिति के आने पर अधिक उपज लेने के लिये क्रमशः कई कृत्रिम उपायों का सहारा लेना पडता है और वर्ष-दर-वर्ष अधिक और अधिक प्रमाण में रासायनिक खाद, कीटनाशक औषधियां आदि का प्रयोग करना पडता है। यह ऐसी हालत बना देता है कि ज्यों-ज्यों दवा की त्यों-त्यों बीमारी बढती गई। इससे निष्कृति पाना कठिन हो जाता है।

सूक्ष्म तत्वों की कमी

वर्तमान सघन कृषि-पद्धति में मूलतः नत्रजन, स्फूर और पोटाश रसायन ही बाहुल्यता में रासायनिक मिश्रण के रूप में दिये जाते हैं। भूमि में प्रचुर मात्रा में इनकी उपस्थिति भूमि में गृहीत सूक्ष्म तत्वों को खींच उनका उपयोग कर लेता है और कुछ ही वर्षों में इन सूक्ष्म तत्त्वों की कमी प्रदर्शित होने लगती है। 'हीरा' सरीखी बौनी किस्म के गेहूं की सघन काश्त से ३-४ वर्षों में ही जस्तों की कमी आ जाती हैं। इस प्रकार क्रमशः अन्य सूक्ष्म तत्त्वों की कमी प्रदर्शित होने लगती है। मक्का की काश्त में ऐसे अनुभव पाये हैं कि जितने अधिक प्रमाण में उसमें स्फूर दिया जाता है उतने ही अनुपात में मक्का के दाने में जस्ता कम हो जाता है। यदि यह सामान्य रूप में होता हो तो इसका ग्राम की गरीब जनता के स्वास्थ्य पर, जो कि मक्का-ज्वार आदि मोटे अनाज पर आधारित है, बहुत ही खराब असर होगा।

सूक्ष्म तत्वों की कमी वाली स्थिति में पैदा किया अन्न, सागभाजी आदि का खाने वाले के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। डा. हापकिन्स ने यू. एस. डी. ए. के लिये किये अध्ययन में यह सिद्ध पाया कि लोगों की यह धारणा गलत है कि किसी भी प्रकार की भूमि, कीटनाशक औषधि, रासायनिक खाद आदि के प्रयोग से होने वाली फसलों में कोई अंतर नहीं पाया जाता है। भूमि के प्रकार और उसमें

PDF Compressor Free Version

पाये जाने वाले तत्वों का असर उगाई उपज, दूध, अण्डा, मांस आदि के प्रकार और गुणवत्ता पर होता है । गढी (जिला बालाघाट, म. प्र.) के डेरी-फार्म के दूध में, जहां की गायें खुले जंगलों में चरती थी, प्रचुर मात्रा में आयोडिन पाया गया था । कोलम्बिया (अमेरिका) के ब्राउन और स्मिथ ने यह प्रमाणित किया कि भूमि में सेन्द्रिय तत्व की मात्रा का सलगम, हरी भाजी आदि में पाये जाने वाले लोह के अनुपात पर अनुकूल प्रभाव पडता है । उपयुक्त प्रमाण में दिये सेन्द्रिय खाद वाली फसल में लोह की मात्रा अधिक पाई गई ।

संसार के सभी स्वास्थ्य वैज्ञानिक और शोधकर्ताओं ने यह प्रमाणित किया है कि पर्याप्त प्रमाण में जस्ता और मेगनीशियम सरीखे सूक्ष्म तत्व की उपस्थिति और मानव-स्वास्थ्य का सूक्ष्म, उत्कृष्ट एवं घनिष्ट सम्बन्ध है । आरोग्य शास्त्र के ग्रंथों में इस प्रकार के सूक्ष्म तत्व की कमी के परिणाम के रूप में शारीरिक और मानसिक बीमारियां होने के अनेक उल्लेख मिलते हैं । ये खामियां विशेषत: रक्ताल्पता, धमन, काठिन्य, प्रजनन-शक्ति क्षीणता, त्वचा-विकार, मनोविकलता मधुमेह और कैन्सर को प्रभावित करती है ।

कृषि की नीति

चूंकि हम भोजन मूलत: भूमि से ही प्राप्त करते हैं, स्वाभाविक ही हमारी कृषि की बुनियादी नीति लोगों को उत्तम पौष्टिक, स्वास्थ्य-वर्धक भोजन उपलब्ध कराने की होनी चाहिये । तदनुसार कृषक का कर्तव्य ऐसी खाद्य सामग्री उत्पादन करना होना चाहिये । खेती की नीति पेट भरने, पोषण उपलब्ध करने की हो, न कि पेटी भरने, बैंक-खाता मोटा करने की । कृषि के प्रति लोगों की दृष्टि अलग-अलग प्रकार की है, तदनुसार इसे विज्ञान, कला, उद्योग, व्यापार और जीवन का एक तरीका मानते हैं । यह इनमें से एक है, केवल एक ही नहीं है । और इस सब कुछ के साथ-साथ और भी कुछ है । यह है उत्तम प्रकार की एक राष्ट्रीय सामाजिक सेवा, जिसका लक्ष्य, ध्येय है समाज के लिये उत्तम पौष्टिक, स्वास्थ्यवर्धक भोजन उपलब्ध कराने के लिये राष्ट्रीय खाद्य भण्डारों को लबालब भरा रखना । यह कार्य खाद्य

PDF Compressor Free Version

निगम के बूते का नहीं है । राष्ट्रीय और सामाजिक भावना से ओत-प्रोत रहने वाला कृषक ही कर सकता है । यह बहुत महत्व की सामाजिक सेवा है, क्योंकि यह हर स्त्री-पुरुष और बालक के जीवन से सम्बन्धित है । उन पर इसका सीधा-सीधा प्रभाव पडता है । इसलिये शायद हमारे पूर्वजों ने कृषि-कर्म को उत्तम उद्घोषित किया है ।

कृषि के वर्तमान तथाकथित उन्नत तौर-तरीकों ने उसे क्रमश: एक संकटावस्था में पहुंचा दिया है । यही हाल भेषज का भी है । कृषि में आज स्पष्टत: दो तरीके सामने आये हैं । एक है, वर्तमान वैज्ञानिक माना जाने वाला आधुनिक तरीका । यह हाल में ही जन्मा है, नया ही है । यह औद्योगिक विकास पर आधारित है । इसमें प्रयत्न यह रहता है कि कम-से-कम समय में अधिक-से-अधिक अच्छे माल को अधिक-से-अधिक मुनाफा कमाते हुए तैयार माल में परिणत कर देना । इसमें दृष्टि अधिक-से-अधिक पैसा कमाने की है । चूंकि बाजार में अधिक माल ले जाने से ही अधिक पैसा मिलेगा और वहां खाद्य पदार्थ में निहित गुणवत्ता और पोषकता को कोई महत्व नहीं दिया जाता, अत: उत्पादक भाविक ही इनकी अवहेलना करेगा । उसे अपने दाम से काम, औरों का नाम बने या बिगडे उसे उससे क्या मतलब !

दूसरा तरीका है, परम्परागत खेती का । यह है शाश्वत अर्थशास्त्र का, जो समाज की भलाई का विचार करता है । इसका मूल आधार है नैसर्गिक मितव्ययता (हस्बैंडरी) के अनुरूप उत्तम प्रकार की गुणवत्ता और पोषक एवं स्वास्थ्यवर्धक फसल, दूध आदि पशुजनित पदार्थ प्राप्त करने के साथ-साथ न केवल भूमि का स्वास्थ्य बनाये रखना, वरन् उसे साल-दर-साल उन्नत करते जाना है । यह इतिहास का अभिज्ञान बनाये रखने और चढाते रहने से ही संभव है । चीन ने इसलिये अपनी कृषि के विकास का एक महत्वपूर्ण अंग, भूमि का दिल समृद्ध करने को माना है । अमेरिका में स्थापित (साईल बैंक) भूमि-बैंक (भूमि-अधिग्रहण बैंक नहीं) पद्धति भी इसी विचार से आरम्भ की गई है । प्रोफेसर डेअन चेपमेन (कारनेल यूनिवर्सिटी) ने अपने एक लेख (एन एण्ड टू केमिकल फार्मिंग), 'रासायनिक कृषि का पटाक्षेप' में विचार

PDF Compressor Free Version

व्यक्त किये हैं कि कृषि-उत्पादन बढाने की कृत्रिम रासायनिक पद्धति का परित्याग करने से एक नया सामाजिक अर्थ-चक्र आरम्भ किया जा सकता है, वह कृषि पर दी जाने वाली अनुदान की राशि में कमी, प्रति फार्म में मुनाफा में मुनाफा-वृद्धि, कृषि-प्रक्षेत्रों की संख्या और उनमें काम करने वालों की संख्या में वृद्धि, ग्राम या फर्मों के लोगों का शहर की ओर भागना कम होकर वे ग्रामाभिमुख होंगे। फसल-चक्र में सुधार और वृद्धि होने से भूमि का कटन और क्षरण कम होगा, एक प्रकार से रुक ही जायेगा। कृषिजनित पदार्थों की वाजिब कीमत की स्थापना एवं उपभोक्ता वस्तुओं और खाद्य पदार्थों की कीमत में न्यूनतम या पार्श्ववर्ती वृद्धि होगी।

रासायनिक खाद का पर्याय

हावर्ड द्वारा इन्दौर में किये प्रयोगों ने न केवल रासायनिक खाद का पर्याय सुझाया था, पर साथ-साथ कीटकों और बीमारियों की व्याधि से मुक्ति का मार्ग भी बताया था। वह सरल पर्याय है 'कम्पोस्ट', रासायनिक खाद के विपुल उपयोग के बदले में नगरों के सेन्द्रिय कूडा-कचरा, मल-मूत्र को भूमि में वापस लौटाने का चक्र स्थापित करना है। कूडे-कचरे के कम्पोस्ट में कृषि-उपयोगी सूक्ष्म तत्व प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। मलजलीय कीचड में तो ये इतने अधिक अनुपात में पाये जाते हैं कि कृषि-वैज्ञानिक इसका उपयोग करने में बहुत ही सावधानी रखने की चेतावनी देते हैं। निश्चयात्मक रूप से यह एक संपूर्ण खाद है।

कृषि और स्वास्थ्य : एक समन्वित दृष्टि

दुर्भाग्य से कृषि और स्वास्थ्य क्षेत्र में कार्यरत विशेषज्ञों ने भोजन, पोषण और आरोग्य एवं स्वास्थ्य की समस्याओं पर समग्रता से विचार नहीं किया है। विज्ञान ने ऐसी चुनौती उपस्थित की है कि अब इन विशेषज्ञों को समन्वित रूप से कार्यक्रम बनाना होगा। यदि ऐसा न हुआ, तो मनुष्य को कई प्रकार की नई-नई बीमारियों का सामना करना पडेगा और उनके इलाज के रूप में कई विषैली प्रतिक्रियात्मक

PDF Compressor Free Version

उपविष या स्वपाक का आविष्कार करना होगा। बीमरियों और मनुष्यों की यह एक ऐसी दौड है, जिसमें मनुष्य कभी भी विजयी नहीं होगा। बीमारी का पलडा हमेशा भारी रहेगा।

हमारा अस्तित्व इन आश्चर्यकारी उपविष और कीटनाशक रसायनों के भरोसे नहीं टिक सकता। वह केवल भूमि की उत्पादक क्षमता बनाये रखने पर निर्भर करता है। वही उसकी नीव हैं। आगामी पीढी के पोषण की मांग को पूरा करने का अन्य कोई तरीका है नहीं। इतिहास साक्षी है कि जिस राष्ट्र ने, जिस संस्कृति ने भूमि की अवहेलना की वह काल के गर्त में समा गई। भारतीय संस्कृति अभी टिकी है। 'कुछ बात है कि हस्ती, मिटती नहीं हमारी !' यह बात है कि अभी तक भारत ने धरती माता का दोहन किया है, शोषण नहीं। परन्तु अब हम ऐसे चौराहे पर पहुंचे हैं, जहां हमें सही मार्ग चुनना होगा। चुनाव हमें रीति का नहीं, नीति का करना है। प्रश्न पद्धति का नहीं, फिलासफी का, जीवन-मूल्यों का है। हमारे द्वारा निर्धारित जीवन-मूल्यों के अनुरूप ही हमें साधन और पद्धति का निर्णय करना होगा। नागरिकों का वर्तमान और भविष्य में उत्तम स्वास्थ्य बनाये रखने से अच्छी कोई कृषि-नीति हो नहीं सकती। स्वस्थ राष्ट्र ही स्वतंत्रता बनाये रख सकता है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता कायम रखने के लिये 'गरीबी हटाओ' सरीखे राजनैतिक नारों के स्थान पर हमारा उद्घोष हो –'स्वस्थ नागरिक : स्वतंत्र देश।'

* *

PDF Compressor Free Version

उपले या खाद ?

गाय, भैंस वगैरा जानवरों के पेशाब का हम कुछ भी उपयोग नहीं करते। इसलिए उससे गन्दगी भी बढती है। गोबर का उपयोग अक्सर उपले बनाने में करते हैं। गोबर का यह दुरुपयोग नहीं, तो कम से कम उपयोग है, इसमें हमें जरा भी शंका नहीं। यह तो चमडे की पट्टी के लिए भैंस को या अंडे के लिए मुर्गी को मारने का धंधा हुआ! उपले की आग हल्की मानी जाती है। हुक्के और चिलम पीने वाले इसका उपयोग करते हैं। पंजाब की यह मान्यता है कि उपले की आग से घी अच्छा बनता है। उसमें कुछ सचाई होने का संभव है। लेकिन ये सारी दलीलें हम गोबर का उपयोग उपले बनाने में करते हैं इसलिए की जाती हैं। अगर गोबर का हम पूरा-पूरा उपयोग करते हैं, तो धीमी आग के दूसरे साधन ढूंढे जा सकते हैं। अगर एक उपले का दाम एक पाई हो तो गोबर का पूरा उपयोग करने से एक उपले के गोबर की कीमत कम से कम दस गुनी होती है। और अगर परोक्ष नुकसान का हिसाब लगाने बैठें तो इसका अंदाजा ही नहीं लगा सकते।

— मो. क. गांधी

PDF Compressor Free Version

हवा, पानी और मिट्टी

देवेन्द्रकुमार,

औद्योगिक विकास, जो पिछले सौ सालों में संसार में हुआ, उसका सबसे बडा आधार कोयला और पेट्रोल रहा है। ये धरती में कार्बन के संचित ईंधन हैं, जो प्रकृति में सीमित मात्रा में रहते हैं तथा जितना उपयोग होता है उतने वे खत्म होते जाते हैं।

जिस देश में जितना यह कार्बन इस्तेमाल होता है उतना ही वह देश उद्योगों में आगे बढा है। ऐसे ही, जिन सालों में दुनिया में इनका उपयोग हुआ है, उत्पादन और उपभोग संसार के स्रोतों का अधिकाधिक हुआ है।

राष्ट्रसंघ की पर्यावरण संस्था ने १९८२ में हिसाब लगाया कि १९६० में संचित कार्बन का विश्व-उपयोग सालाना एक करोड टन (मैट्रिक) से भी कम था, जो १९४० तक बढकर १०० गुना बढ चुका था तथा पिछले ४० सालों में ५०० गुना, अर्थात् ५०० करोड टन तक पहुंच गया। इससे पेट्रोल-कोयले के सीमित भंडार तो खत्म होते जा ही रहे हैं, जो भविष्य की पीढियों को प्राप्य नहीं रहेंगे, पर कार्बन जलने से हवा में कार्बन डाय-आक्साइड गैस की मात्रा भी बढाते जा रहे हैं। १९५८ से १९७६ के बीच हवा में कार्बन डाय-आक्साइड की मात्रा ३१४ पी. पी. एम. से बढकर ३३२ तक पहुंच गई, जिससे स्पष्ट है कि पिछले सौ सालों से वह बढती ही जा रही है। उससे विश्व का सामान्य तापमान बढते जाने से मौसमों की गडबड से कई समस्याएं पैदा होंगी और बारिश में आम्लांश बढने से वनस्पति का नाश होगा। इसको रोकने के लिये जरूरी है कि –

१– अशाश्वत कार्बनयुक्त इंधन के स्थान पर शाश्वत प्राप्त ऊर्जा-शक्ति का उपयोग बढाया जाय, जैसे – जलविद्युत, सौर शक्ति, वायु-ऊर्जा, पशु-शक्ति आदि।

२– अधिकाधिक पेड लगाये जायें, जिससे वे वायु के कार्बन डाय-आक्साइड को लकडी में परिवर्तित करके उसकी मात्रा वायु में घटा सकें।

यदि हमारी हवा को शुद्ध रखना है तो औद्योगीकरण की पद्धति बदलनी होगी। बडे उद्योगों के स्थान पर विकेन्द्रित छोटे उद्योग बढाने होंगे और प्रकृति में वृक्षों की संख्या बढाकर ग्रामीणीकरण की ओर बढना होगा।

पानी

हर वर्ष सूर्य भगवान धरती से पांच लाख घनकिलोमीटर पानी

PDF Compressor Free Version

सोख लेते हैं। सागर से ८६ प्रतिशत और थल से १४ प्रतिशत और वर्षा के रूप में वापस करते हैं। थल पर जितना पानी उडता है उससे ३८,८०० घनकिलोमीटर अधिक पानी हर वर्ष मिलता है। पर इसमें से काफी वापस नदियों द्वारा समुद्र में चला जाता है। यह बह जाने वाला पानी भारत जैसे मानसून वाले देशों में अधिक और ठंडे देशों में कम होता है।

औद्योगिक देशों में ६० से ८० प्रतिशत पानी का उपयोग कारखानों में होता है और हमारे यहां १० से २० प्रतिशत। यह मात्रा बढती जा रही है, जिससे पानी की कमी हो रही है और प्रदूषण भी बढता जा रहा है। भारत में प्राप्त जल का ७० प्रतिशत पानी प्रदूषित पाया गया और इसके कारण पानी से संबंधित रोगों से ७.३ करोड कार्य-दिन बेकार जाते हैं।

पानी का उपयोग सिंचाई के लिये अधिकाधिक हो और धरती को हरा रखने में पानी मिलता रहे, इसके लिये उद्योगों और खेती के स्वरूप को बदलना होगा तथा नये तकनीक निकालने होंगे।

धरती

खेती से अधिकाधिक उपज लेने के लिये १९५० के बाद से रासायनिक खादों का उपयोग विश्व में नौ गुना बढ गया है और सिंचाई का क्षेत्र तीन गुना बढा है, पर साथ ही धरती की ऊपरी परत, जो वनस्पति के उत्पादन के लिये जरूरी है, कटती जा रही है। भारत में यह कटान हर वर्ष ४७० करोड टन मिट्टी की कटी जा रही है, जिससे जिस गति से उपज बढनी चाहिए, अब नहीं बढ रही और हमेशा के लिये खेतों का नाश हो रहा है। जिन देशों में अधिक सघन खेती की जा रही है, वहां मिट्टी भी उतनी ही नष्ट हो रही है। जैसे, अमरीका में ४४ प्रतिशत खेती की भूमि भीषण कटान से पीडित है। यदि इसको ठीक करना हो तो बेकार भूमि का वनोच्छादित करने के काम में लगें, इससे मिट्टी बनेगी। भारत में ५० लाख हेक्टर ऐसी भूमि को वृक्ष-खेती में परिवर्तित करने के काम में लिया जाय, तो २० लाख परिवारों की परवरिश भी होगी और प्रकृति भी ठीक बनेगी।

इस प्रकार हवा, पानी और मिट्टी को बचाने के लिये हमें आज जो अंधाधुन्ध उत्पादन बढाने की दौड चल रही है उसे रोकना होगा और उसके स्थान पर ऐसी पद्धतियां लागू करनी होगी, जो उत्पादन बढाने में प्रकृति का ह्रास न कर सके और उसे समतोल बनाने में सहायक हों। ग्रामोपयोगी विज्ञान इसी दिशा का नाम हैं। ※ ※

PDF Compressor Free Version

क्या कीटनाशक दवाएं अनिवार्य हैं ?

मीरा नंदा

भोपाल की दुर्घटना ने सारे संसार को स्तंभित कर दिया है। भोपाल-कांड के प्रति एक ओर हमदर्दी थी, चिंता थी, और दूसरी ओर वह इस बात का सूचक भी थी कि भले ही क्रूर हो, पर यह तो विकास की, हरित क्रांति की कीमत है। विकास करना चाहो तो यह कीमत चुकानी ही होगी। मीथील आइसोसाइनेट तो जिसने भोपाल में हजारों जानें लीं, आखिर इसी उदात्त उद्देश्य के लिए ही बनाई जा रही है कि इस विकासशील देश के लिए अत्यावश्यक कीटनाशक दवाएं तैयार की जा सकें।

विकल्प साफ है ? या तो मीथील आइसोसाइनेट जैसी जहरीली चीजों के साथ जीना सीखो या विकास की आशा छोड दो। दो में से एक चुनना होगा कि रासायनिक कीटनाशक का इस्तेमाल करें या भूख और रोगों का शिकार बनें। तो क्या विकास के लिए और कोई रास्ता है ही नहीं ? क्या इन यंत्र-देवताओं की दया पर जीना ही हमारी नियति है ?

कट्टर विश्वास

आधुनिक विश्व पर हावी वैज्ञानिक और टेक्नोलाजिकल विचार-धारा के अनुसार दूसरा कोई विकल्प नहीं है। इस विचारधारा के अनुसार उद्योगीकरण और प्रगति का, हिंसक तथा जहरीले साधनों द्वारा प्रकृति पर विजय पाने का दूसरा नाम ही विकास है। वह किसी भी विकल्प को प्रकृति-प्रेमियों के सुहावने सपने कह कर ठुकरा देती है।

कीटनाशकों को ही लें। खरबों डालर की पूंजी पर खडे इस उद्योग ने कट्टर विश्वास पैदा किया है कि खेती की पैदावार बढाने के लिए कीटनाशक दवाएं बहुत आवश्यक है। मिट्टी में ढेरों तरह के जहर नहीं भर दें तो भूखे कीटाणु सभी फसल और पेड-पौधों को

PDF Compressor Free Version

चट कर जायेंगे और संसार भूखमरी का शिकार हो जायगा। ऐसी स्थिति में अगर तितलियां ओझल हो गयी हों, शहद की मक्खियां मरने लगी हों और माताओं के दूध में जहर घुला हो तो क्या आश्चर्य ?

पुराने किसान अपने परंपरागत अनुभव से जानते हैं कि कीटाणु उन्हीं पौधों को लगते हैं जो कमजोर, अस्वस्थ हैं। इसलिए वे अपनी फसल को स्वस्थ रखने का पूरा प्रयत्न करते थे। इसके लिए मिट्टी की सुरक्षा, खरपतवार से बने कम्पोस्ट खाद का उपयोग, फसल-चक्र, परस्पर मदद पहुंचाने वाली फसलों का बारी-बारी से बोना आदि कई उपाय किया करते थे।

खेती की आधुनिक पद्धति ने यह सब बदल दिया। मिट्टी, हवा, पानी और फसल के बीच जो अन्योन्याश्रित, घनिष्ट नाता था उसकी जगह बेकस मिट्टी और रासायनिक द्रव्य भर रह गए। इन रासायनिक द्रव्यों से रची-पची फसल पर कोई कीडा, फफूंद या खरपतवार का हमला होता है तो उसके इलाज के रूप में कुछ और रासायनिक दवाएं छिडकी जाती हैं।

इस कृषि के नये फलसफे में फसल के स्वास्थ्य का एक ही तर्क-संगत लक्षण है और वह यह कि ज्यादा से ज्यादा पैदावार हो और जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी वह हाथ में आ जाए। वास्तव में फसलों का संकर बीज तैयार करने के प्रयत्न में हैं, जो मानवकृत पर्यावरण के अधिक अनुकूल हों। यह जो अधिक उपज देने वाली जातियां हैं, जिन्हें हरित क्रांति का देवदूत माना जाता है, मूलतः परंपरागत फसलों से किसी भी रूप में उत्कृष्ट नहीं है। उनमें खूबी यही है कि वे रासायनिक खाद, कीटनाशक दवाएं और नियमित सिंचाई वाली नयी शैली के ज्यादा अनुकूल हैं।

हाल के शोधों ने सिद्ध किया है कि आधुनिक खेती का पर्यावरण फसल के लिए विशेष सुविधाजनक होता ही हो ऐसा नहीं है। फ्रांस के नेशनल इंस्टिट्यूट फार एग्रोनामी रिसर्च के एक शोधकर्ता चाबोसुफ ने अपनी किताब "प्लांट्स मेड सिक बाई पेस्टिसाइडस" में लिखा है कि कीटनाशक दवाएं फसल के स्वास्थ्य को नरम बना देती हैं जिस कारण

PDF Compressor Free Version

फसलों पर हमला करते हैं, जिसमें एमिनो एसिड तथा अन्य तत्वों की भरमार है । कई नए कीटनाशक ऐसे हैं, जो भले ही फसल के सारे अंगों में न फैले, फिर भी पौधों के तंतुओं में घुस जाते हैं और प्रोटीन के संश्लेषण को रोक देते हैं । इससे एमिनो एसिड जमा होने लगता है, जिससे कीडे आकर्षित होते हैं । चाबोसुफ का कहना है कि यह एक कारण है, जिससे कीटनाशकों का उपयोग बढने के साथ-साथ कीटाणुओं का आक्रमण भी बढता गया है ।

इस चौंका देने वाले सिद्धांत से यह स्पष्ट हो जाता है कि क्यों ज्यादातर अधिक उपज वाली जातियां परंपरागत जातियों की अपेक्षा अधिक कीडों के शिकार हो जाती हैं । अधिक उपज वाली कुछ किस्मों में तो एमिनो एसिड की बहुतायत होती है । इसके अलावा अधिक उपज वाली फसलों को यूरिया और अमोनिया के रूप में ज्यादा नाइट्रोजन की जरूरत होती है । वे फसलों में घुल सकने वाली पोषक तत्वों को घुलने नहीं देते, एक जगह इकट्ठा कर देते हैं और उसे चाव से खाने के लिए कीडे दौड आते हैं ।

यद्यपि चाबोसुफ का यह सिद्धांत परीक्षण से सिद्ध किया जा सकता है और इसलिए पूरी तरह वैज्ञानिक है, फिर भी आज कृषि-वैज्ञानिक उसके समर्थन में आगे नहीं आ रहे हैं । कारण साफ है । अगर उसे सही बता दिया जाता है तो आधुनिक कृषि पर नये सिरे से विचार करना पडेगा तब फिर इन सब कृषि-उद्यमियों का क्या होगा ? खेती को धंधे में बदलने वाले लोगों का क्या होगा ?

फिर भी, देर से ही सही, अब कई कृषि-वैज्ञानिक फसलों की रक्षा में कीटनाशकों की वास्तविक उपयोगिता पर संदेह प्रकट करने लगे हैं । अमरीका की "एनवायर्नमेंटल प्रोटेक्शन एजेन्सी" के आंकडों के अनुसार अमरीका के किसान ३० साल पहले की तुलना में आज १३ गुना ज्यादा कीटनाशकों का इस्तेमाल करते हैं, जबकि उनकी फसलों का नुकसान इस अवधि में दुगुने से ज्यादा होने लगा है ।

अमरीकी के कीटनाशकों की अर्थनीति का अध्ययन करने वाले विश्वविद्यालय के दो वैज्ञानिकों ने १९८० में चेतावनी दी थी कि

PDF Compressor Free Version

देश में तत्काल सभी कीटनाशक दवाएं बंद कर दी जायं और कुछ पुराने तरीके अपनाये जाएं तो खाद्यान्न की कमी बिल्कुल होने वाली नहीं है। हां, निर्दोष फलों और सब्जियों की कमी जरूर होगी। आखिर में उन वैज्ञानिकों ने साफ कहा कि अमरीकी के प्रचलित प्रसाधन-साधनों के स्तर के हिसाब से नुकसान जरूर बढेगा, लेकिन कीडों के कारण होने वाले नुकसान की तुलना में वह कम ही होगा।

बेहद उपयोग

अमरीकी की जलवायु समशीतोष्ण है और भारत उष्ण प्रदेश है। इसलिए अमरीकी की तुलना में भारत में कीडों की किस्में और संख्या बहुत ज्यादा है। सरकारी आंकडों के अनुसार देश के कृषि-उत्पादन का १० से १५ प्रतिशत अनाज हर साल कीडे खा जाते हैं। आम तौर पर भारत में पेड-पौधों की रक्षा पूरी तरह रासायनिक कीटनाशक द्रव्यों पर ही निर्भर है। तीन बडी दवाओं—क्लोरीनेटेड हाइड्रोकार्बन (डी. डी. टी., बी. एच. सी.) आर्गेनो फासफोरस कम्पाउण्ड्स (मेलाथीयन) और कर्बामेट्स (कार्बारील) – का उपयोग लगभग एक हजार गुना बढ रहा है। यह १९६८ में प्रति हेक्टेयर ४०० मिलीग्राम था, १९७३-७४ में बढकर ३३६ ग्राम हुआ और १९८० में कुल ४३,००० टन कीटनाशकों का उपयोग किया गया, जिसमें २५ हजार टन केवल कृषि-क्षेत्र में किया गया। भारत में आज कुल ७७,८९७ टन कीटनाशक दवाइयां पैदा करने की क्षमता है और इस तरह भारत दक्षिण एशिया और अफ्रीका में सबसे बडा कीटनाशक-उत्पादक देश है।

कीटनाशकों का यह जाल कितना कारगर है? देश में हरित क्रांति के साथ-साथ कीटनाशकों के अधिकाधिक उपयोग करने की बात चली। केवल दो दशकों की अल्प कालावधि में ही भारत की खेती के इतिहास में अभूतपूर्व परिवर्तन आ गया। हरित क्रांति के साथ आयी आधुनिकता की लहर का परंपरागत फसलों की किस्मों, फसल बोने-काटने की तिथियों और दूसरे कई प्रकार की खेती के तरीकों पर भारी असर पडा। गेहूं, चावल तथा दूसरे अनाजों की अधिक उपज देने वाली किस्में शुरू में १९६४-६५ में केवल १०० हेक्टेयर में बोयी गई, पर

PDF Compressor Free Version

आज ये कोई ५ करोड ६० लाख हेक्टेयर भूमि में बोयी जा रही है। १९६६-६७ से १९७९-८० के १४ साल की अवधि में रासायनिक उर्वरकों का उपयोग सात गुना बढा है और एक-तिहाई कृषि-भूमि में सिंचाई की व्यवस्था की गई है। भारत की खेती में रासायनिक कीटनाशकों द्वारा की जा रही फसलों की रक्षा का परीक्षण इन सब दृष्टियों से करना होगा।

हरित क्रांति के अनेक विश्लेषणों से यह साबित हो गया है कि हरित क्रांति के शुरू के वर्षों में पैदावार की जो बढोतरी हुई थी वह बाद के वर्षों में थमने लगी। फिर बाद में पैदावार की दर घटने तक लगी, जबकि रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक दवाएं, सिंचाई और फारम के तरीके बेहद काम में लाए गए, जिस पर अधिक उपजवाली किस्मों, उनके साथ जुडे फसलों के बदले तरीकों और अत्यधिक सिंचाई आदि के कारण कीटाणुओं के हमले के भी नये-नये रूप प्रकट होने लगे।

कुल परिणाम

चुने हुए गेहूं और धान की अधिक उपज वाली किस्मों की एक फसली काश्त के कारण कई कीटाणु जो पहले बहुत गौण थे, अब भयंकर रूप धारण करने लगे, जैसे, रोरुई (एक गेहुंआ रोग, जिसे कार्नेल बंट कहते हैं) पहले गेहूं का एक फफूंदी वाला मामूली कीडा माना जाता रहा, पर पंजाब और हरियाणा में जब से अधिक उपज वाला बीज डब्ल्यू. एल. – ७११ बोया जाने लगा, तब से वह भयंकर बन गया है। इसी तरह १९७७–७८ में उत्तर के पहाडी इलाकों में जो सोनालिका और कल्याण सोना का व्यापक प्रचार हुआ और कुल पैदावार का ८५ प्रतिशत इन्हीं का था, उसके कारण पीली और भूरी फफूंदी (रस्ट) का रोग फैल गया। यह रोग इन बीजों की फसल को आसानी से लगता है। १९७० के मध्य में केरल में अधिक उपज वाला आई. आर. २६ किस्म धान आने से पहले यह भूरा टिड्डा एक मामूली-सा कीडा था, जो कहीं-कहीं दिखाई देता था, पर बाद में वह बेहद बढ गया। उसके छूने से जलन पैदा होती है। और वह पौधों के रेशों में रोग फैलाने वाला भयंकर कीडा साबित हुआ है। धान में लगनेवाला टंगरो रोग और सेब में लगनेवाली पपडी और उसे सुखा देने वाला रोग भी इस

PDF Compressor Free Version

तथ्य का उदाहरण है, जो पहले मामूली रोग था और बाद में भयंकर रूप में बदल गया। पहले बारिश से जहां सिंचाई होती थी वहां नहरी सिंचाई लागू करने के फलस्वरूप कई नये कीडों का आक्रमण बढ गया, जैसे बिहार के सहरसा जिले में जसीड, समूचे उत्तरी पट्ठी में बिहारी हेरी टिड्डी, गुजरात, महाराष्ट्र तथा दिल्ली में "आर्मी" कीडे।

अधिक उपज वाली किस्मों में कीडे लगने के अनेक कारण हैं। अभी तक ऐसे संकर बीज तैयार करना संभव नहीं हो सका है, जो अधिक उपज भी दें और कीटाणुओं का मुकाबला भी कर सकें। कीटाणुओं का मुकाबला करने की मौलिक क्षमता अधिकांश फसलों में एक से अधिक जनकों पर निर्भर है, जबकि दूसरे अपेक्षित गुण, जैसे-छोटा कद, नाइट्रोजन ग्रहण करने की क्षमता, जल्दी पकना आदि—एक ही जनक वाले बीजों में संभव है और संकर बीज बनाने वाले लोग इन बीजों को आसानी से चुन लेते हैं। परिणाम यह होता है कि संकर बीजों में आम कीटाणुओं से लडने का स्वाभाविक गुण नहीं होता। तिस पर उनका छोटा कद और पत्तों से भरे छिलके के कारण कीटाणु उनकी और ज्यादा आकर्षित होते हैं। दूसरा यह भी कि सघन रूप एक ही जाति की फसल लेते जाने से कीडों को साल भर भरपूर आहार मिलने लगता है।

अधिक उपजवाली फसलों पर कीडों का हमला ज्यादा होता है तो किसान उतना ही ज्यादा कीटनाशकों का इस्तेमाल करने लगते हैं, पर ये दवाएं कोई खास एक कीडे को मारनेवाली तो होती नहीं, आम जहर है। इसलिए घातक कीटाणुओं के साथ-साथ उन कीटाणुओं को खाने वाले दूसरी फसलों के मित्र कीटाणुओं को भी मार डालती हैं। इसका नतीजा जैसे ऊपर कहा है, कीडों की भरमार हो जाती है। शहद की मक्खी और तितली जैसे उपयोगी कीडे भी बचते नहीं हैं। (भोपाल की मिसाल सामने है। सेविन नामक कीडों को मारने के लिए मीथील आइसोसाइनेट का इस्तेमाल होता था और वही मधुमक्खियों को भी खत्म करने वाली प्रमुख दवा सिद्ध हुई।)

फिर एक बहुत बडी समस्या है कीडों की, दवा को प्रभावहीन बनाने की शक्ति ज्यों-ज्यों दवा का इस्तेमाल बार-बार होने लगता है,

PDF Compressor Free Version

त्यों-त्यों कीडों में दवा का प्रतिरोध करने की शक्ति पैदा होने लगती है । संयुक्त राष्ट्रसंघ की पर्यावरण कार्यक्रम संबंधी १९७९ की रिपोर्ट बताती है कि प्रमुख फसलों को लगने वाले प्रमुख कीडों में से ३६४ जाति के कीडों में इस समय नौ प्रमुख कीटनाशकों का प्रतिरोध करने की शक्ति आ गई है । भारत की सही स्थिति की जानकारी अभी प्राप्त नहीं है, लेकिन अनेक अध्ययनों से स्पष्ट है कि खेती में रासायनिक चीजों के अंधाधुंध प्रयोग के परिणामस्वरूप मनुष्यों और पशुओं की नसों में रोग फैलाने वाले कीटाणुओं में दवा-प्रतिरोधक शक्ति विकसित हो गई है ।

इस तरह के अति-उपयोग का प्रत्यक्ष परिणाम १९७६ के बाद फिर देश में मलेरिया का लौट आना भी है । एनोफिलिस मच्छरों की पंद्रह किस्में ऐसी हो गई हैं जिन पर डी. डी. टी. का कोई असर नहीं होता, और दूसरी पैंतीस किस्में डेलड्रीन को बेअसर कर रही हैं । डी. डी. टी. का प्रतिरोध करने वाले मच्छरों को नियंत्रित करने के लिए मेलाथियान, फेनिट्रोथियान और प्रोपोक्सर का छिडकाव बार-बार करना परना पड रहा है । गुजरात से जानकारी आयी है कि वहां उन मच्छरों पर मेलाथियान का भी असर नहीं हो रहा है ।

कीटनाशकों के निरापद उपयोग के बारे में विश्व स्वास्थ्य संगठन की १९७८ की रिपोर्ट के अनुसार, यह तथ्य निःसंदेह रूप से सिद्ध हो गया है कि "कोई भी कीटनाशक इतना सुरक्षित नहीं हो पाया है कि चाहे जैसा दुरुपयोग करने पर भी खतरनाक या प्राणघातक न हो", और इस देश में उनका दुरुपयोग होने से बचाने का कोई उपाय है नहीं ।

भारत सरकार ने कीटनाशक कानून (१९६८) तथा १९७४ के नोटिफिकेशन द्वारा जिन ३२४ कीटनाशकों को मंजूरी दी है, उनमें वे सभी कीटनाशक दवाएं शामिल हैं, जिन्हें विश्व स्वास्थ्य संगठन ने "अत्यधिक जहरीली" घोषित किया है । उस सूची में डी. डी. टी, बी. एच. सी., डेल्ड्रीन, एल्ड्रीन, हेपटाक्लोर और लेपटोफोस भी शामिल हैं, जिन पर पश्चिमी देशों में प्रतिबंध लागू है । अलडीकार्ब एक दूसरा जहर है, जो नाडियों को अत्यधिक जहरीला बनाता है । (भोपाल के यूनियन कार्बाइड संयंत्र में मीथील आइसोसाइनेट के साथ-साथ इसका

PDF Compressor Free Version

भी उत्पादन किया जाता था।) अमरीका और ब्रिटेन में पाइजन एक्ट तथा स्वास्थ्य और सुरक्षा एक्ट के अंतर्गत इस अलडीकार्ब के उपयोग पर प्रतिबंध है। उन्हीं लोगों को उसके प्रयोग की अनुमति दी जाती है जिनके पास पूरी सुरक्षा के उपाय मौजूद हैं और उसी आधार पर जिन्हें लाइसेन्स मिल जाता है। भारत में "खतरा" का बिल्ला चिपकाने के कानूनी आदेश के सिवाय इनसेक्टीसाइड एक्ट के अधीन और कोई सुरक्षा-उपाय लागू नहीं है। देश के अनपढ किसान उस खतरे की सूचना समझ भी नहीं पाते हैं।

जहर के प्रकार

एक तो कीटनाशकों के बारे में लोगों के मन में एक अंधविश्वास घर कर गया है और दूसरी ओर उनके दुरुपयोग के खिलाफ जो कानून बने हैं वे खाली कागजी शेर बन के रह गए हैं! उनके आधार पर सुरक्षा का कोई कारगर कदम उठा नहीं है। इन दोनों कारणों का नतीजा यह हुआ है कि आज हम जो भी चीज खाते हैं उसमें किसी-न-किसी रूप में जहर का अंश मौजूद होता ही है। उनसे हमारा सारा शरीर विषाक्त और दूषित हो गया है। मां का दूध, जो वास्तव में सबसे ज्यादा सुरक्षित आहार है, उसमें भी डी. डी. टी. का अंश पाया जाता है, वह भी कम मात्रा में नहीं, बल्कि बडों के लिए जो मात्रा निरापद मानी गई है उससे १८ गुना ज्यादा पाया जाता है।

कीटनाशकों के इस बुरे पहलू को समाज के सामने जब भी उजागर किया जाता है, तब भारत के विशेषज्ञ कीटाणु के समन्वित प्रबंध का सिद्धांत आगे कर देते हैं, जिसमें वनस्पति शास्त्र और सांस्कृतिक पद्धतियों का सहारा लिया जाता है और उसे पर्यावरण के लिए सुरक्षात्मक बताया जाता है। लेकिन यह तब तक बिलकुल बेमानी है जब तक वैज्ञानिक लोग "प्राणहीन मिट्टी और रसायन विज्ञान" के सिद्धांत को पूरी तरह ठुकरा नहीं देते और खेती को एक प्राणवान और समन्वित प्रक्रिया नहीं मान लेते। वास्तव में खेती ऐसी ही प्रक्रिया है। वैज्ञानिक और नीति-निर्माता, दोनों जब पर्यावरण और समाज, दोनों के प्रति पूरी तरह प्रतिबद्ध होंगे तभी "कीटाणुओं का समन्वित प्रबंध" वास्तविक होगा।

PDF Compressor Free Version

हमें कीटनाशकों, मीथील आइसोसाइनेट या भोपालों को बर्दाश्त नहीं करना पडेगा । विकास, हरित क्रांति और खाद्यान्न-उत्पादन के दूसरे तरीके हैं । वनस्पति शास्त्र-सम्मत पर्यावरण की दृष्टि से सुरक्षित और प्रकृति के अनुकूल तरीके प्रकृति-प्रेमियों के "सुहाने सपने" ही नहीं हैं । बडे पैमाने पर, प्रभावशाली ढंग से उनका प्रयोग, रासायनिक कीटनाशकों के बदले, अवश्य किया जा सकता है । चीन में कीटाणुओं का जिस ढंग से नियंत्रण किया जा रहा है, वह एक मिसाल है ।

चीन का अनुभव

फसलों और पेड-पौधों के रक्षण के लिए तथा रोगाणुओं का मुकाबला करने के लिए लगभग चार दशकों तक पूरी तरह कीटनाशक रासायनिक दवाइयों पर ही निर्भर रहने के बाद उनसे पर्यावरण पर तथा स्वास्थ्य पर होने वाले भयंकर परिणामों को संसार कुछ जानने-समझने लगा है । कीटाणु-नियंत्रण के इस एकांगी उपाय की व्यर्थता अब व्यापक रूप से सिद्ध हो रही है । प्रकृति के लिए स्वाभाविक और विशेष अनुकूल वैकल्पिक तरीकों की खोज, कम-से-कम प्रबुद्ध देशों में तो शुरू हो गयी है । फसल-चक्र मिट्टी और पानी का प्रबंध घातक कीटाणुओं को खत्म करने वाले कुदरती तरीके आदि सभी पुराने परंपरागत उपाय आज उस बहुचर्चित "समन्वित कीटाणु प्रबंध" कार्यक्रम के अंतर्गत नया महत्व प्राप्त करने लगे हैं ।

यह जानना बडा रोचक होगा कि १९४९ की क्रांति के बाद चीन के किसानों और वैज्ञानिकों ने कीटाणु-प्रबंध के इस नये पर्यावरण चेतना से जुडे तरीकों को बडे व्यवस्थित और संगठित रूप से कैसे अपनाया है । १९४० में एक अद्‌भुत रासायनिक द्रव्य के रूप में डी. डी. टी. की खोज हुई तो दुनिया के दूसरे सभी भागों में उसका उपयोग पूरे जोरशोर से होने लगा, पर चीन ने अपने परंपरागत कीटाणुनाशक तरीकों को कभी भुलाया नहीं । उन्होंने रासायनिक द्रव्यों को कीटाणु-नियंत्रण का मुख्य या एकमात्र उपाय कभी नहीं माना, वह भी अन्य अनेक उपायों में एक नये उपाय के रूप में देखा जाने लगा ।

चीन की आबादी संसार की कुल आबादी का पांचवां हिस्सा है । पर चीन अपने पूरे देश के सौ करोड लोगों को भरपेट खिलाने

PDF Compressor Free Version

और स्वस्थ रखने लायक पर्याप्त खाद्यान्न पैदा कर लेता है। कीटाणु-प्रबंध की चीन की नीति सूझ-बूझ वाली, किफायती और पर्यावरण के अनुकूल है और चीन के खाद्यान्न-स्वावलंबन में इस नीति का बडा प्रमुख हाथ रहा है। अलग-अलग फसलें बोना, ऊंचाई की जमीन तक सिंचाई-साधन पहुंचाना और खाद का पर्याप्त उपयोग आदि कार्यक्रमों द्वारा वे कोई १० करोड ७० लाख हेक्टेयर जमीन में से कुदरती तौर पर अधिकतम मात्रा तक पैदावार लेने लगे हैं।

बत्तखों का उपयोग

चीन के किसान एक ओर धान के खेतों में कीडे-मकोडों को खत्म करने के लिए बत्तखों को पालते हैं, तो दूसरी ओर आधुनिक एग्रीनो-फोफोरुआ रसायनों के स्वचलित छिडकाव का भी प्रयोग करते हैं। इस तरह पारंपरिक तथा आधुनिक, दोनों तकनीकों के संतुलित उपयोग का बडा सुंदर नमूना चीन में देखने को मिलता है। चीन में कीटाणु-नियंत्रण के लिए जो विविध और सूझबूझ वाले उपाय किए गए, उनमें वनस्पति शास्त्र, रसायन शास्त्र, पर्यावरण, मौसम विज्ञान, पानी का प्रबंध तथा सांस्कृतिक परंपराएं – इन सबके सिद्धांतों का ख्याल रखा गया। चीन में जाकर प्रत्यक्ष देख आने वाले पाश्चात्य विज्ञानियों द्वारा प्राप्त जानकारी तथा चीनी विज्ञानियों की रिपोर्टों पर से भी चीन द्वारा अपनाये गए, दुनिया के सबसे बडे और सफल "समन्वित कीटाणु प्रबंध" कार्यक्रम की झलक मिलती है।

चीन में कपास, दालें, धान, फल और सब्जी-जैसी फसलों तथा जंगलों में कीटाणु-प्रबंध का एक अनिवार्य अंग वनस्पति-नियंत्रण भी है। बर्र, ततैया, भौंरा, फफूंदी, कई बैक्टीरिया जो फसल को नष्ट करने वाले कीटाणुओं के जानेमाने दुश्मन हैं, इनको बडे वनस्पति उद्योगों में, शोध-संस्थानों की छोटी-छोटी इकाइयों में तथा कम्यूनों में बडे पैमाने पर पाला जाता है।

छोटे ततैये, जो त्रिकोग्रम्मा कहलाते हैं, चीन की खेती में बहुत लोकप्रिय कीडे हैं। ये फसल को नुकसान पहुंचाने वाले पतंगों का सफाया करते हैं। वे अपने अंडे पतंगों के लार्वा पर दे देते हैं और उन अंडों से बच्चे बनने की प्रक्रिया में पतंगे खत्म हो जाते हैं और फसल

PDF Compressor Free Version

उन खतरनाक पतंगों से बच जाती है । चीन के कीट-विशेषज्ञों ने उन ततैयों की बारह किस्मों की पहचान की है, जो यूरोपीय घुनों, धान के पत्ते काटने वाले कीडों, कपास में लगने वाली गुलाबी घुनों, गन्ने में छेद करने वाले कीडों तथा चीड में रोग फैलाने वाली टिड्डियों को चुन-चुन कर खत्म करती है ।

त्रिकोग्रम्मा जाति के ततैया का पालन उद्योग के स्तर पर, जंगली रेशम के कीडों के पतंगों के बडे अंडों पर या धान पर लगने वाली घुन के अंडों पर किया जाता है । चीनी विज्ञानियों ने रेशम के कीडे के एक अंडे पर १७५ त्रिकोग्रम्मा ततैया पैदा करने में सफलता पायी है, लेकिन औसत पैदावार एक अंडे पर ६० ततैयों की है । उन ततैयों के अंडे, जो रेशम के कीडे या धान के कीडे के पतंगों के अंडों में लिपटे होते हैं, किसानों को उपलब्ध कराए जाते हैं और वे अपने प्रोडक्शन ब्रिगेड के फसल-संरक्षक कर्मचारियों की मदद से उन ततैयों को उस वक्त फैलने के लिए खोल देते हैं जब घुन अंडे देने को होते हैं । आम तौर पर एक हेक्टेयर धान के खेत में डेढ लाख से छह तक तथा दूसरे अनाजों के खेत में प्रति हेक्टेयर २ लाख ३० हजार से ३ लाख १० हजार तक ततैये छोडे जाते हैं । वन-संवर्धन कार्यक्रमों में भी त्रिकोग्रम्मा ततैया विशेष रूप में बडी संख्या में काम में लाये जाते हैं ।

त्रिकोग्रम्मा कार्यक्रम के बारे में प्राप्त रिपोर्ट यही बताती है कि आम तौर पर, रासायनिक कीटनाशक दवाओं का उपयोग करते रहने की अपेक्षा कीटाणुओं को प्राकृतिक रूप से नियंत्रित कर लेना ही ज्यादा अच्छा है । उदाहरण के लिए, गुंआंगदांग प्रदेश में, जहां धान की कुल खेती का २० प्रतिशत भाग त्रिकोग्रम्मा से बचा लिया गया, वहां रासायनिक कीटनाशक दवाओं का उपयोग आधे से भी ज्यादा कम हो गया ।

कपास की रक्षा

कपास तथा खट्टी जाति के फल वाले पौधों को बचाने के लिए बडे पैमाने पर इस्तेमाल करने के लिए कुछ और कीडों को खोजा गया है । उनमें एक मुख्य कीडा एक विशेष ततैया है, जो कपास पर लगने

PDF Compressor Free Version

वाले गुलाबी कीडे को खाकर जीता है और दूसरा एक भौंरा है, जो पौधों में लगने वाले जूं और पत्ता खाने वाले कीडे का बडा दुश्मन है। केवल उस ततैये के प्रयोग के कारण कपास के गोदामों में ७० से ९० प्रतिशत तक संक्रामक रोग घट गए हैं।

कीटाणुओं के नियंत्रण के लिए बत्तखों को पालना चीन का अपना एक विशेष पारंपरिक तरीका है। ये बत्तख एक चुने हुए कीडों को चाव से खाती है, इसलिए धान के खेतों में सैकडों की संख्या में इन बत्तखों के बच्चे जमा कर दिए जाते हैं। इसकी एक बढिया व्यावहारिक मिसाल के रूप में गुंआगदांग प्रांत का दविसआ कम्यून है। यहां ३९०० हेक्टेयर धान के खेत हर साल २ लाख २० हजार बत्तखों के पालन से बचाये जाते हैं, ये बत्तख पहले से ८५३ समूहों में कम्यून द्वारा तैयार की जाती है। यहां घातक कीटाणु ६५ से ७० प्रतिशत तक घट गये हैं। मुख्य तो बत्तख ही हैं। उनके जोड में त्रिकोग्रम्मा ततैया और दूसरे वनस्पति-पोषक उपायों का भी इस्तेमाल किया जाता है। इन्हीं बत्तखों की मेहरबानी है कि जहां १९७२ में ७५,४७२ कि. ग्रा. कीटनाशक दवाएं छिडकी जाती थी, वहां १९७४ में उनकी मात्रा घटकर ३४,११२ कि.ग्रा. हुई और १९७५ में केवल ६,७०० कि. ग्रा. रह गई। यह कार्यक्रम किसानों में बहुत लोकप्रिय है और स्वाभाविक ही बत्तखों के लिए भी बडा प्रिय है।

चीन में एक ओर कीडों को खाने वाले पक्षियों को बढावा देने के साथ ही साथ दूसरी ओर फसल को नुकसान पहुंचानेवाले पक्षियों के खिलाफ भी अभियान चलाया गया है। कहीं-कहीं तो उसे अति-उत्साह में आकर पक्षियों का अंधाधुंध संहार करने के बुरे परिणाम भी भुगतने पडे हैं। उदाहरण के लिए, एक बार चीन ने अधिकृत रूप से घोषणा कर दी कि युरोपियन किस्म की गोरैया चार बुराइयों में से एक है, तो उसे बिल्कुल मिटा देने का अभियान चला और वह खत्म भी हो गई थी। लेकिन उसके न होने से होने वाले नुकसान का अंदाज होने पर बाद में उन्हें विदेशों से आयातित किया गया और बडी सावधानी से उनकी हिफाजत की गई।

PDF Compressor Free Version

कीटाणुओं के नियंत्रण के लिए एक और उपाय के रूप में कई तरह के बैक्टीरिया और फफूंद का निर्माण किया गया, जो रोग फैलाने वाले कीटाणुओं में रोग पैदा करते हैं। ऐसे जीवाणु पैदा करने वाले बैक्टीरिया लाखों टन पैदा किए जाते हैं। ये बी. टी. (बैसिलस तुरंजीनसिस) कहलाते हैं। चावल, दालें, कपास, सब्जी तथा जंगलों को घातक पतंगों के लारवा से बचाने के लिए बी. टी. का व्यापक प्रयोग किया जाता है और संशोधनों द्वारा कोई १२ किस्म के बी. टी. तैयार किये जा चुके हैं।

बी. टी. का प्रयोग

प्राप्त रिपोर्टों के अनुसार बी. टी. के प्रयोग के कारण चीड में लगने वाले पतंगे ९० से १०० प्रतिशत तथा गोभी में लगने वाले आर्मी वर्म ८० से १०० प्रतिशत खत्म हो गए हैं। दालों में लगने वाली घुन को खत्म करने वाली फफूंद का बडे पैमाने पर प्रयोग किया गया। त्रिकोग्रम्मा के साथ-साथ इन दोनों सेंद्रिय जीवाणुओं का इस्तेमाल लगभग सभी प्रमुख फसलों में किया जाता है। रिपोर्टों से पता चलता है कि इन बैक्टीरियों को पैदा करने वाले शोध-केन्द्र जगह बदल-बदल कर कई कम्यूनों में लगाये जाते हैं, ताकि स्थानीय उपयोग के लिए बैक्टीरिया वहीं तैयार किए जा सकें।

वनस्पति शास्त्रीय तथा अन्य उपयुक्त तरीकों के व्यापक उपयोग और उनके प्रचार-प्रसार की बातों को देखते हुए यह मान लेना ठीक नहीं होगा कि चीन में आधुनिक रासायनिक कीटाणुओं का उपयोग होता ही नहीं, उल्टे क्रांति के तुरंत बाद चीन ने टिड्डी-नियंत्रण कार्यक्रम के अधीन डी. डी. टी. और बी. एच. सी. का बडे पैमाने पर उत्पादन शुरू किया और कुछ ही अरसे में अपनी जरूरत के लायक कोई १०० प्रमुख कीटनाशकों के उत्पादन में वह स्वावलंबी हो गया। लेकिन इन रासायनिक दवाओं के उपयोग के साथ ही पर्यावरण-रक्षा के प्रति पूरी सावधानी बरतने में चीन संसार के किसी भी राष्ट्र के मुकाबले ज्यादा विवेकपूर्ण रहा है, बहुत ही संयम से काम लेता रहा

PDF Compressor Free Version

है। जहरीलेपन के तथ्यों से वे लोग बराबर सबक सीखते रहे, कीट-नाशकों के कारण पैदा होने वाली पर्यावरणीय समस्याओं से सजग रहे और उन समस्याओं को घटाने की दृष्टि से अपनी नीतियों को बराबर सुधारते रहे।

पहली बार जब देखा कि टिड्डियों को खत्म करने में डी. डी. टी. और बी. एच. सी. का चमत्कार असर होता है, वे बहुत खुश हुए और उनका उपयोग आंख मींच कर अंधाधुंध करते गये। १९५२ में चीन में ६० हजार टन बी. एच. सी. और ४३ हजार टन डी. डी. टी. पैदा किया। उसके बेहद इस्तेमाल से उनके अनुभव में आया कि जहर बहुत फैल रहा है और पर्यावरण दूषित होने के साथ कीटाणुओं पर दवाएं बेअसर हो रही है। १९७५ में दवाओं पर पूरी तरह प्रतिबंध लगाने की बात सोची गयी और कपास तथा तंबाकू की फसल में बहुत कम मात्रा में उनका उपयोग करने की छूट देकर बाकी सभी फलों और सब्जियों में उनके इस्तेमाल पर पूरी पाबंदी लगा दी गयी।

१९५० में ही राष्ट्रीय स्तर पर निर्णय लिया गया था कि साइकोडीत वर्ग के कीटनाशकों (अलड्रीन, हेप्टाक्लोर, एनड्रीन और क्लोरडेन) का उत्पादन खेती में उपयोग करने के लिए कतई न किया जाय, क्योंकि उनका असर लंबे अरसे तक बना रहता है और वह बहुत जहरीले हैं।

चीन में मुख्य रूप से कीटनाशकों के रूप में आर्गेनी फासफारेस के निकल्स का ही उपयोग किया जाता है। ३० से भी ज्यादा उन दवाओं का व्यापारिक उत्पादन होता है, उनमें से ज्यादातर दवाओं में जहरीले तत्व कम-से-कम होते हैं। वहां तो ट्रिक्लोरफोन, डिक्लोरवोस फासमेट, फेनिट्रोथियान और मैलाथियन-जैसे निरापद कीटनाशकों का उपयोग "समन्वित कीटाणु प्रबंध" कार्यक्रम के अन्तर्गत किया जाता है। जहरीली मीथील पैराथियान और डेमोटोन दवाओं का उपयोग एक कपास के सिवाय बाकी सभी फसलों में पूरी तरह प्रतिबंधित है।

चीन में कार्बामिट्स खास लोकप्रिय नहीं हो पाए हैं। दालों और कपास में केवल कार्बरील का इस्तेमाल व्यापक रूप से होता है और

PDF Compressor Free Version

यह माना जाता है कि मनुष्यों और पशुओं के लिए ज्यादा हानिकारक नहीं है। लेकिन शहद की मक्खी पर उसके जहर के प्रभाव को लेकर काफी चिंता हो रही है और किसानों को सख्त हिदायत दी गई है कि उस दवा के छिडकाव के समय शहद की मक्खियों को बाहर जाने न दें। ज्यादा जहरीली दवाओं – अलडीकार्ब, कार्बोफूरन और मीथोमील को बिल्कुल ही तैयार नहीं कर रहे हैं।

दवाओं के सुरक्षित उपयोग के नियमों पर कडाई से अमल किया जाता है। पैराथियान और मीथेल पैराथियान जैसी ज्यादा जहरीली दवाओं के इस्तेमाल का काम अच्छे प्रशिक्षित और अनुभवी कर्मचारियों को ही सौंपा जाता है। समुचित साधन, सुरक्षात्मक मुखौटे और कपडों का इस्तेमाल अनिवार्य करने की दृष्टि से कृषि-मंत्रालय ने कडे नियम बनाये हैं। हवाई जहाजों द्वारा हवाई छिडकाव को तो बिल्कुल रोक ही दिया गया है, क्योंकि उससे सभी कीटाणु – घातक और पोषक – दोनों मर जाते हैं। कीडे जहां पैदा होते हैं उन जगहों पर गर्मी द्वारा उनको मारने का इलाज हर एक को अवश्य करना होता है। जहां भी संभव हो वहां वनस्पति शास्त्रीय और पारंपारिक कीटनाशक उपाय ही काम में लाये जाते हैं। कहीं-कहीं उनके पूरक के रूप में थोडा-बहुत रासायनिक कीटनाशकों का भी उपयोग कर लिया जाता है।

हालांकि कभी-कभी विफलता भी आती है और पर्यावरणीय समस्या खडी हो जाती है, फिर भी चीन का कीटाणु-प्रबंध दुनिया के किसी भी राष्ट्र की तुलना में कई गुना अच्छा है, स्वस्थ है और युक्ति-संगत है। यद्यपि चीन में व्यापक रूप से काम आने वाले वनस्पति शास्त्रीय कीटाणु-नियंत्रण तरीके उनके अपने विशेष उपाय हैं, उन्हीं के खोजे हुए हैं, फिर भी वे वहीं तक सीमित नहीं है। त्रिकोग्रम्मा और बी. टी. की कीटनाशक क्षमता सारी दुनिया में प्रसिद्ध है। लेकिन हां, उतने बडे पैमाने पर उनका उपयोग चीन में ही देखा जाता है।

वनस्पति-संरक्षण का कार्य पूरी तरह विकेंद्रित किया गया। हर उत्पादन ब्रिगेड में एक वनस्पति-संरक्षण अधिकारी होता है, जिसकी

PDF Compressor Free Version

मदद में एक जानवरों का डाक्टर और एक सामान्य प्रशिक्षित (बेर फुट) डाक्टर रहता है। वे किसानों को कीटाणु संबंधी समस्याओं की सही जानकारी देते हैं और कीटाणु-प्रबंध के तरीकों का प्रचार करते हैं। कई कम्यूनों की अपनी अनुसंधानशालाएं हैं जहां सूक्ष्मदर्शक यंत्र कीटों की पहचान संबंधी संदर्भ-ग्रंथ, रोगग्रस्त पौधों के नमूने और मुख्य-मुख्य कीटों के जीवन-चक्र संबंधी पोस्टर मौजूद हैं। समय-समय पर वनस्पति-संरक्षक जीवाणु पैदा करने की सुविधाएं भी कम्यूनों को दी जाती है।

चीन ने निःसंदेह रूप से सिद्ध कर दिया है कि ऐसे अनेक विकल्प हैं जो व्यावहारिक रूप से पूरी तरह उपयोगी हैं और प्रकृति के अनुकूल हैं। पर इस तरफ संसार का पूरा ध्यान अभी नहीं गया है। रासायनिक कीटनाशकों के अति-उपयोग के कारण संकटग्रस्त संसार के लिए चीन के अनुभव बहुत लाभदायक हो सकते हैं।

* *

कम्पोस्ट के काम को उत्तेजन देने के लिए गांधीजी के जन्मदिन से एक सप्ताह मनाने की कल्पना अच्छी है। हिंदुस्थान को बाहर से अनाज मंगवाना पडता है, इससे अधिक शर्म की बात और क्या हो सकती है? अनाज बढाने के सब तरीकों का हम उपयोग करेंगे, तो हिंदुस्थान आज की दुगुनी जनसंख्या का पोषण कर सकता है। कम्पोस्ट खाद से हिंदुस्थान की खेती को जिस चीज की बहुत जरूरत है, वह अच्छे रूप में मिल जाती है, इसलिए उसके ज्ञान का प्रचार आम जनता में होना निहायत जरूरी है।

—विनोबा

PDF Compressor Free Version

भारत में गोपालन : एक दृष्टि

बनवारीलाल चौधरी

विनोबाजी ने गो-सेवा कार्यक्रम को एक नया आयाम दिया है, उनके आवाहन ने गो-सेवा को कृषि के एक पूरक धन्धे से उठाकर राष्ट्रीय कर्तव्य की श्रेणी में पहुंचा दिया है। गोवध-निषेध संविधान के निदर्शक सिद्धांत का अंग है और गोरक्षण उसको पालने हेतु जनता द्वारा किया जाने वाला अभिक्रम का क्रियात्मक रूप है। गोरक्षण हो, और उसके साथ ही साथ गाय का आर्थिक एवं उत्पादक महत्व बढे, इसके सतत प्रयत्न होने चाहिये, अन्यथा गाय भार रूप हो जायेगी।

गोपालन का भारतीय रूप

भारत में गाय एक परिवार के सदस्य के रूप में रखी जाती है। हिन्दू समाज में गाय को मां का दर्जा प्राप्त है, गोवध को पाप माना जाता है। सामान्यतः भारतीय किसान अपनी खेती के साथ-साथ एक-दो गायें भी रख लेता है, सामान्य दृष्टि से घरेलु खर्च हेतु दूध प्राप्त करना एवं बछडे, बैल प्राप्त करना है। ग्रामों में भूमिहीन मजदूर अपनी आमदनी को आसरा देने की दृष्टि से गाय पालते हैं। परिवार के वृद्ध लोगों को गाय अप्रत्याशित रूप से सहारा देती है। बूढे लोग बैठे-बैठे गाय की देखभाल करते हैं एवं चारा, कांदी आदि अपनी सामर्थ्य के अनुसार ला देते हैं, हाथ फेरते हैं और फलस्वरूप गाय स्वस्थ रहती है, अधिक दूध देती है। ग्राम-परिवार के लगभग हर वृद्ध से गाय जुडी है। गाय और गोपालक का एक-दूसरों का परस्परावलम्बन है। वे एक-दूसरों को पोषण और संरक्षण और आर्थिक सामर्थ्य देते हैं।

गोपालन की यह पद्धति दुग्ध-व्यवसायी गोपालन से भिन्न है। यहां दृष्टि पर्याप्त मात्रा में दूध प्राप्त करना है। गाय को जूठन, घर में दाल की भूसी, फुलसन आदि देकर उसका पालन करना है। खेतों में और उसकी मेंढ पर एवं रास्तों की बाजुओं में उगी कांदी का आसरा लेते हैं। वह एक ऐसी जीवित साधन है जो घास-फूस, पत्ते आदि को दूध में परिणत कर देता है। गाय एक तरह से स्वआधारित है।

PDF Compressor Free Version

भूमिहीन मजदूर की इस प्रकार से पाली हुई गाय से वर्ष में लगभग १०० किलो दूध एवं उसके गोबर से उपले के रूप में वर्ष भर के लिये ईंधन प्राप्त होता है। इसके अलावा बछडे-बछडियां भी मिल जाती हैं, उन्हें बेचकर वह सौ-पचास रुपये वार्षिक कमा लेता है। वर्षान्त के गोबर से वह थोडा-बहुत खाद भी बना लेता है, इससे भी उसे तीस-चालीस, यहां तक कि पचास रुपये तक आमदनी हो जाती है। इस प्रकार एक गाय भूमिहीन मजदूर को वर्ष में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से ५०० रुपये की आमदनी देती है।

सर्वांगी गो-नस्ल

भारत की सांस्कृतिक, आर्थिक और धार्मिक स्थिति के अनुरूप गो-नस्ल का सर्वांगी होना आवश्यक है। सर्वांगी याने ऐसी नस्ल, जिसके बछडे अच्छे बैल बनें और बछडियां अच्छी दुधारू गाय। गो-नस्ल का एकांगी विकास का कहीं-कहीं अवश्य चमत्कारी रूप दर्शित हुआ है, परन्तु समग्र राष्ट्र को वह हितकर न होगा। सर्वांगी गो-नस्ल प्राप्त करने के लिये उपयुक्त प्रजनन-नीति अपनाना आवश्यक है।

गो-हेडी (खेड) : भारत में कई स्थानों पर बडे-बडे हेडी हैं। जंगल के क्षेत्र में आज भी लोग बडी संख्या में जंगल के घास-चारा के आधार पर हेड पालते हैं।

सौराष्ट्र के कई गोपालक गो-हेड के लिए आसपास के इलाकों में फैले हैं। पवनार, वर्धा के पास एक गो-हेड पालक से प्राप्त सरसरी सूचना से पता चला कि – (१) वे गोपालन पर खर्च नहीं के बराबर करते हैं। (२) जिस किसान के खाली खेत में हेड बिठाते हैं, रात को विश्राम करते हैं उससे पैसा लेते हैं। हेड खेत में गोबर, पेशाब करता है, इसका खाद के रूप में महत्व है। (३) दूध रोज का रोज स्थानीय शहर को पहुंचा देते हैं या बचे दूध का खोवा या घी बनाकर बेचते हैं। नर बछडों को बेचते जाते हैं, केवल नंदी (सांड) हेतु एक-दो अच्छे और दूधारू गाय के बछडे पालते हैं। इनको ये दूसरे हेडों से अदला-बदली करते रहते हैं।

ऐसे गो-हेड में २००-३०० गायें, बछडियां होती हैं। एक हेड को एक दो संयुक्त परिवार मिलकर रखते हैं। ऐसे एक गीर हेड की वार्षिक आमदनी लगभग पचास हजार से एक लाख रुपये तक होती है।

PDF Compressor Free Version

यह घुमन्तु हेड है । गोशाला आदि का निर्माण नहीं किया जाता है । हेड पर व्यवस्था एवं चारा-दाना का खर्च नहीं के बराबर है । कभी-कभी औषधियों पर खर्च करते हैं । साधारणतः इन गोपालकों को गायों का सामान्य बीमारियों के इलाज का अनुभव है । देशी पद्धति से सस्ते में इलाज कर लेते हैं ।

दुग्ध-व्यवसायी पद्धति

दूध के व्यवसाय हेतु वर्तमान तथाकथित सुधरी पद्धति में अत्यधिक दूध देने वाली गायें पाली जाती हैं । दूध शहरों की मांग की पूर्ति के लिये है । मूलतः गायों और बछडियों के लालन-पालन पर ध्यान दिया जाता है । ऐसी अत्यधिक दूध देने वाली विदेशी नस्ल के नर दोयम दर्जे के होते हैं । डेयरी उद्योग हेतु पाले हेड के नर बछडे अभी तक तो कसाई खाने जाते रहे हैं ।

इस पद्धति से पाली गायों को रातब (दाना) उनके दुग्ध-उत्पादन के हिसाब से दिया जाता है । रातब में वे ही दाल और अनाज उपयोग में लाते हैं, जो मनुष्यों का भी भोजन है । यह पद्धति एक तरह से मनुष्य और गाय में भोजन हेतु स्पर्धा खडी कर देती है, जो भारत सरीखे प्राचीन कृषि-देश को हानिकारक है । यह पद्धति ही "गाय को बचाये या इन्सान को" – ऐसा प्रश्न खडी कर देती है ।

धनवालों का धन्धा

दुग्ध-व्यवसायी पद्धति का गोपालन सम्पन्न, धनी व्यक्ति ही कर सकते हैं । अत्यधिक दूध देने वाली एक भी संकर गाय को पालने का अर्थ है पांच हजार रुपये की लागत लगाना । यह अधिकांश वर्तमान गोपालकों की सामर्थ्य से परे है । अतः इस पद्धति का "श्वेत-क्रान्ति" के नाम पर तेजी से राष्ट्रव्यापी प्रचार और फैलाव हुआ तो गोपालन भी गरीब व्यक्ति से छिन जावेगा । गरीब गोपालक का वही हाल होगा, जो बाटा, फ्लेक्स और प्लास्टिक चप्पल-जूतों के उत्पादकों ने चर्मकार का किया है ।

PDF Compressor Free Version

निर्धन का आसरा

भारत की गोपालन की साधारण प्रचलित रीति में वह गरीब और निसहाय का आसरा बनती है। इस पद्धति के आधार पर ही भारत में दूध की नदियां बहती थी, परन्तु इसकी अवहेलना होने से, इस पर राष्ट्र-स्तर पर ध्यान न दिये जाने से इसमें खराबी आयी है और गो-नस्ल में बिगाड हुआ। इसे सुधारने हेतु निम्नलिखित उपाय सुझाये जा रहे हैं :

१. नस्ल में हो रहा बिगाड रोकने के लिये जितने भी खराब दर्जे के सांड गांव-गांव में हैं, खस्सी किये जावें।

पशु-चिकित्सा विभाग के बूते की यह बात नहीं है। 'बुरडोझी', खस्सी करने के यंत्र का उपयोग सरल है। हर गांव में एक-दो व्यक्ति गायों की देशी, ग्रामीण पद्धति से इलाज करने में निपुण होते हैं। इन लोगों को इस यंत्र का उपयोग सिखा दिया जाय। तीन दिन का प्रशिक्षण इसके लिये पर्याप्त होगा। हर ग्राम-पंचायत या हर बडा ग्राम ऐसा यंत्र रखें। ग्राम की अच्छी दुधारू गाय के अच्छे गुणवान नरों को बचाकर बाकी के बेकाम सांडों को खस्सी किया जावें। उन्हें सक्रिय बनाकर उसे सघन रूप से क्रियान्वित किया जावें।

विजातीय संकर-प्रजनन

देश में विदेशी नस्ल के वीर्य द्वारा विजातीय संकर-प्रजनन एक दुष्ट चक्र के रूप में कई निहित स्वार्थों के कारण तेजी से स्थापित किया जा रहा है। इसके लिए व्यवस्था है और प्रलोभन भी दिया जाता है। यदि हम सचेत न हुए तो यह हमारी उत्तम गो-नस्लों को नष्ट कर देगा और पूरे देश में जगह-जगह टेलर नस्ल सरीखे हेड हो जावेंगे। सभी सजग वैज्ञानिकों की चेतावनी के बावजूद यह कार्य दावानल के समान बढाया जा रहा है। कृषि गो-सेवा संघ सरीखी संस्थाओं को इसका स्पष्ट रूप से विरोध करना चाहिए। हमारी गोशालाओं को इससे तत्काल मुक्त हो जाना चाहिए। कस्तूरबाग्राम कृषि-क्षेत्र ने ऐसा कदम उठाकर न केवल लाभ ही लाभ अर्जित किया बल्कि एक उत्तम प्रामाणिक देशी नस्ल के हेड की स्थापना में भी सफलता प्राप्त की है। हाथ-कंगन को आरसी क्या ?

PDF Compressor Free Version

गायों की बढती संख्या पर रोकथाम करना आवश्यक है। यह गोप्रजनन-विज्ञान के क्षेत्र का विषय है। प्रजनन में शोध द्वारा ऐसी नस्ल निर्मित की जाये, जो कि दो कामी हो और वर्ष-ब्यात अर्थात हर वर्ष जननेवाली न होकर उसका ब्यात तीन वर्षों का हो एवं वह एक ब्यात में एक हजार दिन दूध दें। केवल ९०-९५ दिन ही सूखी रहें। पशु-प्रजनन वैज्ञानिक यह कर सकते हैं, समय अवश्य लगेगा।

मृत जानवरों का चमडा, खाल, खुर, सींग, बाल, मांस और हड्डियों का समुचित व्यवसायी उपयोग हो। बोनमील, जिलेटिन, चमडा पकाना आदि कार्य ग्रामोद्योग के रूप में व्यवस्थित ढंग से विकसित किये जायें।

दक्षिण भारत में गाय को जोतते भी हैं। उत्तर में लोग इसे परंपरा से खराब मानते हैं। यह रूढि मिटें, जिससे बांझ गायों का उपयोग हो तथा कम दूध देने वाली गाय का दोहरा उपयोग होने से उन्हें आर्थिक सामर्थ्यता प्राप्त होगी।

अपंग जानवरों के पालन-पोषण हेतु ग्राम-पंचायत स्तर पर गो-सदन रहें, उपयुक्त व्यवस्था में ये करीब-करीब स्वावलंबी बन जाते हैं।

समाज-सेवक क्या करें ?

१– गो-दूध लेने का आग्रह रखें। अक्सर लोग भैंसे का दूध घी बनाने के लिये लेते हैं। यह भ्रामक अर्थशास्त्र है। भैंस के दूध की तुलना में गाय का दूध मानव के लिये निरोगी और अधिक पोषक होता है।

२– अपने सेवा-क्षेत्र में गोपालन का प्रचार करें।

३– बच्चों को, बीमारों को, गर्भवती महिलाओं को गो-दूध का उपयोग करने की सलाह दें।

४– वृद्ध और सहाराहीन विधवाओं का गाय उत्तम आसरा है। उन्हें गो-पालन का सुझाव दें।

PDF Compressor Free Version

५– कुत्ता, बिल्ली पालने वाले शौकीनों में गो-पालन का शौक जगावें ।

६– घर-घर में गोबर-गैस और कम्पोस्ट का प्रचार करें ।

७– "मक्खन खाओ, कपडा बनाओ" इस नारे को व्यवहारी, कार्यकारी रूप दें ।

उपसंहार

गो-पालन की भारतीय पद्धति में हुए बिगाड को ठीक करने एवं वर्तमान वैज्ञानिक ज्ञान के आधार पर उसमें सुधार करने से गाय करोडों ग्रामवासियों की रोजी-रोटी का सहारा बन सकती है । उचित देखभाल, चारा-पानी एवं प्रजनन का प्रबंध होने से न केवल गाय का दूध-उत्पादन ही बढता है, वरन् अच्छी गाय के अन्य गुणों का भी क्रमशः विकास और समावेश होगा । भारत के हर गांव और अधिकांश घरों में गायें मौजूद हैं । इनकी ओर उचित ध्यान दिया जाये तो गांवों में मनों से दूध होने लगेगा, भले ही इससे तथाकथित "श्वेत-क्रांति" न हो । परंतु गांवों में हर व्यक्ति को पर्याप्त दूध प्राप्त होगा । अतिरिक्त दूध से सहज ही शहरों की मांग भी पूरी होगी । इसके लिये न तो पूंजी की जरूरत है और न ही विदेश से महंगे सांड, गायें और वीर्य ही आयात करना होगा । देश में दूध और गो-धन की कमी पूरी होगी । ग्राम समृद्ध होगा, अर्थात् देश खुशहाल और संपन्न एवं सशक्त होगा ।

* *

PDF Compressor Free Version

अमरीका की सेन्द्रिय खेती

अध्ययन-दल का अहवाल

सारांश तथा निष्कर्ष

अप्रैल १९७९ में अमरीका के कृषि विभाग के शिक्षण एवं विज्ञान-संचालक डा० एन्सन आर. बरट्राण्ड ने अमरीका तथा युरोप में सेन्द्रिय खेती का अध्ययन करने की दृष्टि से वैज्ञानिकों की एक समिति नियुक्त की । तदनुसार अध्ययन-दल ने अमरीका और युरोप में सेन्द्रिय खेती के प्रकार एवं प्रवृत्तियों का अध्ययन किया, किसान सेन्द्रिय खेती की ओर क्यों मुडते हैं इसकी जांच की, सेन्द्रिय खेती के तंत्र तथा व्यवस्था-पद्धतियों का मूल्यांकन किया, सेन्द्रिय खेती को मिली सफलताओं का तुलनात्मक अध्ययन किया तथा सेन्द्रिय खेती का आर्थिक असर और उसकी लागत, मुनाफा आदि की मर्यादाओं को परखा, सेन्द्रिय खेती के भविष्य को मददगार हों ऐसे अनुसंधान तथा प्रशिक्षण-कार्यक्रमों की ओर संकेत किया और अंत में अमल में लाने की एक योजना की सिफारिश की । यह अहवाल उन सब आंकडों एवं सूचनाओं का संक्षिप्त रूप है । सविस्तर अहवाल बाद में प्रकाशित किया जायगा ।

इस अध्ययन को पूरा करने में समिति ने विभिन्न प्रकार से तथा अलग-अलग स्रोतों से सूचनाएं एकत्रित कीं । इनमें से मुख्य सूचनाएं थी:

(१) अमरीका के २३ प्रान्तों में फैले ६९ चुनिंदा सेन्द्रिय खेती-किसानों के खेत पर जाकर अध्ययन करना ।

(२) रोडेल प्रेस की ओर से किये गये 'न्यू फार्म' पत्रिका के ग्राहकों का सर्वेक्षण ।

(३) देश तथा विदेश में सेन्द्रिय खेती पर प्रकाशित साहित्य का सविस्तर अध्ययन ।

(४) सेन्द्रिय खेती के जानेमाने नेताओं, संपादकों, प्रवक्ताओं तथा प्रयोगवीरों से मुलाकातें तथा पत्र-व्यवहार ।

PDF Compressor Free Version

(५) जापान तथा युरोप के सेन्द्रिय खेतों तथा अनुसंधान-संस्थाओं की दो अध्ययन-दलों द्वारा यात्रा ।

इस अध्ययन के लिये ग्रामीण तथा शहरी जनता का बहुत अच्छा और अधिकांश में बहुत सकारात्मक प्रतिसाद मिला । अब तक अंदाजन ५०० पत्र आ चुके हैं, जिनमें विभाग के इस प्रयास का समर्थन एवं प्रोत्साहन व्यक्त किया गया है । कई लोगों ने उदारतापूर्वक इस अध्ययन के लिये मूल्यवान सूचनाएं दी तथा सेन्द्रिय खेती-पद्धति तथा प्रकारों के बारे में भी नवीन विचार भेजे । पूरे अध्ययन के दौरान समिति के सदस्यों को सेन्द्रिय खेती-उत्पादकों के समूहों तथा समितियों के समक्ष बोलने के लिये निमंत्रित किया जाता रहा । सभी अवसरों पर हमें सहायता मिली तथा उत्साहवर्धक आवभगत की जाती रही । अंत में समिति के सदस्यों के साथ जो मुलाकातें हुई, उनको सेन्द्रिय खेती की अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित किया गया । इस अध्ययन के दौरान सबसे ज्यादा स्पष्ट चिंता की बात आज के अमरीकन कृषि-विभाग की कृषि-उत्पादन नीति के बारे में व्यक्त की गई । खासकर लगातार और सघन रूप से नकली फसलों के उत्पादन को प्रोत्साहन तथा व्यापक रूप से और कभी-कभी जरूरत से ज्यादा मात्रा में रासायनिक पदार्थों का उपयोग । जिन बातों के बारे में चिंता व्यक्त की गई, उनमें से निम्न बातें मुख्य हैं –

(१) रासायनिक खादों तथा ऊर्जा पर दिन-प्रतिदिन बढती निर्भरता, उनकी बढती कीमतें तथा अस्थिर उपलब्धि ।

(२) खेती में भूमि के कटाव के कारण तथा सेन्द्रिय पदार्थ कम होने के कारण लगातार खेती का पोत तथा उसकी उत्पादकता का कम होता जाना ।

(३) खेती में उपयोग किये जानेवाले रासायनिक कीटनाशकों आदि के कारण पर्यावरण का दूषित होना, मिट्टी का बह जाना तथा उसका अनेक स्थानों में जमा हो जाना और पानी के प्राकृतिक स्रोतों का विषैला बन जाना ।

(४) कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग होने के कारण मनुष्य तथा पशुओं के स्वास्थ्य के साथ भोजन का विषाक्त हो जाना ।

(५) खेती के पारिवारिक स्वरूप तथा स्थानीय बिक्री-व्यवस्था का टूट जाना ।

PDF Compressor Free Version

(६) अनेक प्रकार की खरपतवार में तथा कीटकों में कीटनाशक औषधियों के प्रति बढती प्रतिरोधकता ।

(७) औषधियों के उपयोग से जंगली जीव-जंतु, मधुमक्खी तथा अन्य उपयोगी कीडों का नाश ।

(८) संसार में सीमित मात्रा में उपलब्ध उपयोगी पोषक तत्वों, खासकर पत्थर (फास्फेट) के स्फुर का भंडार समाप्त होते जाना। पौधों का पोषण तथा कीडों व खरपतवार आदि से बचाव होता है ।

इस परिभाषा का मध्य बिन्दु यह मान्यता है कि भूमि एक जीवन्त पद्धति है, जिसका उपयोग इस तरह से किया जाना चाहिये, ताकि जमीन के अन्दर के उपयोगी जन्तुओं का ह्रास न हो, जिससे जमीन के अन्दर ह्यूमस बना रहे तथा पोषक तत्व का चक्र अबाध चलता रह सके ।

इस अध्ययन के महत्वपूर्ण निष्कर्षों का सार निम्न प्रकार है –

(१) अध्ययन-दल को पता चला कि सेन्द्रिय खेती-आंदोलन अनेक प्रकार की पद्धतियों, मान्यताओं एवं दर्शनों पर आधारित है । एक तरफ तो वे सेन्द्रिय खेती के पुरस्कर्ता हैं, जो रासायनिक उर्वरकों अथवा कीटनाशकों का किसी भी परिस्थिति में उपयोग नहीं करेंगे । ऐसे लोग अपने दर्शन की विशुद्धता को कायम रखते हैं । दूसरी तरफ, ऐसे किसान हैं, जो अपने व्यवहार में लचीला दृष्टिकोण अपनाते हैं । ऐसे लोग अधिकांश में रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों का उपयोग टालते हुए भी इनका उपयोग पूर्णतः वर्जित नहीं मानते । जब कभी अत्यंत आवश्यक हो तो ये लोग कुछ उर्वरकों तथा खरपतवार-नाशकों का बहुत कम मात्रा में, और कभी-कभी ही, प्रतिरक्षा की दूसरी पंक्ति के तौर पर कर लेते हैं । इसके बावजूद ऐसे किसान भी अपने को सेन्द्रिय किसान ही मानते हैं । सेन्द्रिय खेती-आंदोलन अनेक स्तरों पर फैला हुआ है, इस तथ्य की पूरी जानकारी न होने से कभी-कभी बहुत गलत धारणाएं बन जाती हैं । हमें इन सभी प्रकार के किसानों को एक ही किस्म के नहीं मानना चाहिये । उदाहरणार्थ, 'सेन्द्रिय किसान' तथा 'सेन्द्रिय बागवानों' को हमें एकसाथ नहीं गिनना चाहिए ।

PDF Compressor Free Version

(२) सेन्द्रिय खेती-पद्धति के खेत विभिन्न आकार के हैं। हमें अमरीका के उत्तरी भागों में अनेक छोटे किसान (४ से २० हेक्टेयर के) मिले, पश्चिम तथा मध्य-पश्चिम अमरीका में अन्य अनेक किसान ऐसे भी मिले, जिनकी खेती बडे पैमाने की (४० से लेकर ६०० हेक्टेयर तक) थी। अधिकांश अवसरों पर हमने पाया कि ये छोटे हों या बडे, सभी किसानों के खेत पूर्ण उत्पादन देने वाले थे, तथा उनकी व्यवस्था अच्छी थी। अक्सर अनेक वर्षों का रासायनिक खेती का अनुभव लेने के बाद कई किसान सेन्द्रिय खेती की तरफ मुडे हैं।

(३) रासायनिक खेती से सेन्द्रिय खेती की तरफ मुडने के कारणों में प्रमुख हैं – कीटनाशकों के दुष्प्रभावों से मिट्टी, मनुष्य तथा पशु-स्वास्थ्य की रक्षा करना, खेती की उत्पादन-लागत कम करना, पर्यावरण को दूषित होने से बचाना तथा प्राकृतिक साधनों की रक्षा करना आदि।

(४) सामान्य मान्यता के विपरीत, अधिकांश सेन्द्रिय कृषकों ने १९३० के जमाने की पुरानी पद्धति की खेती को पुनः नहीं अपनाया है। रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशकों का उपयोग टालते हुए या न करते हुए ऐसे किसान अक्सर आधुनिक यंत्रों का, उपयुक्त फसलों का, प्रमाणित बीजों का तथा कूडे-कचरे का उचित पद्धतियों से उपयोग करते हैं। मिट्टी और पानी की सुरक्षा एवं उपयोग के प्रमाणित तरीकों का इस्तेमाल करते हैं।

(५) अधिकांश सेन्द्रिय कृषक ऐसे फसल-चक्रों का उपयोग करते हैं, जिनमें द्विदलीय फसलें तथा जमीन ढंकने वाली फसलें होती हैं, जिनसे मध्यम से उच्च उत्पादन-हेतु पर्याप्त मात्रा में नत्रजन मिल जाता है।

(६) अनेक सेन्द्रिय खेतों पर पशु एक आवश्यक अंग के तौर पर पाले जाते हैं, ऐसे मिश्र खेतों में, जिनमें विभिन्न प्रकार की फसलें तथा पशु भी होते हैं, अनाज तथा घास-पत्ते पशुओं को खिलाये जाते हैं तथा पशु-खाद का उपयोग खेतों में किया जाता है। कभी-कभी गोबर-मूत्र का नत्रजन सुरक्षित रखने के लिए उसकी खाद भी बनाई जाती है तथा कुछ किसान पशुखाद्य तथा कम्पोस्ट खाद बाहर से भी खरीदते हैं।

PDF Compressor Free Version

(७) सेन्द्रिय किसानों की मक्का, सोयाबीन तथा अन्य अनाज की फसलों में घासपात के नियंत्रण की कुशलता से अध्ययन-दल बहुत प्रभावित हुआ, जो वे बिना या कम-से-कम रसायनों के उपयोग द्वारा कर लेते हैं। इस प्रकार की सफलता मुख्यतः उचित समय पर जुताई, देरी से बुवाई तथा फसलचक्र के माध्यम से वे प्राप्त करते हैं। सेन्द्रिय किसान अक्सर कीटकों तथा चूहों आदि से भी अपनी फसल की रक्षा, अन्य किसानों की तुलना में अधिक अच्छी तरह से कर लेते हैं।

(८) कुछ सेन्द्रिय किसानों की यह भावना है कि अमरीका के कृषि-विभाग तथा भूदान विश्वविद्यालयों ने उनकी उपेक्षा की है। उनकी मान्यता है कि अधिकांश शोधकर्ता तथा विकास-अधिकारियों की सेन्द्रिय खेती में कोई रुचि नहीं दीखती तथा तकनीकी सहायता कहीं से नहीं मिल पाती।

(९) कुछ खेतों में, जहां आज सेन्द्रिय खेती की जा रही है वहां के पोषक तत्वों के अध्ययन से पता चलता है कि उन खेतों में खनिज तत्व, खास कर फास्फोरस (पी) तथा पोटाश (के) या तो जमीन में से खो दे जा रहे हैं अथवा जब उन खेतों पर रासायनिक खेती की जाती थी, तब कुछ पूरक उर्वरक दिये गये थे। इस परिस्थिति के कारण इन खेतों में उच्च उत्पादन कुछ वर्षों तक तो लिया जा सकेगा, बशर्ते कि मिट्टी, हवापानी तथा अन्य परिस्थितियां अनुकूल हों, लेकिन संभव है कि कुछ सेन्द्रिय किसानों को अंततोगत्वा इन तत्वों का पूरक पोषण देना होगा।

(१०) अध्ययन से पता चलता है कि सेन्द्रिय खेती तुलना में पूंजी की बजाय श्रम का उपयोग अधिक करने वाली है तथा ऊर्जा का भी कम उपयोग करती है। यद्यपि इस संबंध में उपलब्ध आंकडे कम हैं, अतः दोनों पद्धतियों की खेती का श्रम-शक्ति तथा ऊर्जा के उपयोग की दृष्टि से सविस्तर तुलनात्मक अध्ययन करना जरूरी दीखता है।

(११) इस अध्ययन से पता चलता है कि चालू पूंजी पर आय का परिणाम प्रचलित खेती-पद्धति में मक्का तथा सोयाबीन में ज्यादा है, बनिस्बत सेन्द्रिय पद्धति द्वारा विभिन्न फसल-चक्रों द्वारा उगायी गयी अनेक फसलों के। यह इसलिये कि सेन्द्रिय पद्धति में विभिन्न फसलें ली जाती हैं तथा हमेशा काफी मात्रा में जमीन द्विदलीय फसलों में रहती है। (प्रचलित पद्धति में एक ही फसल ली जाती है तथा स्थायी पूंजी भी अधिक लगती है।)

PDF Compressor Free Version

(१२) प्रचलित रासायनिक पद्धति से खेती करने के अनेक दुष्प्रभाव हैं, जैसे – मिट्टी का बह जाना तथा कुछ स्थानों में जमा हो जाना, जमीन में पोषक तत्वों की कमी होते जाना, उर्वरकों तथा कीटनाशकों के पानी में घुलकर बह जाने से पानी का दूषित होना, और संभवतः जमीन की उत्पादक-क्षमता कम होते जाना। अगर इन सब दुष्प्रभावों का मूल्य लगाया जावें तो रासायनिक खेती तथा सेन्द्रिय खेती का लागत-मूल्य तथा आमद का तख्ता दूसरा ही होगा, खासकर उन स्थानों में, जहां ऐसे प्रश्न उपस्थित हो रहे हैं।

सारांश में, अध्ययन-दल को पता लगा कि सेन्द्रिय किसानों द्वारा उपयोग में लिये जा रहे मिट्टी तथा फसल की अनेक व्यवस्था-पद्धतियां वे ही हैं, जिनको सबसे अच्छी पद्धतियां कहा जाता है। (उदाहरणार्थ– **फसलों से पानी के दूषित होने से बचाने** के तरीकों पर यू. एस. डी. ए. तथा ई. पी. ए. का संयुक्त प्रकाशन, खंड-१, १९७५; अमरीकी सरकार मुद्रणालय) मिट्टी का कटाव रोकना, पानी को दूषित होने से बचाना, तथा ऊर्जा की बचत का समावेश इनमें है। इसके लिये सेंद्रिय फसलों, जमीन ढंकनेवाली फसलें, हरी खाद की फसलें लेने के साथ ही खेत की जुताई की संरक्षणात्मक पद्धतियां, मिश्र तथा ढलान के अनुसार फसलें, ढलान के अनुरूप बांध डालना, पानी की नालियों में घास उगाना आदि हैं। इसके अलावा अनेक सेन्द्रिय किसानों ने कुछ ऐसी नवीन तथा अद्वितीय पद्धतियां विकसित कर ली हैं, जिनसे वे सेन्द्रिय पदार्थों का पुनः पूर्ति-चक्र कायम रखते हैं तथा विभिन्न फसल-चक्रों में कीडों आदि की रोक-थाम में सफल हो जाते हैं। इन सबके कारण तथा अन्य अनेक कारणों से, जिनका इस अध्ययन-अहवाल में अन्यत्र उल्लेख किया गया है, हम मानते हैं कि सेन्द्रिय किसानों की समस्याओं एवं आवश्यकताओं को मद्देनजर रख कर अनुसंधान तथा शिक्षण के कार्यक्रम हाथ में लेना अत्यंत जरूरी है। कम-से-कम सेन्द्रिय खेती-पद्धतियों का एक सर्वांगीण पद्धति के तौर पर अनुसंधान-अध्ययन करके बहुत कुछ सीखा जा सकता है, खासकर, इस पद्धति की यांत्रिकी प्रतिक्रियाएं, पद्धतियां तथा सिद्धान्तों का अमरीका तथा दुनिया की भविष्य की खेती के लिये उपयोगिता को देखते हुए।

* *

PDF Compressor Free Version

स्वाश्रयी गाय के प्रयोग

द्वारकाप्रसाद परसाई

स्वाश्रयी खेती के समान स्वाश्रयी गाय पर भी कुछ प्रयोग हुए हैं। इनमें से एक प्रयोग कैटल क्रांसिंग सेंटर, ढोकमोड, जिला सातारा (महाराष्ट्र) में सन् १९६० से १९८४ तक किया गया है। उसका संक्षिप्त विवरण नीचे लिखे अनुसार है।

ढोकमोड क्षेत्र तालुका माण, जिला सातारा (महाराष्ट्र) में सातारा शहर से करीब ७० मील पूर्व में है। यह अकालग्रस्त क्षेत्र में है, क्योंकि यहां साल में सिर्फ ८ से १० इंच वर्षा होती है। वह भी कभी होती है और कभी नहीं। यहां की जमीन उबडखाबड और पथरीली है। मिट्टी के नाम पर २-३ इंच गहरी मुरुम या मुरुम और काली मिट्टी का मिश्रण है। यहां तेज हवा अधिकांश महिनों में चलती है। सितंबर-अक्टूबर में थोडी, लेकिन तेजी से वर्षा होने पर बहते पानी से मिट्टी बह जाती है। इस मिट्टी में बरसात के २-३ महिने में थोडी निम्न किस्म की घास उगती है, जिस पर भेड और गायें चरती हैं। इसके अलावा ढोकमोड सेंटर के पास तालाब की भी थोडी जमीन थी, जो तालाब भरने के कारण साल में कभी-कभी ही चारे की फसल उगाने के काम के लिये मिलती थी। पथरीली जमीन होने के कारण कुएं में भी कहीं-कहीं पानी लगता था और वह भी नाले के पाट में या उसके किनारे पर। जिसके कुएं में पानी लग गया, वह बडा भाग्यशाली माना जाता है। दूध के लिये बाजार भी सातारा ७० मील और सोलापुर ८० मील पर है।

उपरोक्त प्रतिकूल परिस्थिति में भी यहां खिलार जाति की अच्छी गायें बैलों के लिये पाली जाती है, जिसके बैल तेज, नुकीले बडे सींगवाले होते हैं। वहां की पथरीली जमीन व कांटे वाले रास्ते पर चलकर खेती के काम करने वाले होते हैं। इस जाति की गायें प्रतिदिन

PDF Compressor Free Version

१ या १½ लिटर दूध देती हैं। करीब ४ से ५ साल में पहली बार फलती हैं। २-३ साल में दूसरा बछडा देती है तथा पूरे जीवन में ४ या ५ बछडे ही दे पाती हैं।

यह काम तीन चरणों में किया गया

(१) पहला चरण : १९६० से १९७० तक

इन १० वर्षों में सेंटर की स्थापना के लिये भिन्न-भिन्न पशुमेलों में से गायें खरीदी, जमीन साफ और समतल करके चारे की फसल उगाने के लिये तैयार की। जानवरों के पीने के लिये और चारे की फसल उगाने के लिये कुएं खुदवाये। गाय, बैल, बछडों के लिये गोशाला तैयार की, कर्मचारियों के लिये घर आदि बनवाये। खेती, गोशाला, दुग्धशाला आदि के लिये सामान खरीदा और भिन्न-भिन्न किस्म के दुग्ध-प्रजनन, खुराक आदि रिकार्ड रखने का प्रबंध किया गया।

इस प्रयोग के लिये २५ गायें और १ सांड आधारभूत हैं। ये फाउंडेशन हेड के रूप में सन् १९६० से १९६२ तक खरीदे गये। उन्हें उपलब्ध चारा, दाना, पानी तथा उचित प्रबंध करके उनकी दूध-उत्पादन-क्षमता, प्रजनन-क्षमता आदि का अध्ययन किया गया और नीचे लिखें नतीजे पर पहुंचे।

(अ) स्थानीय खिलार गाय, जो सिर्फ बैलों के लिये पाली जाती है, उसमें भी १ या १½ लिटर के स्थान पर ३ से ५ लिटर तक प्रतिदिन दूध देने की क्षमता पैदा हो सकती है।

(आ) उनकी ब्यात-अवधि (लेक्टेशन पीरियड) २४-१८ महिने से ११ से १३ महिने तक कम की जा सकती है तथा सूखा रहने की अवधि (ड्राई पिरियड) भी २ से ५ महिने पर लायी जा सकती है।

(इ) कुछ अच्छी खिलार गायों के जीवन का रिकार्ड (लाईफ टाईम रेकार्ड) करीब १००० लिटर दूध प्रतिब्यात और १२ से १३ बछडे देने का है, जो सामान्य किस्म की गायों में ४ से ५ बछडे और ३०० से ४०० लिटर दूध प्रतिब्यात तक ही मिल पाता है।

PDF Compressor Free Version

(२) दूसरा चरण : १९७० से १९८० तक

इस अवधि में विदेशी संकर (एक्झाटीक क्रास-ब्रिडींग) से गायें पैदा कर दूध बढाने की क्रिया जोरों से देश में चालू हो गई थी। इसलिये खिलार में भी अभी तक जो दूध मिला है, उससे ज्यादा दूध की मांग उठना स्वाभाविक था। इस मांग को २ या ३ देशी जातियों को मिला कर किया जा सकता है क्या ? इस पर विचार किया गया। भारत के उत्तर और पश्चिम में कुछ अच्छी-अच्छी दूध देनेवाली गाय की जातियां हैं। उनमें से एक थारपारकर जाति भी है। यह खिलार के समान ही मध्यम कद, अच्छे बैल देनेवाली, सफेद और कोसा रंग की तथा अकाल की परिस्थिति में भी जीवित रहकर फूलने-फलने की शक्ति रखनेवाली है। लेकिन उसमें खिलार की तुलना में २ या ३ गुना ज्यादा दूध मिलता है। उसका मुख्य स्थान सिंध (पाकिस्थान) के थार मरुस्थल के क्षेत्र में है। आजकल यह राजस्थान राज्य के अकालग्रस्त सूखे क्षेत्रों मे, जैसे--बाडमेर, जैसलमेर, जोधपुर आदि स्थानों में पाई जाती है। इंडियन डेयरी रिसर्च इंस्टीट्यूट, करनाल (हरियाणा) ने भी थारपारकर जाति को पाल कर उस पर प्रयोग किये हैं। इसलिये उनके यहां से इस जाति के दो सांड सन् १९७० में लाये और वे यहां की देशी खिलार गायों को फलाने के काम में उपयोग किये गये। इसके ३ साल बाद ४ सांड केन्द्रिय कैटल ब्रीडिंग फार्म सूरतगढ (राजस्थान) से भी लाये गये और वे भी सेंटर की गायें और गांवों की गायें फलाने के लिये काम में आये। इनका भी खिलार के समान दूध-उत्पादन, प्रजनन और अन्य बातों का रिकार्ड रखा गया तथा उनका तुलनात्मक अध्ययन किया गया, जिसके नतीजे नीचे लिखे अनुसार आये।

(अ) खिलार, थारपारकर क्रास की गायें और बैल ढोकमोड की जलवायु और चारा-दाना में अच्छी तरह से पाले जा सकते हैं और वे गांववालों में लोकप्रिय भी हो गये हैं।

(आ) इस क्रास की गायों में १५०० लिटर से १६०० लिटर तक प्रतिब्यात में दूध देने की क्षमता है। एक गाय ने तो २१०० लिटर दूध ब्यात में दिया है।

PDF Compressor Free Version

(इ) प्रजनन-क्षमता नियमित खिलार के समान ही है, जैसे – १४ साल की गाय ने ११ बछडे दिये और थोडा ज्यादा चारा-दाना देने से बछडिया १½ साल में फलकर २½ साल में पहला बछडा दे देती है। यह अनुभव दोनों ७५ प्रतिशत और १०० प्रतिशत थारपारकर गायों में आया।

(ई) खिलार और खिलार, थारपारकर क्रास गायों का तुलनात्मक अध्ययन करने से पता लगा कि खिलार गायों का २० साल का (१९६० से १९८० तक) २५ गायों के १४७ ब्यात का औसत दूध ६१७.४० लिटर प्रति ब्यात आया, जबकि खिलार थारपारकर क्रास का १० साल (१९७० से १९८०) तक का २० गायों का दूध ४९ ब्यात का औसत दूध १२०५.९१ लिटर रहा, यानी करीब दुगुना हो गया।

(उ) ४ गायों (मां) और उनकी बछडियों की १९८० तक पूरे किये हुए समान ब्यात संख्या के दूध-उत्पादन का तुलनात्मक अध्ययन से ५६०.२ लिटर से ३३२०.०० लिटर तक बढत मिली। जिस बछडी की मां ने कम दूध दिया था, उसमें ज्यादा बढत और जिस बछडी की मां ने ज्यादा दूध दिया था, उसमें कम बढत मिली है।

(३) तीसरा चरण : १९८० से १९८५ तक

पहले और दूसरे चरण में गायों का उत्पादन देखकर गांवों के लोगों में दूध उत्पन्न करने की भावना जागी और उन्होंने सेंटर की गायों की मांग की। उन्हें १०० बछडियां दी। इसके बाद भी मांग पूरी न हो सकी, इसलिये स्टेट बैंक आफ इंडिया (अकलूज शाखा, जिला सोलापुर) और टाटा ट्रस्ट की मदद से गायें खरीदने की योजना शुरू की। इसके लिये २ लाख की पूंजी कर्ज के रूप में ली और उससे सन् ८३ तक ९१ थारपारकर गायों को खरीद कर लोगों में बांटी। इनसे उत्पन्न दूध ढोकमोड सेंटर ने इकट्ठा करके सरकारी दूध-योजना को बेचा और उससे मिले पैसों को दूध-उत्पादकों में बांटा। वैसे गांव की देशी गायों और सेंटर की गायों की मदद से दूध-योजना सन् १९७४ में ही शुरू हो गई थी। लेकिन सन् १९८० से इसमें थारपारकर गायों का दूध भी शामिल हो गया। इस योजना के अंतर्गत १० सालों में

PDF Compressor Free Version

करीब ७ लाख लिटर दूध गांवों में उत्पन्न हुआ। उसे एकत्र कर सातारा और सोलापुर की सरकारी दूध-योजना में बेचकर करीब १४ लाख रुपये लाकर गांववालों को दिये।

बैंक और टाटा ट्रस्ट से लिया हुआ सब कर्ज व्याजसहित दूध के हफ्ते में से काटकर जून १९८५ तक वापिस कर दिया। इस योजना में ज्यादा-से-ज्यादा एक दिन का दूध ३५० लिटर तक इकट्ठा हुआ था। लोगों की और भी अधिक गायों की मांग है तथा उन्होंने ५०० से १००० लिटर दूध प्रतिदिन उत्पन्न करने की इच्छा जाहिर की है

उपसंहार

देशी गायों को शुद्ध रूप से पाल कर या उनके जैसी समान गुण वाली अन्य देशी गाय जाति या जातियों से क्रास कर दूध बढाया जा सकता है और ऐसी गायें गांवों में लोकप्रिय भी हो सकती हैं तथा उनसे दूध उत्पादन कर गांव वालों की आमदनी भी बढ सकती है। यह तथ्य ढोकमोड के प्रयोग से सिद्ध होता है। यह दूध-उत्पादन गायों की बैल-शक्ति को कम किये बिना ही किया जा सकता है, यह भी इस प्रयोग से सिद्ध होता है।

आश्रम प्रतिष्ठान, सेवाग्राम

PDF Compressor Free Version

फ्रेण्ड्स रूरल सेंटर, रसूलिया (होशंगाबाद)
खेती और पशुपालन

प्रताप अग्रवाल

दूध के उत्पादन के लिए विदेशी नस्लों से प्राप्त संकर पशुओं का उपयोग करने की जो नीति पिछले कुछ सालों से अपनाई गई थी, उससे गरीब किसानों को फायदा नहीं होता है। १९८१ में हमने स्थानीय पशुपालकों के और करनाल, सूरतगढ तथा अन्य स्थानों के पशु-उत्पादन तथा शोध-संस्थाओं के अनुभवों की पडताल की। जहां तक हमने समझा है, हमारे क्षेत्र में ऐसा एक भी गरीब या सीमांत किसान नहीं है, जो संकर गाय पाने पर स्वावलंबी हो गया हो। दूसरे शब्दों में, इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य दस साल बाद भी पूरा नहीं हुआ है।

सचाई यह है कि संकर गाय की देखभाल गरीब ग्रामवासी सही ढंग से नहीं कर सकते, क्योंकि इस गाय की रोगों का मुकाबला करने की शक्ति कम होती है और वह गर्मी बर्दाश्त नहीं कर सकती। इससे रखरखाव का खर्च बहुत अधिक होता है और कृत्रिम गर्भाधान में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयां आती हैं। यह सच है कि हमारे क्षेत्र के सम्पन्न लोग विदेशी संकर गाय रखने में सफल हुए हैं, क्योंकि वे उनके रखरखाव का खर्च उठा सकते हैं और उनके पास ऐसा राजनीतिक प्रभाव है कि उन्हें सरकारी पशु-चिकित्सा विभाग तथा दुग्ध-वितरण संगठन से सहायता मिल जाती है।

हमारे पास जो संकर गाय हैं, उन्हें सूरतगढ की शुद्ध भारतीय थारपारकर गायों की तुलना में थन की सूजन के रोग से बहुत तकलीफ होती है। हमें इनके साथ, एक और ऐसी समस्या का सामना करना पडा, जो शुद्ध नस्ल की गायों के साथ पैदा नहीं होती। हमारी कुछ दुधारु गायों के आंचल इतने बडे हो गये कि गायों को चलना कठिन हो गया और उनके थन जमीन छूने लगे। उन्हें दूहना असंभव हो

PDF Compressor Free Version

गया । ऐसा लगता है कि संकरण से अनाज में ही नस्ल सबंधी असंतुलन हो जाता है । एक नस्ल का आंचल और दूसरी नस्ल का शरीर मेल नहीं खाता ।

अच्छी, शुद्ध भारतीय गायें—थारपारकर, गीर, साहीवाल, लाल सिंधी-संकर गायों से थोडा ही कम दूध देती हैं । कम दूध वाली स्थानीय नस्लों की तुलना में जरूर इनकी अधिक देखभाल करनी पडती है, पर यह देखभाल सामान्य व्यक्ति की क्षमता के भीतर होती है । वे मौसम की अभ्यस्त होती हैं और एक महत्वपूर्ण बात यह है कि उनके बछडों से अच्छे बैल बनते हैं । रसूलिया और करनाल, दोनों में देखा है कि संकर बछडों को बेचना असंभव-सा होता है, जबकि थारपारकर बछडे या बछियां एक भाव में बिकते हैं । अनुभव तथा अवलोकन से हमें विश्वास हो गया है कि शुद्ध नस्ल की गायें संकर गायों की अपेक्षा काम के लिये ज्यादा उपयुक्त हैं और हमने संकर नस्लके पशुओं के स्थान पर थारपारकर लाकर स्थिति में परिवर्तन करने का निश्चय किया है । इस साल हमने तीन शुद्ध थारपारकर सांड प्राप्त किये हैं और निकट भविष्य में हम कुछ गायें भी खरीदना चाहते हैं । उस परिवर्तन से डेरी की अर्थव्यवस्था पर ज्यादा असर नहीं पडेगा ।

संकर गायों के प्रचार ने इस घातक तथा झूठी धारणा को मजबूत किया है कि सभी विदेशी चीजें भारतीय चीजों से श्रेष्ठ होती हैं । इस प्रचार की धारणा के उदाहरण कृषि में भी बहुत मिलेंगे, जैसे—बैलों से बेहतर ट्रेक्टर है, स्थानीय से बेहतर मैक्सीकन गेहूं है और देशी खाद से बेहतर अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों के रासायनिक खाद तथा कीटनाशक दवाइयां ! हमारा ख्याल है कि अब इन धारणाओं को चुनौती देने और गरीबों के अनुकूल तरीकों पर साहसपूर्ण प्रयोग करने का समय आ गया है ।

हमने पिछले साल ट्रेक्टर की प्रासंगितता के बारे में संदेह प्रकट किया था । अब हम खेती का अपना सारा काम आदमियों और बैलों से करने में समर्थ हैं और अब हम ट्रेक्टर और इसके साथ चलने वाले औजारों को बेचने की योजना बना रहे हैं । हम आगे तेल तथा मशीन का प्रयोग और भी कम करना चाहते हैं । उदाहरण के लिये, इस साल गेहूं की बोनी छिडक कर की गई, जिससे समय और ऊर्जा की बहुत

PDF Compressor Free Version

बचत हुई । पौधे अच्छे निकले मौसम में हम धान भी इसी प्रकार बोने का प्रयोग करना चाहते हैं । और यदि इसमें सफलता मिली तो हमारा उत्पादन-व्यय बहुत कम हो जाएगा । सिर्फ मेक्सिको की बौनी किस्म बोने के स्थान पर हमने पांच किस्म के गेहूं बोए हैं, जिसमें कुछ स्थानीय अच्छी किस्में भी हैं । ये किस्में न सिर्फ सिंचाई और खाद पर कम निर्धारित हैं, बल्कि अधिक पौष्टिक, रोग-निरोधक तथा स्वादिष्ट भी कही जाती हैं ।

हमने रासायनिक खादों और कीटनाशक दवाइयों का उपयोग बंद कर दिया है और इस परिवर्तन से गेहूं और धान की हमारी दो बडी फसलों को बहुत फायदा हुआ है। नवंबर १९८१ की धान की फसल पहले से बेहतर हुई । औसत उपज प्रतिएकड १५ क्विंटल हुई और एक-चौथाई एकड में ६७२ किलो धान यानी प्रतिएकड २७ क्विंटल पैदा हुई । अनाज पहले से भारी, स्वस्थ और स्वादिष्ट है और शायद अधिक पौष्टिक भी । हमें आशा है कि हम यह प्रदर्शित करते रहेंगे कि स्वास्थ्य उपज और अनाज की गुणवत्ता पर देशी खाद का अच्छा प्रभाव होता है।

प्राकृतिक कृषि के प्रयोग के लिए हमने ३.५ एकड का प्लाट अलग कर रखा है । इस साल हमने इस खेत के एक भाग में बिना हल चलाये बरसीम, गेहूं और सरसों बोया है। धान की कटाई करने के बाद हमने बीज को छिडक दिया और उसे सूखी घास से ढंक दिया । फसल ठीक आती दिख रही है और नींदा बहुत कम है । खेती के प्राकृतिक तरीकों का अनुसरण करके हम प्राकृतिक मजदूरों, यानी केंचुओं, कीटों, पक्षियों और पशुओं के विशाल दल की उम्मीद करते हैं । वे जमीन को हवादार बनाते हैं, वनस्पति-पोषक तत्व पैदा करते हैं, नुकसानदायक कीटों को नियंत्रित करते हैं और उम्दा भूमि की उत्पादकता में तथा उसकी नमी सोखने की क्षमता को बढोतरी देते हैं । हम ऐसा मानते हैं कि हम इस प्रयोग में सम्भवतया कुछ गलतियां करेंगे, क्योंकि इस तरह की खेती में मार्गदर्शन बहुत कम उपलब्ध है । प्रत्येक स्थिति अलग होती है और हमें अपनी परिस्थिति से सीखना पडेगा । इसमें सफलता तथा असफलता, दोनों के अनुभवों से हम लाभ उठा सकते हैं ।

PDF Compressor Free Version

गोशाला के पास के एक छोटे प्लाट में हमने पपीते का बगीचा लगाया है। पेड अच्छी तरह से बढ रहे हैं और उसी खेत में पपीते के पेडों के बीच में जो सब्जियां लगाई हैं वे खूब हो रही हैं। फसलों की दिशा बदलने का हमारा जो उद्देश्य है, यह उसका एक उदाहरण है। इससे हमारी आय बढेगी और हमारी खुराक में भी सुधार होगा। और दूसरे फल (अमरूद, नींबू, संतरे, बेर, आम) पैदा करने की भी हमारी योजना है और हम अपने खेतों के बीच बनी पेडों का उपयोग ऐसी उपयुक्त फसलें लगाने के लिए करना चाहते हैं जो कई सालों तक पैदावार देती हैं। तुअर सात या अधिक साल तक पैदावार देती है। हमने अपनी पेडों पर कुछ तुअर लगाई है और अंडी तथा कपास लगाने की भी हमारी योजना है। १९८१ की बारिश में हमने तिल पैदा की जो एक एकड में दो क्विन्टल लगभग हुई। इसे अच्छी पैदावार कहा जा सकता है। और अलग-अलग तरह की फसलों से हम अपनी बुनियादी जरूरतों के लिए आत्मनिर्भर हुए हैं और उससे हमारी जमीन, फसलों, पशुओंका तथा हमारा खुद का स्वास्थ्य बेहतर होगा।

ऋषि-खेती, बिना जुताई की खेती प्राकृतिक खेती, विभिन्न फसलों द्वारा कीडों की तथा खरपतवार की रोकथाम, देशी बीजों का उपयोग, देशी गायों को पनपाना, कम्पोस्ट खाद बनाना, मधुमक्खी पालन, रासायनिक उर्वरकों तथा कीटनाशक दवाओं का उपयोग पूरी तरह से बन्द कर देना आदि कार्यक्रमों को अपनाने के जो अंतिम नतीजे प्रतिवर्ष आते रहे, वे निम्न प्रकार हैं –

वर्ष	खेती गोशाला से शुद्ध आय	वेतन व मजदूरी	पशु-खुराक	उर्वरक एवं कीटनाशक
१९७४-७५	२०,०००	१६,४३५	१०,०००	२४,०००
१९७५-७६	५,०००	२४,८९५	११,०००	९,०००
१९७६-७७	१९,५७०	२८,९७०	३५,०००	१७,१५०
१९७७-७८	७,५००	४०,९११	८३,३०२	११,५१०
१९७८-७९	१५,०००	५१,९२०	९३,७०२	९,६७५
१९७९-८०	३७,७०४	४४,३०८	१,१३,६९४	९,४२७
१९८०-८१	६१,७४०	५७,४१३	८४,६५१	–
१९८१-८२	२७,२३३	६१,१३३	८१,२३९	–
१९८२-८३	७१,१९२	५६,७२९	६८,८१०	–
१९८३-८४	२३,१०१	५७,७७६	५४,८८२	–

PDF Compressor Free Version

(सूचना :– १९८३-८४ में शुद्ध आय कम है, क्योंकि उस वर्ष थारपारकर सांड तथा बछडियां खरीदी गई और कुछ फसलें ठीक नहीं आई। मजदूरी-खर्च बढा है, लेकिन मजदूरों की संख्या उतनी ही है। पशुखाद्य पर खर्च कम हो तथा फसलों से आय बढे इसके प्रयास में हम लगे है।)

अनाज की रक्षा तथा कुटाई-पिसाई

फिर भी, केवल अच्छी फसल पैदा करना काफी नहीं है। हमें उसे सुरक्षित रखना है और बिना उसकी पोषकता नष्ट किए उसे तैयार करने का भी ज्ञान लेना है। हमने इस साल अपना अनाज बिना कीटनाशक दवाओं के सिर्फ सूखें भूसे में सुरक्षित रखा है और इसमें बढिया परिणाम आए हैं। हम अनाज को कूटने-पीसने के सादे और प्रभावी औजार उपयोग करने की कोशिश कर रहे हैं। इस वर्ष हमने गेहूं और दालों को पीसने की हाथ चक्कियां प्राप्त की हैं। बैल से चलने वाली एक तेलघानी भी लाए, जो हमारे खाने का तेल तथा पशुओं के लिए खली देगी। इस प्रकार के अन्य उपकरणों के अधिकाधिक प्रयोग से अनाज की पौष्टिकता बनी रहेगी, जो इस इलाके के अधिकांश लोगों का भोजन है। साथ ही इससे स्थानीय कारीगरों को भी मिलेगा।

हमारे पिछले प्रतिवेदन में गोबर-गैस प्लान्ट की हमारी योजना का उल्लेख था। इस प्लान्ट से इंधन तथा खाद,दोनों मिलते हैं। इस साल हमने दो गैसप्लान्ट बनाए हैं, एक पुराना प्लान्ट काम लायक बना लिया है। इससे हमारे कर्मचारियों में से अधिकांश, यानी बारह परिवारों को लाभ होगा, शेष परिवारों को भी यह सुविधा शीघ्र उपलब्ध करावेंगे। इस गैस-प्लान्टों में अभी छोटी-छोटी कई समस्याएं हैं, यदि हम खुद उन्हें हल कर सकते हैं तो फिर वैसा ही करने में हम दूसरों को भी सहायता कर सकते हैं। हम ऐसे सस्ते बर्नर बनाने की कोशिश कर रहे हैं जो स्थानीय चीजों से गांव की स्त्रियां खुद बना सकती हैं। हमने कुछ धूप-चूल्हे बनाने के साथ ही पानी गरम करने का एक धूप-हीटर भी बनाया है और उनके उपयोग से अनुभव प्राप्त कर रहे हैं, जिससे हम इंधन की बचत करनेवाले व्यावहारिक तथा उपयोगी साधनों के रूप में भरोसे के साथ उनका प्रचार कर सकें।

PDF Compressor Free Version

कपडे : अलग-अलग तरह की फसलें लेने की हमारी योजना के बारे में ऊपर उल्लेख किया है। जब हम कपास पैदा करने को सोच रहे हैं तो हम कताई-बुनाई की व्यवस्था भी करेंगे। इस से हम कपडों के बारे में आत्मनिर्भर हो सकेंगे। रोज कुछ समय सामूहिक कताई करने से मनन और भाईचारे का स्वाभाविक मौका मिलता है। जैसा कि पुरानी पीढी के कई लोग गांधीजी के आश्रम के अपने अनुभवों से जानते हैं।

आवास और अन्य इमारतें

१९८१ में हमने अपने कर्मचारियों के लिए सादे, स्वस्थ आवासों की व्यवस्था करने में प्रगति की है। हम इन मकानों को बिखेरना चाहते हैं, जिससे सारा कम्पौंड आबाद हो जावें और लोग अपने काम के यथासंभव नजदीक हो सकें।

उपसंहार : ये सब अलग-अलग गतिविधयां नहीं हैं, ये साथ-साथ चलती हैं और सब मिलकर एक समग्र कार्य बनती हैं। इसके पीछे मूल उद्देश्य रहन-सहन का ऐसा तरीका सोचना है, जो भारतीय ग्रामीणों के अधिक अनुकूल हो और वे आंखें मूंदकर शहरी तरीकों का अनुसरण न करें। जैसा कि हमने पिछले प्रतिवेदन में कहा था, अपनी भूमि में और अपने लोगों के हुनर और योग्यताओं में उपलब्ध संसाधनों का समझदारी से पूरा उपयोग करके ही ग्रामीण समाज सुखी और स्वाभिमानयुक्त जीवन पा सकता है। ऐसी अहिंसक सादी जीवन-शैली हमारे आसपास की शहरी औद्योगिक संस्कृति का सही रूप में स्थान ले सकती है। किंतु इसे प्राप्त करने का मतलब है—क्रांति। और यह केवल तकनीक में नहीं, बल्कि सामाजिक दृष्टिकोणों में और मानवी संबंध में भी। और यही परिवर्तन हमारी बुनियादी चिंता है। हम देखते हैं कि अनेक चिंतनशील लोग सात्विक रुचि से हमारी बात पर ध्यान देते हैं। जब हम उन्हें अपने उद्देश्यों और उम्मीदों के बारे में तथा इस सम्बन्ध में बताते हैं कि क्यों हम भ्रष्ट और दमनकारी राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था से दूर रहना चाहते हैं, जबकि राज्यप्रणाली के भीतरी व्यक्तियों के साथ हमारे संबंध मैत्रीपूर्ण हैं। हम अपने अनुभव के आधार पर थोडा-थोडा करके आगे बढना चाहते हैं! साथ ही, हम जैसे सोचनेवाले लोगों को ढूंढने तथा उनके साथ काम करने का मौका भी ढूंढते हैं, जिससे कि हम परिवर्तन के प्रेरक बन सकें। ✻ ✻

PDF Compressor Free Version

सुनहले खाद

गांवों के बाजार तथा गलियों को, सब प्रकार का कूड़ा-करकट हटा कर स्वच्छ बना लेना चाहिए। फिर उस कूड़े का वर्गीकरण कर देना चाहिए। उसमें से कुछ का तो खाद बनाया जा सकता है, कुछ को सिर्फ जमीन में गाड देना भर बस होगा। और कुछ हिस्सा ऐसा होगा कि जो सीधा सम्पत्ति के रूप में परिणत किया जा सकेगा।

इधर-उधर से इकट्ठा किया हुआ मल-मूत्र गांव के खेतों के लिए सुनहले खाद का काम देगा। मल-मूत्र को उपयोगी बनाने के लिए यह करना चाहिए कि उसके साथ – चाहे वह सूखा या तरल – मिट्टी मिलाकर उसे ज्यादा-से-ज्यादा एक फुट गहरा खड्ढा खोद कर जमीन में गाड दिया जाय। गांव की स्वास्थ्य-रक्षा पर लिखी हुई अपनी पुस्तक में डा० पूअरे कहते हैं कि जमीन में मल-मूत्रों को नौ या बारह इंच से अधिक गहरा नहीं गाडना चाहिए। मैं यह बात केवल स्मृति के आधार पर लिख रहा हूं। उनकी मान्यता यह है कि ऊपरी सतह सूक्ष्म जीवों से परिपूर्ण होती है और हवा एवं रोशनी की सहायता से – जो कि आसानी से वहां तक पहुंच जाती है – ये जीव मल-मूत्र को एक हफ्ते के अंदर एक अच्छी मुलायम और सुगंधित मिट्टी में बदल देते हैं। कोई भी ग्रामवासी स्वयं इस बात की सचाई का पता लगा सकता है।

['हरिजन सेवक' : १५-२-१९३५]

– मो० क० गांधी